हिन्दी देशज शब्दकोश

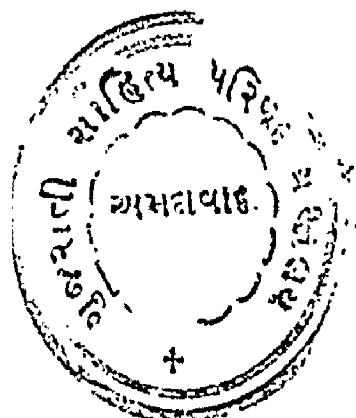
आठ हजार से अधिक ऐसे देशज शब्दों का पहला संकलन जो हिन्दी भाषा की निधि हैं, लेकिन जिनमें से अधिकांश इससे पहले किसी शब्दकोश में सम्मिलित नहीं हो सके।

संकलन-सम्पादन
डा० चन्द्रप्रकाश त्यागी

भूमिका
डा० भोलानाथ तिवारी



[illegible]
दिल्ली-११००५१



प्रथम संस्करण : १९७७

प्रकाशक
लिपि प्रकाशन
ई-१०/४, कृष्णनगर, दिल्ली ११००५१

मुद्रक : प्रगति प्रिंटर्स, दिल्ली-३२

मूल्य : तीस रुपये

पुरोवाक्

परम्परा भारतीय भाषाओं के शब्द-भंडार को स्रोत की दृष्टि से चार वर्गों में रखती रही है : तत्सम, तद्भव, विदेशी और देशज। इनमें यों तो 'तत्सम' भी कम विवादास्पद नहीं है (देखें, प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक की पुस्तक 'शब्दों का अध्ययन', पृ० १७, 'तत्सम शब्द की तत्समता' शीर्षक अध्याय), किन्तु 'देशज' शब्द तो बहुत ही विवादास्पद है। 'देशज' शब्द किसे कहा जाए, इसे लेकर भी काफ़ी मतभेद है। चंद्र के अनुसार ये वे शब्द हैं जो संस्कृत एवं प्राकृत नहीं है; हेमचन्द्र, बीम्स, भंडारकर आदि के अनुसार इनकी संस्कृत से व्युत्पत्ति संभव नहीं; ग्रियर्सन मुंडा, द्रविड़, प्रांतीय शब्दों तथा प्राथमिक प्राकृतों के तद्भव शब्दों—अर्थात् जो संस्कृत से जोड़े नहीं जा सकते—को इसके अंतर्गत रखते हैं। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने आर्यपूर्व द्रविड़, कोल आदि शब्दों को 'देशज' कहा है।

'देशज' शब्दों के लिए अलग-अलग नामों का भी प्रयोग किया गया है। भरत ने इन्हें 'देशीमत', चन्द्र ने 'देशप्रसिद्ध', हेमचन्द्र तथा मार्कंडेय ने 'देश्य' या 'देशी' तो कुछ अन्य लोगों ने 'देशजात' तथा 'देसिका' आदि कहा है। डा० बाबूराम सक्सेना ने 'देशी' और 'देशज' का अलग-अलग अर्थों में प्रयोग किया है। उनके अनुसार 'देशी' तो अन्य भाषाओं से लिये हुए शब्द है, जैसे टिकाऊ, चालू, गप्प, छैला, पिल्ला आदि, तथा 'देशज' वे हैं जो आधुनिक समय की बोलचाल में स्वतः विकसित हुए हैं, जैसे पेड़, गड़बड़, ठंडाई आदि।

'देशज' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है 'जो देश में जन्मा हो', किन्तु 'गृह' से 'घर' या 'कृष्ण' का 'कान्ह' क्या देश के बाहर जन्मे है ? शायद नहीं। तो क्या ये भी देशज हैं, तद्भव नहीं ? स्पष्ट ही ऐसा नहीं है। जैसा कि अन्यत्र भी एकाधिक स्थलों पर मैंने कहा है, 'देशज' शब्द उन शब्दों को कहा जाता रहा है जो न तो तत्सम रहे हैं, न तद्भव और न विदेशी, अर्थात जिनके स्रोत का पता नहीं है। इसलिए मैं इन्हें 'अज्ञात-व्युत्पत्तिक' नाम से अभिहित करने का पक्षपाती रहा हूं। इनके लिए 'देशज' नाम इसलिए ठीक नहीं है कि यह एक निश्चयात्मक नाम है—जो देश में जन्मे हों, किन्तु तत्त्वतः 'देशज' शब्दों के बारे में यह सनिश्चय नहीं कहा जा सकता कि वे देश में ही जन्मे हैं; उनके विषय में एक ही बात सनिश्चय कही जा सकती है और वह यह कि उनके स्रोत या उनकी व्युत्पत्ति का पता नहीं है—ऐसी स्थिति में 'अज्ञातव्युत्पत्तिक' नाम

अधिक उपयुक्त है।

ऐसे शब्दों की अज्ञातव्युत्पत्तिकता का ही परिणाम रहा है कि कभी किसी ने एक शब्द को इस वर्ग में रखा तो दूसरे ने उसकी व्युत्पत्ति खोजने का यत्न करके उसे किसी अन्य वर्ग में स्थान दिला दिया।

प्रस्तुत कोश हिन्दी में इस प्रकार के शब्दों का प्रथम कोश है, किन्तु चूंकि ऐसे शब्दों को पहचान पाना बहुत कठिन है, इसीलिए इस कोश में ऐसे शब्द भी हो सकते हैं जो तद्भव या विदेशी हों। इस प्रसंग में हेमचन्द्र का नाम लिया जा सकता है। उन्होंने सबसे पहले ऐसे शब्दों का कोश 'देशीनाममाला' नाम का बनाया, किन्तु इस सदी में उनके कोश के सभी शब्दों की व्युत्पत्ति खोज डाली गई—अर्थात्, उनके कोश का एक भी शब्द देशज नहीं है, अब यह सिद्ध हो चुका है। जब हेमचन्द्र जैसे व्यक्ति से ऐसी भूल संभव है तो फिर किसी से भी हो सकती है—इसीलिए प्रस्तुत कोश के भी इस दृष्टि से त्रुटिरहित होने की आशा नहीं करनी चाहिए। यों, इस दिशा में हिन्दी में यह प्रथम प्रयास है, अतः निश्चय ही स्तुत्य है। मुझे विश्वास है कि आधुनिक भारतीय भाषाओं में अपने ढंग का यह प्रथम कोश उपयोगी सिद्ध होगा तथा भविष्य में इस प्रकार के और अच्छे कार्यों को इससे प्रेरणा और सहायता मिलेगी।

—भोलानाथ तिवारी

प्राक्कथन

मेरे पूर्व प्रकाशित शोध प्रवन्ध "देशी शब्दों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन" का विद्वजनों में समादर देखकर मुझे प्रसन्नता हुई है तथा इससे मेरा जो उत्साहवर्धन हुआ है उसके लिए नीरक्षीर-विवेचक धन्यवाद के पात्र है।

कवीर, तुलसी, सूर, जायसी आदि मध्यकालीन कवियों से लेकर भारतेन्दु-युग से गुजरकर आये हुए ये देशज शब्द विविध अंचलों में विविध रूप से उभरकर भी अपनी पूर्ण निष्ठा के साथ उपस्थित हो सके हैं, इसमें मुझे संदेह है; इनकी यात्रा अभी भी यायावरी है।

प्रस्तुत कोश में आये हुए शब्द देशज है, जिन्हें किसी प्रकार के शब्दों से निष्पन्न नहीं माना जाता तथा जो मूलरूप में भी स्वाभाविक रूप से इतने प्रचलित एवं शक्ति-शाली हैं, जिन्हें खतिया कर अलग खांचे में नहीं डाला जा सकता। इनकी गरिमा तो इससे ही स्पष्ट है कि यदि ये भाषा में न हों, जैसा कि असंभव है, तो भाषा निर्जीव हो जाएगी—ये भाषा की आत्मा जो ठहरे।

वहुत से शब्द इस संकलन में आने से वंचित रह गये हैं। ऐसे कुछ शब्दों को कवि अश्लील की कोटि में रखने के पक्षपाती है, परन्तु आज का भाषावैज्ञानिक किसी भी शब्द को अश्लील नहीं मानता। तव भी ऐसे वहुत प्रचलित शब्द जवरदस्ती घुस आये हैं जिन्हें निकालना नैतिक उत्तरदायित्व से वाहर का काम था।

ध्वन्यात्मक तथा अनुकरणात्मक शब्द भी थोड़े ही आ पाये है या यों कह लीजिए कि कोश की विशालकायता के भय से उन्हें छोड़ दिया गया है।

इतना सव होते हुए भी यह संग्रह अपनी एक अलग कोटि में आता है। शब्दों की महत्ता के सम्बन्ध में पूर्वग्रन्थ में यथावसर निर्दिष्ट किया गया है, अतः इसके विषय में कुछ और कहना उचित प्रतीत नहीं होता।

शब्दों के उदाहरणों में कोश के आरम्भ में निर्देश दे दिया गया है कि वे किस कृति से आगृहीत हैं, तथा उनमें कृतियों के नवीनतम संस्करण ही लेने का प्रयास किया गया है।

अन्त में मैं उन सभी कवियों, ग्रन्थकारों तथा शब्दकोशकारों का ऋणी हूं जिनसे मैंने कोश निर्माण में थोड़ी-वहुत भी सहायता ली है।

—चन्द्रप्रकाश त्यागी

श्रद्धेय गुरुवर

डा० शिवप्रसाद सिंह

को सादर

संकेत तालिका

अ० क्रि०	:	अकर्मक क्रिया
अनु०	:	अनुकरणात्मक
अलग वै०	:	अलग-अलग वैतरणी
आधा०	:	आधा गाँव
उ०	:	उदाहरण
उप०	:	उपदेश शब्द
क०	:	कवितावली
क० पु०	:	कब तक पुकारूँ
कबीर बी०	:	कबीर बीजक
केशव०	:	केशव ग्रंथावली
गंग	:	गंग कवित्त
गि० दी०	:	गिरती दीवारें
गिर०	:	गिरधर कविराय
गी०	:	गीतावली
घना०	:	घनानन्द
चित्रा०	:	चित्रावली
छीत०	:	छीत स्वामी
जा०	:	पद्मावत (जायसी)
जायसी	:	जायसी ग्रंथावली
झूठा०	:	झूठा सच (भाग १-२)
टे० मे० रा०	:	टेढ़े-मेढ़े-रास्ते
ढो० दू०	:	ढोला मारूरा दूहा
तु०-ग्रं०	:	तुलसी ग्रंथावली
तुलसी	:	'तुलसीदास' (निराला)
दादू०	:	दादूदयाल
दे० ना०	:	देशीनाममाला

दिनमान	:	'दिनमान' में श्री विद्यानिवास मिश्र का लेख (अप्रैल-दिसम्बर-१९६७)
पउम०	:	पउमचरिउ
परती०	:	परती परिकथा
प्रे० स०	:	प्रेमघन सर्वस्व
प्र० ग्रं०	:	प्रतापनारायण ग्रंथावली
प्रा० सं०	:	प्राण संगली
प्रा० पैं०	:	प्राकृत पैंगलम्
वल०	:	वलचनमा
बाबा०	:	बाबा बटेसरनाथ
बूंद	:	बूंद और समुद्र
व्र० श०	:	व्रजभाषा सूर शब्दकोश
भ० नि०	:	भट्ट निबंधावली
भवि०	:	भविसयत्तकहा
भा०	:	भारतेंदु ग्रंथावली
मा०	:	रामचरित मानस
मानक	:	मानक हिन्दी कोश
मु०	:	मुहावरा
मैला०	:	मैला आँचल
रागदर०	:	रागदरबारी
रा० रू०	:	राजरूपक
लश०	:	लशकरी
वि०	:	विनयपत्रिका
सं० पु०	:	संज्ञा पुंलिंग
सं० स्त्री०	:	संज्ञा स्त्रीलिंग
स० क्रि०	:	सकर्मक क्रिया
सट्टिठ०	:	सट्टिठसयपयरण
सत०	:	सतसई रूपक
सा० ल० म०	:	सागर, लहरें और मनुष्य
सुं० ग्रं०	:	सुंदर ग्रंथावली
सूदन०	:	सूदन कवि
सूर०	:	सूरसागर
सौ० अजान०	:	सौ अजान एक सुजान
हि० श० सा०	:	हिन्दी शब्द सागर
हे० प्रा०	:	हेमचंद्र प्राकृत व्याकरण

हिन्दी देशज शब्दकोश

अंगड़-खंगड़ : वि० १. बचा-खुचा, गिरा-पड़ा, इधर-उधर का। २. टूटा-फूटा सामान। उ० अयोध्या की अंगड़-खंगड़ और बेढंगी बस्ती। (भा० १।१७४)

अंजना : सं० पु० धान जिसका छिलका हल्के बादामी रंग का और पतला होता है।

अंटसंट : वि० बेकार, व्यर्थ, असम्ब[illegible] जैसे अंट-संट मत बका करो।

अंटा गुड़गुड़ : वि० नशे में [illegible]र, [illegible]।

अंटाचित : क्रि० वि० पीठ के ब[illegible]। [illegible]धा। अचेत होना। जैसे वह भंग पीते [illegible] अंटा-चित हो गया।

अंडवंड : वि० असम्बद्ध, अस्त-व्यस्त। उ० जब उसने इन प्रश्नों के उत्तर अंड-बंड दिये। (भा० १।१६७)

अंधाधुंध : सं० पु० १. घोर अंधकार, तमस, अंधेरा। उ० अंधाधुंध भयौ सब गोकुल जो जहँ रम्यो सो तहाँ छपायो। (सूर०) २. अनाप-शनाप, अंटसंट, असम्बद्ध।

अंबारी : सं० स्त्री० पटसन (दक्षिण)।

अँकरोरी : सं० स्त्री० कंकड़ी, सिटकी। कंकड़ या खपड़े का बहुत छोटा टुकड़ा। अंकरवरी, अंकरौरी। उ० अँकरौरी सम गनौ पहारा। लेखौ समुद हिये महँ नारा। (चित्रा० २१५)

अँगिया : सं० स्त्री० झीने कपड़े की मढ़ी हुई चलनी।

अँगोरा : सं० पु० १. मच्छर, भुनगा। २. गन्ने का अंकोला, गँड़ेरी।

अँघराई : सं० स्त्री० एक कर जो पहले पशुओं पर लगाया जाता था।

अँघिया : सं० स्त्री० झीने कपड़े से मढ़ी हुई आटा या मैदा चालने की चलनी। अँगिया, आखा।

अँटकना : क्रि० अ० १. छकना, अड़ना। उ० गोरख अँटके कालपुर कौन कहावै, साहु। (कबीर बी० ६५) २. कसना, उलझना। उ० सूर सनेह ग्वालिमन अँटक्यौ। अंतर प्रीति जाति नहीं तोरी।। (सूर० १०।३०५)

अँटना : क्रि० अ० १. समाना, किसी वस्तु के भीतर आना। उ० आनंद हृदय में अँटता नहीं था। (भक्तमाल ५५०) २. किसी वस्तु के भीतर या ऊपर सटीक बैठना या चिपकना। उ० यह जूता मेरे पैर में नहीं अँटता है ३. भर जाना, ढँक जाना, छा जाना। उ० कूड़े से कूआँ अँट गया। ४. पूरा पड़ना, काफी होना, बस होना, चलना। उ० इतना कमाते है पर अँटता नही। ५. पूरा होना, खपना, लग जाना।

अँटौतल : सं० पु० वे ढक्कन जिन्हें तेली

लोग कोल्हू में जोतने के समय बैल की आँखों पर चढ़ा देते हैं। उ० आँख पर अँटौतल लगाये कोल्हू के बैल की तरह घूमता रहूँ। (अलग० बै० १५०)

अँड़रना : क्रि० अ० धान के पौधे का उस अवस्था तक पहुँचना जब बाल निकलने पर हो। रेंड़ना, गरभाना।

अँड़िया : सं० स्त्री० १. बाजरे की पकी हुई बाल। २. परेते पर लपेटा हुआ सूत। कुकड़ी।

अँवली : सं० पु० एक प्रकार की गुजराती कपास जो ढौलेरा नामक स्थान पर होती है।

अंवली : वि० उलटी। उ० लगन लगी जब और प्रीत थी अब कुछ अँवली रीति। (भा० २।७४)

अँहड़ा : सं० पु० तौलने का बाट, बटखरा।

अँहुड़ी : सं० स्त्री० एक लता जिसमें गोल गोल पेटे की फलियाँ लगती हैं। इन फलियों की तरकारी बनती है और इनके बीज दवा में पड़ते हैं। बाकला।

अइयपन : सं० पु० पउँअनाल अइयपन भल भेल। (विद्यापति २२१)

अइल : सं० पु० चूल्हे का मुँह या छेद। अइला।

अउठा : सं० पु० नापने की दो हाथ की एक लकड़ी जिसे जुलाहे लिए रहते हैं। (हि० श० सा०)

अकड़ : सं० स्त्री० घमंड, अहंकार, शेखी। उ० मार खाव तौ बदन झाड़कर फिर भी अकड़ दिखायी। (प्रे० स० ३०८)

अकड़ना : क्रि० अ० १. शेखी मारना, घमंड दिखाना। २. ढिठाई करना। ३. हठ करना, जिद करना, अड़ना, जैसे सब जगह अकड़ना ठीक नहीं। ४. फिर पड़ना, मिजाज बदलना जैसे—तुम तो जरा सी बात पर अकड़ जाते हो। (हि० श० सा०)

अकधक : सं० पु० आशंका, आगापीछा, सोच-विचार, भय। उ० कूदत रूप समुद्र में अकधक करत न नैन (रतन दो० ४५२)

अकना : क्रि० अ० ऊबना, उकताना, घबराना। (हि० श० सा०)

अकरी : सं० स्त्री० असंगध की जाति का पौधा या झाड़ी जो पंजाब, सिन्ध और अफगानिस्तान में होता है।

अकसंद : सं० पु० दो हाथ ऊँचा पौधा जिसके पत्ते गोल और फूल सफेद होते है। (ब्र० श०)

अकूहल : वि० बहुत अधिक, असंख्य। उ० खेलत हँसत करत कौतूहल। जुरे लोग जहँ तहाँ अकूहल। (सूर०)

अक्कड़-बक्कड़ : सं० पु० बच्चों का एक खेल जिसे कहकर वे खेलते हैं। उ० अक्कड़-बक्कड़ बम्बे बो, अस्सी नब्बे पूरे सौ। (बूंद० ५४५)

अक्का : सं० स्त्री० बहन, अक्कालल्ला योगीश्वरी। (कश्मीरी)

अख : सं० पु० बाग-बगीचा। (डिंगल)

अखरा : सं० पु० बिना कुटे हुए जौ की भूसी मिला आटा जिसे गरीब लोग खाते हैं।

अखलि : सं० वि० अक्खलिय, आकुल, व्याकुल। उ० ढुलिया ढैंकुल उधरन धीर। उनमन मनवां अखलि सरीर। (गोरख० १८१)

अगई : सं० पु० चलता जाति का एक पेड़। (हि० श० सा०)

अगट : सं० पु० चिक या मांस बेचने वाले की दूकान।

अगड़धत्ता : वि० १. लम्बा तगड़ा, ऊँचा, २. श्रेष्ठ, बढ़ा-चढ़ा। उ० एक पेड़ अगड़धत्ता जिसमें जड़ न पत्ता। (पहेली)

उत्तर—अमरवेल।

अगराना : क्रि० स० अधिक स्नेह या दुलार के कारण किसी को धृष्ट बनाना।

अगरी : सं० स्त्री० अगराई हुई बात। स्नेह के कारण धृष्टता से की हुई क्रिया। उ० गेंडुरि दह फटकारि कै हरि करत है लंगरी। नित प्रति एसेइ ढंग करैं हमसो कहै अगरी। (सूर०)

अगलहिया : सं० स्त्री० एक चिड़िया।

अगिया : सं० पु० १. छह से दस फुट तक लम्बा दृढ़ पौधा। पहाड़ी लोग इसकी छाल से मंगरा नामक मोटा कपड़ा बनाते हैं। (हि० श० सा०) २. एक प्रकार का छोटा रोएँदार कीड़ा जिसके शरीर में लगने से पीले-पीले छाले पड़ जाते हैं। ३. एक रोग जिसमें पैर में पीले-पीले छाले पड़ जाते हैं। ४. घोड़ों और बैलों का एक रोग। ५. विक्रमादित्य के दो बैतालों में से एक।

अगीठा : सं० पु० एक प्रकार का पौधा। इसके पत्ते पान के आकार के पर उससे कुछ बड़े होते हैं। जिसमें कैथ की तरह का एक प्रकार का कुछ चिपटा फल लगता है जिसकी सतह पर छोटे-छोटे दाने होते हैं।

अगोली : सं० स्त्री० ईख की एक छोटी और कड़ी जाति।

अग्गई : सं० स्त्री० अवध में अधिकता से होने वाला एक प्रकार का मझोले आकार का वृक्ष जिसकी पत्तियाँ प्रायः हाथ भर लम्बी होती हैं और फल अमरूद के आकार के होते है।

अघाउ : वि० तृप्त, संतुष्ट। उ० भरत सभा सनमानि सराहत हो तन हृदय अघाउ। (तुलसी)

अघाट : सं० पु० वह भूमि जिसे बेचने या अलग करने का अधिकार उसके स्वामी को न हो। अगहाट।

अचगरी : वि० नटखटपन, शरारत, शैतानी, छेड़छाड़। उ० सूर स्याम कत करत अगचरी बार-बार ब्राह्मनहि खिझायो। (सूर० १०।२४८)

अच्छा : वि० उत्तम, श्रेष्ठ, अच्छा चोखा, भला, खूब।

अछी : सं० स्त्री० आल का पेड़।

अजूजा : सं० पु० बिज्जू की तरह का एक जानवर जो मुर्दा खाता है। उ० कह कवि दूलह समुद्र बढ़े सोनित के, जुग्गनी परेतैं फिरैं जम्बुक अजूजा से। (दूलह)

अटकन-बटकन : सं० पु० छोटे लड़कों का खेल जिसमें एक लड़का सबके पंजों पर अटकन-बटकन कहता हुआ चोर बताता है। (सूरदास)

अटेरना : क्रि० सं० लपेटना, किसी वस्तु पर लगाना, चिपटाना। उ० कोई स्त्री सूत अटेर रही थी। (झूठा० १।५९)

अठोठ : सं० पु० पाखंड, ठाट, आडम्बर। उ० लाज के अठोठ कै कै बैठाती न ओट दै दै, घूँघट के काछे को कपट पट तानती। (हि० श० सा०)

अठौड़ी : सं० पु० पशुओं के शरीर में पड़ने वाले कृमि। उ० अठौड़ी किलनी, जूँ, चिल्लड़। (बल० ११)

अडारा : क्रि० स० फेंकना, गिराना, क्षिप् का धात्वादेश अड्डुक। (हे० प्रा०) उ० कंगन काढ़ि सौ एक अडारा।

(जा० ४५१।५)

अड़चन : सं० पु० रुकावट, अंडस, बाधा, आपत्ति, दिक्कत। उ० आगे चलकर इस काम में बड़ी-बड़ी अड़चनें पड़ेंगी।

अड़चल : वि० कठिनाई। उ० इसमें तो कोई अड़चल नहीं है। (प्र० ग० २५४)

अड़ड़पोपो : सं० पु० १. सामुद्रिक विद्या जानने वाला, हाथ देखकर जीवन की घटनाओं को वताने वाला। २. पाखंडी, आडम्बरकर्ता। ३. वकवादी, प्रलापी।

अड़ना : क्रि० अ० शायद हट>अठ>अड़। १. रुकना, अटकना, हटना। उ० इहि उर माखन चोर गढ़े अव कैसे, निकसत सुनि ऊधो तिरछैं ह्वै जु अड़े। (सूर० १०।३७।३१) २. हठ करना, ठानना। उ० विरहा मति मोति अड़ै रे मन मोर सुजान। (कवीर)

अड़ा : सं० पु० अड्डा। पक्षी फँसाने के लिए लकड़ी के वने डंडे में ल्हासा लगाकर खड़ा करने वाला डंडा। उ० होई निचित वैठे तेहि अड़ा। (जा० ७१।५)

अड़ानी : सं० पु० वड़ा पंखा। उ० वहु छत्र अड़ानी कलस धुज सलत राजत कनक के। (गिर०)

अड़ूलना : क्रि० स० ढालना, उड़ेलना, गिराना। उ० जहाँ आठहुँ भाँति के कंज फूले मनो नीर अकास तारे अड़ूलैं। (सूदन)

अड्ड : वि० (अड्ड—आड़े आने वाला) वाधा, रोक, आड़। उ० काच पहुँच्यो सीस पर नाहिन कोऊ अड्ड। (भा० २।२३३)

अड्डा : सं० पु० रुकने या वैठने का स्थान। उ० जव अड्डा ही न रहेगा तो वैठोगे काहे पर। (प्र० ग्र० ५६१)

अढ़न : सं० पु० धाक, मर्यादा। उ० चारिउ वरन चारि आश्रमहु मानत श्रुति की अढ़न। (देवस्वामी)

अढ़वायक : सं० पु० वह जो दूसरों को काम में लगाता हो। उ० पहिलेइ रचै चारि अढ़वायक, भए सव अढ़वैयन के नायक। (जायसी)

अढुक : सं० पु० ठोकर, चोट। उ० फोहरि सिर लोढ़ा सढन लागे अढुक पहाड़। कायर कूर कपूत कलि घर घर सहस डहार। (तु० ग्र० १५१)

अढ़ौना : सं० पु० करने के लिए कहा गया, दिया हुआ काम। उ० छोटा-सा अढ़ौना भी करेगी तो भुनभुनाकर। (गोदान ३०)

अतरंग : सं० पु० लंगर को जमीन से उखाड़ कर उठाए रखने की क्रिया।

अताना : सं० पु० मालकोश राग की रागिनी।

अथवारी : सं० स्त्री० एक पेड़ का नाम जिसकी लकड़ी मकान के काम आती है।

अधौटी : सं० पु० एक प्रकार का वाजा। उ० वाजत ताल मृदंग अधौटी। विच मुरली धुनि थोरी। (छीत० २६)

अधौतर : सं० पु० एक देशी कपड़ा जो गजी व गाढ़े से भी मोटा होता है। उ० सिरी साफ वाफता अधोतर मेख कहिए। (सु० ग्र० १।७५)

अधौरी : सं० स्त्री० एक प्रकार का वड़ा वृक्ष जिसकी छाल व पत्तियों से चमड़ा सिझाया जाता है और लकड़ी से हल तथा नावें वनाई जाती हैं।

अनंभ : वि० जो अधीन न हो, स्वतन्त्र, निर्वाध। उ० अनवट विछिया नखत तराई पहुँचि सकै को पांयन ताईं। (जायसी)

अनाप-शनाप : सं० पु० अंट-संट, वेकार, वेतुका वोलना। उ० आप विल्कुल अनाप-शनाप वक रहे हैं। (टे० मे० रा० २४४)

अनु : अव्य० हाँ, ठीक है। उ० अनु तुम कही नीक यह सोभा। (जायसी)

अनुआ : सं० पु० व्यभिचार, दोष।

अनेता : सं० पु० मालती नामक लता।

अनौखा : वि० आश्चर्यान्वित<ओक्ख। उ० देखे आजु अनौखे दानी। (भा० २।४५४)

अपती : सं० स्त्री० प्राय: एक बालिश्त चौड़ा तख्ता जो नाव की लम्बाई में मरिया के दोनों सिरों पर लगाया जाता है।

अबाल : सं० पु० वह रस्सी जो चरखे की पँखुड़ियों को बाँधकर तानी जाती है और जिस पर होकर माला चलती है।

अबाली : सं० स्त्री० एक पक्षी जो उत्तर भारत, महाराष्ट्र, असम, चीन तथा स्याम में मिलता है। बैंगन कुरी।

अभेरा : सं० पु० १. धक्का, टक्कर। २. मिट्टी के सूखने पर फटी हुई दरार। उ० मंद विलंद अभेरा ढलकन पाइअ दुःख झकझोरा। (वि० १८९)

अभेर : सं० पु० धरन या लकड़ी जिसमें डोरी बाँधकर कंधिया लटकाई जाती है। कलवाँसा।

अमनिया : सं० स्त्री० १. भोजन बनाने की क्रिया, रसोई पकाना (साधुओं की भाषा) २. सब्जी आदि कतरने की प्रक्रिया।

अमलुनिया : सं० पु० खर पतवार। एक घास जो खेतों में स्वयं हो जाती है।

अमसूल : सं० पु० एक पतला पेड़ जो नीलगिरि में होता है। इसकी डालियाँ नीचे झुकी रहती हैं। इसका तेल कोकम का मक्खन कहलाता है और इस तेल का मरहम भी बनता है।

अमानिया : सं० पु० एक प्रकार का पटसन।

अमेंड़ा : वि० मर्यादा या सीमा न मानने वाला। उ० कोऊ न देखे न काहू दिखावत, आपनो आनन जान अमेंड़े। (घना०४६)

अरकाटी : सं० पु० वह व्यक्ति जो कुलियों आदि को चाय बागानों में या मारिशस, गियाना आदि टापुओं में काम करने के लिए भर्ती करके भेजता हो।

अरजम : सं० पु० कुंबी नामक पेड़ जिसकी लकड़ी से खेती के बड़े औजार एवं गाड़ी के धुरे आदि बनते हैं।

अरझा : सं० पु० छोटी जाति का सन, सनई।

अरडींग : वि० बलिष्ठ, जोरावर। (डिंगल)

अरदल : सं० पु० एक वृक्ष जो पश्चिमी घाट तथा लंका में होता है। इसका पीला गोंद पानी में न घुलकर शराब में घुलता है। गोरका, ओट।

अरना : क्रि० अ० शीघ्रता करना। उ० करी दया मो सीस दया करि आयो चार गुण अरना। (रा० रु० ६।२)

अरपा : सं० पु० एक मसाला।

अरबल : सं० पु० वह भौंरी जो घोड़े के कान की जड़ में गर्दन की ओर होती है। यदि यह दोनों ओर हो तो शुभ। एक ओर हो तो अशुभ समझी जाती है।

अरसथ : सं० पु० मासिक आय-व्यय का लेखा। वही जिसमें प्रतिमाह के आय-व्यय की खतियौनी की जाती है।

अरहर : सं० स्त्री० एक दाल। इस दाल का पौधा घना होता है।

अरा : सं० पु० १. आरा। उ० भौहै अराले अरेरति है उर कोर कटाक्षन और कराए। (देव) २. संघर्ष, झगड़ा।

अराड़ना : क्रि० अ० गर्भपात हो जाना, गर्भ का गिर जाना, बच्चा फेंकना।

अरिंज : सं० पु० एक प्रकार का बबूल, सफेद बबूल। इससे अमृतसरी गोंद बनता है।

अरिया : सं० स्त्री० एक प्रकार की छोटी चिड़िया जो प्राय: पानी के किनारे रहती है। ताक लैबी।

अरिबन : सं० पु० रस्सी का फंदा जिसमें फँसाकर घड़ा या गगरा कुएँ में ढीलते हैं। उबका, उबक, छोर फँसरी।

अरिहन : सं० पु० साग व तरकारी पकाते

समय डाला जाने वाला आटा। उ० अकई कहँ भल अरिहन वाँटा। (जा० ५४८।३)

अरझा : क्रि० स० उलझ जाना, फँसना। उ० पाँख भरे तनु अरूझर कतमारे विनु वाँच। (जा० ६६।९)

अर्चन : सं० पु० घुंडी जिस पर कलावत्तू लपेटा हो।

अलई : सं० स्त्री० १. ऐल नामक कँटीली लता जिसकी खेतों में वाड़ लगाई जाती है। अरु। २. अम्होरी।

अलगर्द : सं० पु० पनिहा साँप की जाति का सर्प। (हि० श० सा०)

अलट-विलट : सं० पु० उलट-पुलट, हेरफेर, गड़वड़ी। उ० वात व्यौहार में कहीं कुछ अलट-विलट हो तो अपने नौगछिया की जगहँसाई होगी। (नई पौध ३१)

अलमर : सं० पु० एक प्रकार का पौधा।

अललटप्पू : वि० अटकल पच्चू, वेठिकाने का, अंडवंड।

अलल्ल : सं० पु० घोड़ा, अलल्ला।

अलाई : सं० पु० घोड़े की एक जाति। (डिंगल)

अलावला : सं० स्त्री० विपदा, आपत्ति।

अल्हर : सं० पु० नई आयु का पट्ठा। उ० दूनौ अल्हर मिले चौदता। (जा० ४४।६)

अवाडु : वि० विपरीत, उल्टा। उ० पाँखडिया ई किउं नहि दैव आवडु ज्याँह। (ढो० दू० ७१)

असल : सं० पु० एक प्रकार का लम्वा झाड़ जिसका वीज, छाल तथा पत्तियाँ औषधि के काम आती हैं।

असही : सं० स्त्री० ककही या कंघी नामक पौधा।

असाढ़ा : सं० पु० मोटे दल की चट्टान, मोटा पत्थर।

असामी : सं० स्त्री० १. परकीया, रखैल, वेश्या। (हि० श० सा०)। २. नौकरी, जगह, जैसे—कोई असामी खाली हो तो वताना। ३. देनदार।

असीन : सं० पु० सज नामक वृक्ष।

अस्क : सं० पु० वुलाक (नैनीताल) एक छोटी नथनी जो नाक में पहनी जाती है।

अहट : सं० स्त्री० आवाज। उ० आह न अहट अघ हरी या अदाई की। (गंग० ८२)

अहुजी : सं० स्त्री० घीए के महीन टुकड़ों को मिलाकर पकाया हुआ चावल।

अहुर : सं० पु० छीपियों का रँगने का एक मिट्टी का वरतन। नैया।

आँकड़ा : सं० स्त्री० चौपायों की एक वीमारी।

आँचकी : सं० पु० लटकता हुआ रस्सा जिस के छोर पर के छल्ले में से होकर वह रस्सा जाता है जिस पर खड़े होकर खलासी जहाज का पाल खोलते हैं और लपेटते हैं।

आकली : सं० स्त्री० चटक पक्षी, गौरैया।

आखा : सं० पु० खरजी, गठिया।

आचारी : सं० स्त्री० हुरहुर, हिलमोचिका

आछड़ना : क्रि० स० धक्का देना। उ० उचित वयस मोर मनमथ चोर हेलि आछड़ि आकर अगोर। (विद्यापति ५)

आछे : क्रि० वि० भले प्रकार से, अच्छी तरह से, भलीभाँति। उ० तिनके लच्छन लच्छ अव आछे कहौ वखानि। (मतिराम)

आटा : सं० पु० किसी अन्न का चूर्ण, जैसे गेहूँ या चने का आटा।

आड़ : सं० स्त्री० व्यवधान, रोक, ओट। उ० तुम सिद्धान्त की आड़ में मुझे गालियाँ दे रहे हो। (टॅ० मे० रा० १३)

आपाधापी : वि० शीघ्र, जल्दी, हड़वड़ाहट। उ० वह अनोखी आपाधापी थी वेटा। (वावा० ५८)

आम्म : सं० पु० नेवले के प्रकार का एक जंतु

आरण : सं० पु० अहरन। उ० जिव आरण लोहा पाही जै तपै भरवै भाखाय। (प्राण० २११)।

आरी : सं० स्त्री० १. बबूल की जाति का एक पेड़। *स्थूल कटक*। २. *दुर्गन्ध, खैर*, बबुरी। ३. लकड़ी रेदने का करपत्र।

आलंग : सं० पु० घोड़ियों की मस्ती।

आल : सं० स्त्री० १. एक कीड़ा जो सरसों की फसल को हानि पहुँचाता है। माहो। २. प्याज का हरा डंठल, ३. कद्दू, लौकी।

आल : सं० पु० १. एक प्रकार का कँटीला पौधा। स्याहकोटा, किंगरई। २. गाँव का एक भाग।

आलन : सं० पु० १. घास, भूसा आदि जो दीवाल पर लगाई जाने वाली मिट्टी में मिलाया जाता है। २. खर, पात जो चूल्हा बनाने की मिट्टी या कंडे थापने के गोबर में मिलायी जाती है। ३. वेसन या आटा जो साग बनाने के समय मिलाया जाता है।

आली : सं० स्त्री० चार विस्वे के बराबर का एक मान (गढ़वाल, कुमाऊँ)।

आल्वार : सं० पु० दक्षिण भारत के भागवत् धर्म के संत उपदेशकों की एक श्रेणी।

आल्हा : सं० पु० १. ३१ मात्राओं का एक छन्द, वीरछन्द। २. महोबे के एक वीर पुरुष का नाम जो पृथ्वीराज के समय में था। ३. बहुत लम्बा-चौड़ा वर्णन।

इंजर : सं० पु० समुन्दर फल।

इंडुआ : सं० स्त्री० कपड़े की बनी छोटी गोल गद्दी जिसे बोझ उठाते समय सिर के ऊपर रखते हैं। ऐंडुरी, गेंडुरी।

इंडुरी : सं० स्त्री० इंडुआ, ऐंडुरी। उ० काहू की इंडुरी दुरावै (भा० २।४५४)

इंडौली : सं० स्त्री० एक औषधि का देशज नाम।

इंणि : सर्व० इन—उ० साइँ दे दे सज्जना रातइ इंणि पर रुंन (ढो० दू० ३७७)

इंदुआ : सं० स्त्री० इंडुआ, गेंडुरी।

इचकना : *क्रि० अ०* क्रोध से दाँत या खीस निकालना।

इठलाना : क्रि० अ० १. इतराना, ठसक दिखाना। उ० क्षुद्र मनुष्य थोड़े में ही इठलाने लगते हैं (भा० २।१८०) २. मटकना, नखरे करना। उ० तू थोर इठलात वे तो इठलात हैं (केश०) ३. छकाने के लिए जानबूझकर अनजान बनना। जैसे, इठलाओ मत, कलम कहाँ छिपाई है।

इरसी : सं० स्त्री० पहिये की धुरी।

इलता : सं० पु० मझोले आकार का बाँस जिसके कल्लों से बहुत अच्छा कागज बनता है।

इलाचा : सं० पु० एक कपड़ा जो रेशम और सूत मिलाकर बुना जाता है।

इलायची पंडू : सं० पु० एक प्रकार का जंगली फल।

ईंदर : सं० स्त्री० आठ-दस दिन की ब्याही हुई गाय के दूध को औटाकर बनाई गई एक प्रकार की मिठाई। प्योसी, इन्नर।

ईठी : सं० स्त्री० १. माला, बरछा, २. दंड।

ईल : सं० पु० एक बनैला जंतु।

उँचनाव : सं० पु० एक किस्म का चारखाने का कपड़ा।

उकेला : सं० पु० गड़ेरिये केवल बुनने में 'बाना' को उकेला कहते हैं।

उखड़-पुखड़ : सं० पु० आपत्ति, लूटपाट झंझट। उ० यह उखड़-पुखड़ न हुई होती। (झूठा० २।३६)

उगजौआ : सं० पु० परतेले के रंग में कपड़े को बारबार डुबाने की क्रिया।

उचापत : सं० पु० १. बनिये का हिसाब-किताब, उठान, लेखा। २. जो वस्तु बनिये के यहाँ से उधार ली जाय।

उचावा : सं० पु० बर्राना, सपने में बकना।

उझीना : सं० पु० जलाने के लिए उपले जोड़ने की क्रिया। अहारा।

उड़व : सं० पु० १. रोगों की एक जाति जिसमें कोई दो स्वर न लगें २. मृदंग के बारह प्रबंधों में से एक।

उड़काना : क्रि० स० लगाना, उढ़कना, बन्द करना। उ० नित्य के अभ्यास से किवाड़ उड़का दिये थे। (झूठा० २।२४३)

उड़सना : क्रि० स० लगाना, डालना, घुसाना, प्रवेश कराना, फँसाना। उ० कसी हुई छातियों को चोली के प्याले में उड़सने की कोशिश कर रही है। (आधी० २५२)

उड़ीश : सं० पु० एक प्रकार की बमार जिससे बोझ बांधते तथा टोकरा आदि बनाते हैं।

उतावला : वि० शीघ्रतावाचक शब्द, तावला, त्वरा। उ० पवन हुँ बेग उतावला दोस्त कबीरा कौन। (कबीर)

उधेड़ना : क्रि० स० अलग-अलग करना, पीटना, धुनना, ठोंकना। उ० इन सबको उधेड़ कर रख दूँ। (झूठा० १।११३)

उभरी : सं० स्त्री० एक पौधा जिसे जलाकर सज्जीखार बनाते हैं यह खारी मिट्टी के दलदल के पास होता है। मचौल।

उराहना : क्रि० स० १. उलाहना, किसी काम के न करने पर कहना। उ० मेरौ उराहनो है कछु नाहिं (भा० २।१५८) २. इकट्ठा करना, जैसे पैसा उराहना।

उर्द : सं० स्त्री० एक दाल, माष उड़िद। (दे० ना० १।६८)

उलझेड़ : सं० पु० आपत्ति, झंझट, फंदा। उ० आत्मा को उलझेड़े में डाले रहो। (प्र० ग्र० ७२२)

उलटकँवल : सं० पु० एक पौधा जो पनीली भूमि में होता है। इसकी छाल रस्सी बनाने तथा औषधि के काम में आती है।

उलट-पुलटना : क्रि० वि० तितर-बितर करना, अस्त-व्यस्त करना, ऊपर नीचे करना। उ० पेश होनेवाले मुकदमों की मिसलों को उलट-पुलट रहा था। (टे० मे० रा० ४)

उलाहनी : सं० स्त्री० किसी की स्मृति में गाये या बोले जाने वाले गीत, शोक गीत। खासकर पंजाब में स्त्रियाँ किसी के मरने के बाद उलाहनियाँ बोलती हैं। उ० नाउन वृद्धा माँ की स्मृति में उपयुक्त उलाहनियाँ बोल रही थी। (झूठा० १।६)

उशिर : क्रि० वि० विलम्ब, देर। उ० थोड़ा उशिर तो कुप्पी जलेंगाई। (सा० ल० म० ६७)

उसेय : सं० पु० खसिया की पहाड़ियों में होने वाला बांस जिसके दल की मोटाई एक इंच से कुछ कम होती है। इससे दूध और पानी रखने के चोंगे बनते हैं।

ऊँगना : सं० पु० चौपायों का एक रोग जिसमें उनके कान बहते हैं और उनका शरीर ठंडा हो जाता है और खाना-पीना छूट जाता है। औंघना।

ऊँगना : क्रि० अ० नींद आना, औंघना।

ऊँघना : क्रि० अ० सोना, नींद आना, आलस्य आना। उ० दरद हो जाये या स्कूल में ऊँघना ही पड़े। (झूठा० १।२८)

ऊबड़-खाबड़ सं० पु० ऊँची-नीची, जो समतल न हो, ऊँची-नीची भूमि। उ०

ऊबड़-खावड़ पहाड़ी रास्ते को तय करके जब इनके पूर्वज। (मैला० १०७)

ऊतर : सं० पु० १. बहाना, मिस। उ० ऊतर कौन हू के पदमाकर दै फिरै कुंज गलीन में फेरी। (पद्माकर) २. आवाज।

ऊदल : सं० पु० १. एक हिमालय की तराई में होने वाला वृक्ष जिसकी छाल के रस्से बनते है। गुरुवादला, बूटी। २. उदयसिंह का संक्षिप्त रूप। आल्हा का भाई।

ऊधम : सं० पु० कलह, दंगा-फसाद। उ० कौन स्याम ऊधम करै मेरे मन में दीठ। (भा० २।६६३)

ऊबना : क्रि० स० उकताना, जैसे तुम अभी से ऊब गए हो।

ऊभट : सं० पु० क्षत्रियों का एक भेद। उ० ऊभट अनेक अवनि निवान, अरबीन चढ़े आए अमान। (सूदन)

ऊभना : क्रि० अ० उभड़ना, उमगना। उ० निसरि परी साँपिनि सी नदिया वेगि चली ऊमि आई। (देवस्वामी)

ऊर : सं० पु० पंजाब में धान बोने की एक रीति। जड़हन रोपना।

ऊरी : सं० स्त्री० जुलाहों का एक औजार। दुतकला, सलाका।

ऊलंग : सं० स्त्री० एक प्रकार की चाय।

ऊल-जलूल : वि० १. असम्बद्ध, अंडबंड, अनुचित। उ० तूने भूले से किसी ऊल-जलूल काम में ये रुपये धूल किए तो— (शिवप्रसाद) २. अनाड़ी, पोंगा, बेसमझ। उ० वह बड़ा ऊलजलूल आदमी है। ३. बेअदब, अशिष्ट।

ऊलर : सं० स्त्री० कश्मीर देश में एक बड़ी झील।

ऊसन : सं० पु० एक प्रकार का पौधा जिससे तेल निकलता है। जेवा, तिरमिरा।

ऐंठना : क्रि० स० मरोड़ना, दाबना, टेढ़ा करना। बाए हाथ से युवती का हाथ पकड़कर ऐंठ दिया। (टे० मे० रा० ६१)

ऐड़ी : सं० स्त्री० एड़ी, पैरों के पीछे निकला हिस्सा। उ० ऐड़ी मध्य प्रमान। (भा० २।३१)

ऐशू : सं० पु० चौपायों का एक रोग जिस में उनका मुंह बंध जाता है फलस्वरूप वे पागुर नही कर सकते।

ओई : सं० पु० एक पेड़ का नाम।

ओखली : सं० स्त्री० ऊखल। ओखली में सिर दिया तो मूसल से क्या डर।

ओगल : सं० पु० परती भूमि।

ओगी : सं० पु० हाथी फँसाने का गड्ढा।

ओछी : वि० खराब, बेकार। उ० ओछी और निकम्मी चलन का प्रचार बढ़ता गया है। (प्रे० स० २५६)

ओट : सं० पु० आड़। उ० ओट डारि छोरि। (भा० २।८२)

ओड़चा : सं० पु० बाँस के खपचों की बनी डलिया जिसमें मनुष्यो के खाद्य रखे जाते हैं। उ० चौड़े ओड़चों में हलवाइयो की तीन-तीन दिन की मुफ्त मेहनत से— (अलग० वै० ३२)

ओड़ी : सं० स्त्री० रहने का कमरा, कुटिया ओरडी।

ओढ़नी : सं० स्त्री० चादर, उत्तरीय, स्त्रियों के ओढ़ने का एक वस्त्र। उ० धूरि कपूर की पूरि विलोचन सूंघि सरोरुह ओढ़ि ओढ़ोनी। (केशव)

ओत : सं० पु० १. आराम, सुख। उ० होत विसोक ओत पाव न मनाक सो। (तुलसी) २. आलस्य। ३. तानाबाना।

ओदनी : सं० स्त्री० बरियारा, बीजबंध।

ओप : सं० पु० १. दीप्ति, चमक। २. सुन्दरता, ३. यश। ४. प्रताप। उ० (क) खलवर गुद मान नहिं मेटहिं दाता ओप (सत० ६२७) (ख) सूरदास प्रभु प्रेम हेम ज्यों अधिक ओप ओपी (सूर० ३४८७) (ग) जस सूरज देखत होइ ओपा। (जा० १७६।२)

ओपी : क्रि०अ० चमकना, झलकने लगी। (सूर०)

ओरहा : सं० पु० १. भुनी हुई झंगरी। उ० चैत में ओरहा खाकर गाँव छोड़ूँगा। (वल० ११७) २. होरा, भुना हुआ चने का हरा व कच्चा दाना।

ओर्रा : सं० पु० एक प्रकार का वहुत लंवा वाँस जो घर तथा छकड़े तथा छाते के डंडे वनाने के काम आता है। यह असम और वरमा में मिलता है।

ओल : सं० पु० जमानत में किसी वस्तु या व्यक्ति को रखना। उ० वाजे-बाजे राजनि के वेटा वेटी ओल हैं। (कवि० ५।२१)

ओसारा : सं० पु० आँगन, अजिर, वरामदा, सायवान। (ब्र०श०)

औकन : सं० स्त्री० राशि, ढेर। विशेष—औकन ज्वार के उन वालों या भुट्टों के ढेर को कहते हैं जिनसे दाने निकाल लिये गए हों। इस ढेर को एक वार फिर वचा-खुचा दाना निकालने के लिए पीटते हैं।

औखी-वौखी : वि० वेतुकी, उलटी उ० वेतुकी औखी-वौखी अरु-तुद वात बोल उठे। (भ० नि० २।३३)

औगी : सं० स्त्री० १. रस्सी वटकर वनाया हुआ कोड़ा जो पीछे की ओर मोटा और आगे की ओर वहुत पतला होता है। २. वैल हाँकने की छड़ी, पैना। ३. कारचोवी जूते का ऊपर का चमड़ा।

औंछ : सं० स्त्री० दारू हल्दी की जड़।

औझड़ : वि० निरन्तर होने वाली, जल्दी शेष न होने वाली। उ० औझड़ झड़ी लगी। (अलग० वैं० ५६५)

औटना : क्रि० स० गर्म करना। जैसे दूध औटाने अँगीठी पर रख दो।

औल : सं० पु० जंगली ज्वार।

कँकई : सं० स्त्री० एक नदी का नाम जो नेपाल की पूर्व सीमा में है। यह सिक्किम को नेपाल से अलग करती है।

कँकड़ : सं० पु० १. पत्थर का छोटा टुकड़ा या हिस्सा। २. सूखी तमाखू कांकर, कांकरी। (व्रज)

कँकेर : सं० पु० एक प्रकार का पान जो कड़ुआ होता है।

कँजड़ : सं० पु० एक अनार्य जाति जो भारत के अनेक स्थानों में पाई जाती है। इसजाति के लोग रस्सी वँटते सिरकी वनाते और भीख माँगते हैं। उ० वह तो कंजड़ के यहाँ वैठ गई। (क० पु०)

कँवासा : सं० पु० लड़की के लड़के का लड़का, नाती का लड़का।

ककड़ी : सं० स्त्री० वह पदार्थ जो गरमियों के दिनों में वाड़ी में पैदा होता है। इस की तासीर ठंडी होती है। (वल० १३)

कक्का : सं० पु० चाचा। (भा० २।३४५)

कगिरी : सं० पु० एक प्रकार का वृक्ष जिसके दूध से रवड़ वनता है।

कगेड़ी : सं० पु० एक पेड़ का नाम जो भारत में प्रायः सव जगह होता है। इसकी लकड़ी इमारतों में नहीं लग सकती।

कचरी : स० स्त्री० एक वेल जिस पर एक डेढ़ हाथ का फल लगता है। ककड़ी।

कचलेंड़ : सं० पु० एक सर्प जिसके दोनों

और मुंह होता है। दुमुँही।

कचौरा : सं० पु० प्याला, कटोरा। (स्त्री० कचौरी) उ० भरि अपने कर कनक कचौरा पीवति प्रियहिं चुखाये। (सूर०)

कचौरी : सं० स्त्री० मोटी पूरी जिसमें उर्द या किसी दाल की पीठी भरी जाती है। उ० पूरी सपूरि कचौरी कौरी, सदल सु उज्वल सुन्दर सौरी। (सूर० २३३१)

कच्छ : सं० पु० तुन का पेड़। उ० राम प्रताप हुतासन कच्छ विपच्छ समीर समीर दुलारी। (तुलसी)

कछोटी : सं० स्त्री० वह वस्त्र जो नीचे पहना जाता है। उ० लावन की कछोटी (भा० २।११८)

कटड़ा : सं० पु० भैंस का वच्चा। उ० एक रंडी का कटड़ा सारा दिन दरवाजे के सामने वंधा रहा। (गि० दी० ३१६)

कटनास : सं० पु० नीलकंठ, यह सुन्दर पक्षी है जो पेड़ों के कीड़े खाता है। वहु कटनास रहैं तेहि वासा, देखि सौ पाव भाग जेहि पासा। (उसमान)

कटभी : सं० पु० मझोले आकार का वृक्ष जिसका व्यवहार औषध में होता है। करभी, हरसल।

कटरना : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली।

कटरा : सं० पु० १. भैंस का पाड़ा। २. मुहल्ला, गली। ३. उसे कटरा नील और दरीवा की गलियों में ले गयी। (झूठा० २।१५३)

कटरिया : सं० पु० एक प्रकार का धान जो असम में वहुत होता है।

कटरी : सं० स्त्री० १. धान की फसल का एक रोग। २. किसी नदी के किनारे की नीची और दलदल जमीन जिसके किनारे नरकट आदि होता है।

कटहरा : सं० स्त्री० एक प्रकार की छोटी मछली जो उत्तरी भारत और असम की नदियों में पाई जाती है।

कटार : सं० पु० एक प्रकार का अस्त्र जो तलवार जैसा होता है। सिख लोग इसी को रखते है। कट्टारिया (दे० ना० २।४) उ० कजरी ने कटारी छिपा रखी थी। (क० पु०)

कटोरा : सं० पुं० (स्त्री० कटोरी) प्याला-नुमा काँसे का वरतन। अव यह पीतल आदि का भी वनने लगा है।

कट्ठा : सं० पु० एक माप जो जमीन नापने लिए प्रयुक्त होता है। जमीन की विस्वा तौल। उ० छोटे मालिक ने दस कट्ठा खेत दे रखा था। (वल० २३)

कठिन : वि० दुष्कर। उ० कठिन करम-गति मेटि जिन (भा० २।२२७)

कड़खा : सं० पु० छंद विशेष—उ० मोरवा वैरी कड़खा गावै। (भा० २।५०)

कड़वाल : सं० पु० मिट्टी का एक वरतन जो आकार में घड़े के वरावर होता है। (व्र०श०)

कड़वी : सं० स्त्री० ज्वार का पेड़ जिसके मुहे काट लिए गये हों और जो चारे के लिए छोड़ दिया गया हो। उ० श्याम और एशिया के पूर्वी देशों में घोड़े शाम और सुवह कड़वी और जौ खाते है। (शिवप्रसाद)

कड़ीखाया : सं० स्त्री० स्त्रियों की एक गाली। उ० कड़ी खाया मन का मेल न करें। (क० पु० ४८)

कढ़ी : सं० स्त्री० खाद्य विशेप जिसे वेसन से वनाया जाता है। (व्र० श०)

कणकच । सं० पु० १. केंवाच, कौंछ। २. करंज, कंजा।

कणाच : सं० पु० कैवाच, करैंच, कौंछ।

कतरनाल : सं० स्त्री० एक प्रकार की घिन्नी जिस पर दोहरी गड़ारी होती है। (लश०)

कतरी : सं० स्त्री० वह यंत्र जिसकी सहायता से जहाज पर नावें रखी जाती हैं। (लश०)

कतवार : सं० पु० कूड़ा, मैला, कचरा। कुचरा (गुजराती)।

कतान : सं० पु० १. प्राचीनकाल का एक प्रकार का बहुत बढ़िया कपड़ा जो अलसी की छाल से बनता था। २. एक प्रकार का बढ़िया रेशमी कपड़ा।

कतारा : सं० पु० इमली का फल। कतारी।

कतारी : सं० पु० मझोले आकार का एक प्रकार का सदाबहार पेड़ जिसकी टहनियाँ लम्बी और कोमल होती हैं और पत्ते एक बालिश्त के होते हैं।

कतीरा : सं पु० गूल नामक वृक्ष का गोंद जो खूब सफेद होता है और पानी में नहीं घुलता। यह ठंडा होता है। इसे रक्त-विकार तथा धातु-विकार के रोगों में दिया जाता है।

कथरी : सं० स्त्री० फटे हुए कपड़ों की बनाई हुई गद्दी जिसे बिछाया जाता है। उ० गदेलों और कथरियों पर लेटी जवान औरतें काम-काज से थककर छाती पर हाथ रखे सपने देखने की तैयारी कर रही थीं। (सा०ल०म० १)

कनई : सं० स्त्री० गुल नामक पेड़ जिससे कतीरा निकलता है।

कनकानी : सं० पु० घोड़े की एक जाति जो डीलडौल में गधे से कुछ बड़े, कदमबाज तथा तेज होते हैं। उ० चले सहस बैसक सुलतानी, तीख तुरंग बाँक कनकानी। (जायसी)

कनखुरा : सं० पु० रीहा नाम की घास जो असम में बहुत होती है। बंगाल में इसे कुरकुंड भी कहते हैं।

कनमेंड़ी : सं० स्त्री० एक प्रकार का सन का पौधा जो अमेरिका से भारत में लाया गया है। इसके पत्ते फल और फूल भिंडी की तरह होते हैं।

कनार : सं० पु० घोड़े का जुकाम (सर्दी)।

कनाल : सं० पु० पंजाब में जमीन की एक नाप जो बीघे की चौथाई के बराबर होता है।

कनेती : सं० स्त्री० दलालों की बोली में रुपया।

कनोजर : सं० पु० तमाखू की पहली बार की फसल।

कपड़ा : सं० पु० वस्त्र, जामा, पहनने का आवरण। मु० कपड़ों से होना (रजस्वला होना); कपड़ों में न समाना (आनन्द से फूलना) आदि।

कपासी : सं० स्त्री० भोटिया बादाम, यह पेड़ मझोले डीलडौल का होता है। इसका फल खाया जाता है।

कपोला : सं० पु० वैश्यों की एक जाति।

कबकबी : सं० पु० खरास, फाँस, फंदा, कसैली वस्तु। उ० जिमीकंद की कबकबी इत्ती खटाई से कटी होगी। (बाबा० ८५)

क़बड्डी : सं० स्त्री० लड़कों का एक खेल जिसमें वे दो दलों में होकर कबड्डी-कबड्डी कहकर खेलते हैं। मुहा० कबड्डी खेलना—कूदना, फाँदना।

कबार : सं० पु० एक छोटा पेड़ या झाड़ी।

कबाल : सं० स्त्री० खजूर का रेशा जिसे बटकर रस्सा बनाते हैं।

कमटा : सं० पु० एक छोटा काँटेदार पौधा।

कमरँगा : सं० पु० बंगाल की एक मिठाई का नाम।

कमली : सं० स्त्री० पगली, निगोड़ी। हँसी से लड़की को कहा जाने वाला शब्द। उ० चल कमली—पूरणदेई लाड़ से बोली— (झूठा० २।४५९)

कम्मा : सं० पु० ताड़-पत्र पर लिखा हुआ लेख।

करंजुवा : सं० पु० घमोई। १. एक प्रकार के अंकुर जो बाँस, ऊख या उसी जाति के पौधों में होते हैं और उनको हानि पहुँचाते हैं। २. जौ के पौधे का एक रोग जो खेती के लिए हानिकारक है।

करइत : सं० पु० १. एक तरह का कीड़ा जो अनुमानतः छह अंगुल लम्बा होता है और हवा में उड़ता है। २. काली मिट्टी वाली जमीन।

करकंच : सं० पु० एक प्रकार का नमक जो समुद्र के पानी से निकाला जाता है।

करछुल : सं० पु० साग भाजी बनाने का चमचा, अल्प कर्छी। (ब्र०श०)

करजान : सं० पु० केले का बाग। उ० करजान था, खडोर थी। (वल० १००)

करतली : सं० स्त्री० गाड़ीवान के बैठने की जगह।

करलू : सं० स्त्री० खेत सींचने की दौरी की रस्सियों के सिरे पर लगी हुई लकड़ी जो हाथ में रहती है।

करदल, करदला : सं० पु० एक छोटा वृक्ष जिसकी टहनियों के सिरों पर छोटी छोटी पत्तियों के गुच्छे रहते हैं। यह मार्च-अप्रैल में फूलता है। इसके बीज खाए जाते हैं।

करधर : सं० पु० महुवे के फल की रोटी। महुअरी।

करपरी : सं० स्त्री० बरी। पीठी की पकौड़ी। उ० भई मुगौंछें मिरचहि परी कीन्ह मुँगौरी और करपरी। (जायसी)

करपा : सं० पु० अनाज के तैयार पौधे जिनमें बाल लगी हो। लैहना।

करपान : सं० पु० एक चर्म-रोग जिसमें बच्चों के शरीर पर लाल-लाल दाने निकल आते हैं।

करवच : सं० पु० बैलों पर लादने का दुहरा थैला, खुरजी, गौन।

करवस : सं० पु० दरियाई घोड़े के चमड़े का बना हुआ एक प्रकार का चाबुक जो अफ्रीका के सिनार नगर में बनता है।

करम : सं० पु० एक बहुत ऊँचा पेड़ जिसकी खुरदरी छाल के नीचे पीले रंग की मजबूत लकड़ी होती है जो इमारती तथा असबाब बनाने के काम आती है। हलद्रू, हरद्रू।

करमई : सं० स्त्री० कचनार की जाति का एक झाड़ीदार पेड़। लोग इसकी पत्तियों का साग भी खाते हैं।

करमाला : सं० पु० अमलतास। यह औषध के काम आता है।

करमूली : सं० पु० एक पहाड़ी पेड़ जो गढ़वाल और कुमाऊं में बहुत होता है।

करमेस : सं० पु० करघा की एक लकड़ी जो ऊपर की ओर बँधी रहती है। कुल-वांसा, कुलर, अमेर, सुत्तर।

करर : सं० पु० १. एक जहरीला कीड़ा जिसके शरीर में बहुत-सी गाँठें होती हैं। २. रंग के अनुसार घोड़े का एक भेद। ३. एक प्रकार का जंगली कुसुम या बर्रे का पौधा।

करलुरा : सं० पु० एक प्रकार की काँटेदार लता जिसमें सफेद और गुलाबी फूल

लगते हैं। इसकी पत्तियाँ हाथी बड़े चाव से खाते हैं।

करवंठ : सं० स्त्री० एक प्रकार की लता जिसमें ४-५ इंच लम्बी पत्तियाँ और पीले फूल लगते हैं।

करवर : सं० स्त्री० अलप-घाव, विपत्ति, आफत, मुसीवत। उ० (क) मुनि प्रसाद मेरे रामलखन की विधि बड़ी करवर टारी (तुलसी) (ख) जब ते जनम भयो हरि तेरो कितने करवर टरे कन्हाई। (सूर)

करवल : सं० स्त्री० जस्ता मिली चाँदी। वह चाँदी जिसमें दो आने भर जस्ता मिला हुआ हो।

करवोटी : सं० पु० एक चिड़िया का नाम। उ० करवोटी वगवगी नाक वास वेसर दे श्यामा वया कूरना गरुर गहियतु है। (रघुनाथ)

करसनी : सं० स्त्री० एक प्रकार की लता जिसकी पत्तियां २-३ इंच लम्बी होती हैं। जिन पर भूरे रंग के रोएँ होते हैं। इसकी जड़ और पत्तियां दवा के काम आती हैं।

करहनी : सं० पु० एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है और जिसका चावल वहुत दिनों तक रहता है।

करहा : सं० पु० सफेद सिरिस का वृक्ष।

करहाई : सं० स्त्री० एक प्रकार की वेल।

करही : सं० स्त्री० वह दाना जो पीटने के वाद वाल में लगा रहता है।

करिल : सं० पु० कड़ाह। उ० करिल चड़े तहँ पाकहिं पूरी (जा० ५४३।३)

करीना : सं० पु० टाँकी, पत्थर गढ़ने की छेनी।

करीमभार : सं० पु० एक प्रकार की जंगली घास जो चौपायों को हरी और सूखी खिलाई जाती है।

करील : सं० पु० वह वृक्ष जिस पर पत्ते नहीं होते हैं। इस पर गुलावी रंग का फूल चैत में आता है। (सूर०)

करुआ : सं० पु० दारचीनी की तरह का एक पेड़ जिसकी सुगन्धित छाल और पत्तियों से एक प्रकार का तेल निकलता है जो सिरदर्द के काम आता है।

करेता : सं० पु० वरियारा, वला, खिरेंटी।

करेपाक : सं० स्त्री० कृष्ण निंव, मीठी नीम।

करेर : सं० स्त्री० चोट, आघात। उ० सूर रसिक विन को जीवत है निर्गुन कठिन करेर। (सूर०)

करेरुआ : सं० पु० एक कँटीली वेल जिसके पत्ते नीवू के आकार के होते हैं। चैत वैसाख में इसमें हल्के करोंदिया रंग के फूल लगते हैं जिनकी केसर वहुत लंबी होती है। इस पर परवल की तरह फल लगते हैं।

करेलनी : सं० स्त्री० लकड़ी की वह फरुई जिससे घास का अटाला लगाते हैं।

कर्चो : सं० स्त्री० एक चिड़िया।

कर्नेता : सं० पु० रंग के अनुसार घोड़े का भेद। उ० कारुमी संदली स्याह करनेता खना। (सूदन)

कर्र-कर्र : सं० स्त्री० कड़ी आवाज, कर्ण-कटु ध्वनि, कड़ी वस्तु से निकलने वाला शब्द। उ० काला कौआ चीखता रहता है कर्र-कर्र। (वावा० ५५)

कर्री : सं० स्त्री० एक प्रकार का वृक्ष जिसके पत्ते वड़े होते हैं जो मार्च में झड़ जाते हैं। पत्ते चारे के काम आते हैं।

कलगट : सं० पु० कुल्हाड़ी।

कलफा : सं० पु० कल्ला, कोंपल, नया अंकुर।

कलब : सं० पु० टेसू के फूलों को उबालकर निकाला हुआ रंग जिसमें कत्था, लोध और चूना मिलाकर अगरई रंग बनाते हैं।

कलरिन : सं० स्त्री० जोंक लगाने वाली स्त्री। कीड़ी लगाने वाली स्त्री।

कलवार : सं० पु० एक जाति विशेष, मद्यविक्रेता। उ० चली सुनारि सुहाग सुनाती। और कलवारि प्रेम मधुमाती। (जायसी)

कलहर : सं० पु० बनियों की एक जाति जो मध्यप्रदेश में पाई जाती है।

कलिगा : सं० पु० तेवरी नामक पेड़ जिसकी छाल रेचक होती है।

कलेटा : सं० पु० एक प्रकार की बकरी जिसके बाल से कम्बल आदि बुने जाते हैं।

कलोईबोड़ा : सं० पु० एक प्रकार का बड़ा साँप या अजगर जो बंगाल में होता है।

कल्लर : सं० पु० १. नोनी मिट्टी, २. रेह ३. ऊसर, बंजर। उ० सैकड़ों क्लेशों के साथ एक-एक पैसा इकट्ठा करना और विवाह के समय अन्धे होकर कल्लर में बखेर देना। (भाग्यवती)

कल्लर : सं० पु० भिखारी, दरिद्री, याचक। उ० कहीं घबहा कुकुर, कहीं चालाक कौए, कहीं दंतनिपोड़ा कल्लर। (बल० ४५)

कवल : सं० पु० (स्त्री० कवली) १. एक पक्षी का नाम। २. घोड़े की एक जाति का नाम उ० जरदा जिरही जांग सुनौची अड़े खंजन। करर कवाहे कवल गिलगिल गुल गुल रंजन। (सूदन)

कसक : सं० स्त्री० चोट, आघात। उ० जन पै सब कसक मिटा जारे। (भा० २।१८५)

कसर : सं० पु० कुसुम या बर्रे का पौधा।

कसिया : सं० पु० भूरे रंग की एक चिड़िया जो राजपूताने और पंजाब को छोड़कर सारे भारत में पाई जाती है।

कसून : सं० पु० कंजी आँख का घोड़ा। सुलेमानी घोड़ा।

कसैली : सं० स्त्री० सुपारी। उ० उसने कसैली का टुकड़ा निकाल कर कहा— (बाबा० ६१)

कस्तूरा : सं० पु० १. जहाज के तख्तों की संधि या जोड़ा। २. वह सीप जिससे मोती निकलता है। ३. एक चिड़िया जिसका रंग भूरा, पेट कुछ सफेदी लिये तथा चोंच और पैर पीले होते हैं। ४. एक औषधि जो पोर्ट ब्लेयर के पहाड़ों की चट्टानों से खुरचकर निकाली जाती है। यह बहुत पुष्टिकारक होती है।

कहतूत : सं० पु० उपहास करने में प्रयुक्त। उ० इस कहतूत में ऐसी अच्छी शिक्षा है। (प्र० ग्र० ३५२)

कहल : सं० पु० १. उमस, औंस, व्याकुल करने वाली गरमी। २. ताप, कष्ट। उ० रघुराज आनन्द को दहल अवध भयो किढगो कलेस कोटि कलमष कहल को। (रघुराज)

कहाल : सं० पु० एक बाजा। उ० बाजत विशाल कहाल त्यों करताल तालन संग। (रघुराज)

काँवर : सं० स्त्री० बहँगी, कावर, कावड़ (गुजराती)

काँवरा : सं० पु० १. व्याकुल, घबराया

हुआ, भौंचक्का । २. पागल (पं०)

काऊ : सं० स्त्री० वह छोटी खूँटी बरही के सिरे पर जोते खेत को बराबर करने वाले पाटे या हेंगे में लगी रहती है।

काकड़ा : सं० पु० एक प्रकार का हिरन। साँभर, सावर।

काका : सं० पु० १. चाचा, पिता का छोटा भाई। २. बच्चा, लड़का। तुम तो काके को कुछ समझते ही नहीं।
(झूठा० १।६३)

काकी : सं० स्त्री० चाची, पिता के छोटे भाई की स्त्री।

काखना : क्रि० अ० पीड़ा या दुःख से आह भरना, कराहना। उ० आह भरना या काखना गुनाह है। (भ० नि० ६६)

कागिया : सं० स्त्री० तिब्बत देश की एक भेड़ जिसे मांस के लिए ही पाला जाता है।

काठू : सं० पु० कूटू की तरह का एक पौधा जिसकी खेती हिमालय के कम ठंडे स्थानों में होती है। इसकी तरकारी भी बनती है।

काठों : सं० पु० एक प्रकार का मोटा धान जो पंजाब में होता है।

कानगी : सं० पु० कोंकण प्रदेश का एक बड़ा पेड़ जिसकी लकड़ी मकानों में लगती है इसके फल जायफल के समान होते हैं।

कानाटीटी : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास।

कानि : सं० स्त्री० १. लोकलज्जा। उ० लाज कानि कुल में टिके गहिले निकला लाल (कबीर)। २. लिहाज, दबाव, संकोच।

कारन : सं० पु० शराब, ठर्रा, वह शराब जो किसी देवता को अर्पित कर दी गई हो। उ० कारन और प्रसाद की अतिरिक्त मात्रा को जितेन्द्र की मां कम नहीं कर सकती थी। (परती० ३२०)

कारिक : सं० पु० करघे की वह चिकनी खरकूता जो ताने को सँभालती है।

काला ढोकरा : सं० पु० एक वृक्ष जिसकी डालियाँ नीचे की ओर झुकी होती हैं और जाड़े में पत्तियाँ ताँबे के रंग की हो जाती हैं। धवा, धव।

कालिज : सं० पु० एक प्रकार का चकोर जो शिमला में मिलता है।

कालू : सं० स्त्री० सीप की मछली। सीप के अन्दर का कीड़ा। लोना कीड़ा। सियाल पोका।

कावड़ : सं० पु० एक छोटी बर्छी जो जहाज की गलही में बँधी रहती है और जिससे 'ह्वेल' आदि का शिकार करते हैं।

कावरी : सं० पु० रस्सी का फंदा जिसमें कोई चीज बाँधी जाए। यह दो रस्सियों को ढीला बटकर बनाया जाता है और जहाज में काम आता है। मुद्धी (लश०)

कावली : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली जो दक्षिण भारत की नदियों में होती है।

कासर : सं० स्त्री० वह काली भेड़ जिस के पेट के रोएँ लाल रंग के हों।

किकोरी : सं० पु० एक प्रकार का पौधा।

किचिर-किचिर : सं० स्त्री १. परेशानी, झंझट, २. गीलापन, ३. भीड़। उ० बीमारियों की यह किचिर-किचिर हमेशा नहीं लगी रहती थी।
(बाबा० ४१)

किटकिटाना : क्रि० अ० दाँतों से आवाज़ करना, गुस्से से दाँत पीसना। उ० दाँत किटकिटाते हुए उसने कहा।
(टे० मे० रा० २७७)

किनाती : सं० स्त्री० एक चिड़िया जो तालों के किनारे रहती है और जिसकी चोंच हरी तथा सिर और कंठ सफेद होता है।

किन्नर : सं० पु० तकरार, दलील, विवाद।

किरकिन : सं० पु० एक प्रकार का दानेदार चमड़ा जो घोड़े या गदहे का होता है।

किरकिरा : वि० वेस्वाद, खराव, कंकड़ी या रेत से मिला हुआ कोई पदार्थ। उ० सारा मजा किरकिरा हो गया। (बाबा० १६)

किरचिया : सं० पु० एक पक्षी जो वगुले से छोटा होता है। इसके पंजे की झिल्ली सुनहले रंग की होती है।

किरची : सं० पु० १. एक प्रकार का रेशम जो वंगाल में होता है। २. रेशम का लच्छा। ३. किसी वस्तु का हिस्सा, किरिच, किरच।

किरार : सं० पु० एक निम्न जाति।

किर्रा : सं० पु० चिताई की एक कलम का नाम।

किलकिला : क्रि०अ० चकाचौंध होना। उ० सुनि सौ समुंद चख भै किलकिला। (जा० ६४।५)

किलकैया : सं०पु० एक प्रकार का नहरुए के ढंग का रोग जिसमें चौपायों के खुरों में कीड़े पड़ जाते हैं।

किलटा : सं० पु० वेंत का टोकरा जो इस ढंग का वना रहता है कि वस्तु का भार ढोने वाले के कंधों पर ही पड़ता है। इसे पहाड़ी लोग लेकर ऊँचाई पर चढ़ते हैं।

किलनी : सं०पु० एक कृमि जो पशुओं के शरीर में पड़ जाता है और वार-वार उन्हें परेशान करता रहता है। उ० अठौड़ी, किलनी, जूँ, चिल्लड़। (वल० ११)

किलमोरा : सं० पु० एक प्रकार की दारूहल्दी जिसकी झाड़ियाँ हिमालय पर कोसों फैली हुई मिलती हैं।

किलवांक : सं० पु० कावुल देश का एक प्रकार का घोड़ा। उ० कावुल के किलवांक कच्छ दच्छी दरियाई। उम्मट के हवसान जंगली जाति अलाई। (सूदन)

किलवा : सं० पु० वड़ा फावड़ा या वड़ी कुदाल। (रुहेलखंड)

किलवाई : सं० स्त्री० एक वड़ा पांचा व लकड़ी की फरुई जिससे सूखी घास या पुआल इकट्ठा करते हैं।

किलावा : सं० पु० सुनारों का एक औजार।

किहकल : सं०पु० एक चिड़िया।

कील : सं० स्त्री० खुंगी या देव कपास जो असम की गारो पहाड़ियों में होती है।

कुंजड़ा : सं० पु० १. स्त्रियों का दलाल, वेश्याओं के यहाँ रहने वाला। २. सब्जी वेचने वाला। उ० कुंजड़ा से कहकर अच्छी-से-अच्छी तरकारी मँगवाई जाती है। (वल० २०)

कुंडू : सं० स्त्री० काले रंग की एक चिड़िया जिसका कंठ और मुंह सफेद तथा पूंछ पीली होती है। कस्तूरा।

कुकड़ी : वि० पैरों को सिकोड़कर वैठने की एक क्रिया। उ० अउर कुकड़ी मार हरामी साले। (अलग० वै० २२४)

कुकुही : सं० स्त्री० वाजरे की फसल का एक रोग जिसमें वाल पर महीन-महीन काली वुकनी-सी जम जाती है और दाने नहीं पड़ते।

कुचकार : सं० पु० भेड़ की एक जाति।

हुआ, भौंचक्का। २. पागल (पं०)

काऊ : सं० स्त्री० वह छोटी खूँटी बरही के सिरे पर जोते खेत को बराबर करने वाले पाटे वा हेंगे में लगी रहती है।

काकड़ा : सं० पु० एक प्रकार का हिरन। साँभर, सावर।

काका : सं० पु० १. चाचा, पिता का छोटा भाई। २. बच्चा, लड़का। तुम तो काके को कुछ समझते ही नहीं।
(झूठा० १।६३)

काकी : सं० स्त्री० चाची, पिता के छोटे भाई की स्त्री।

काखना : क्रि० अ० पीड़ा या दुःख से आह भरना, कराहना। उ० आह भरना या काखना गुनाह है। (भ० नि० ६६)

कागिया : सं० स्त्री० तिब्बत देश की एक भेड़ जिसे मांस के लिए ही पाला जाता है।

काठू : सं० पु० कूटू की तरह का एक पौधा जिसकी खेती हिमालय के कम ठंडे स्थानों में होती है। इसकी तरकारी भी बनती है।

काठों : सं० पु० एक प्रकार का मोटा धान जो पंजाब में होता है।

कानगी : सं० पु० कोंकण प्रदेश का एक बड़ा पेड़ जिसकी लकड़ी मकानों में लगती है इसके फल जायफल के समान होते हैं।

कानाटीटी : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास।

कानि : सं० स्त्री० १. लोकलज्जा। उ० लाज कानि कुल में टिके गहिले निकला लाल (कबीर)। २. लिहाज, दबाव, संकोच।

कारन : सं० पु० शराब, ठर्रा, वह शराब जो किसी देवता को अर्पित कर दी गई हो। उ० कारन और प्रसाद की अतिरिक्त मात्रा को जितेन्द्र की मां कम नहीं कर सकती थी। (परती० ३२०)

कारिक : सं० पु० करघे की वह चिकनी खरकूता जो ताने को सँभालती है।

काला ढोकरा : सं० पु० एक वृक्ष जिसकी डालियाँ नीचे की ओर झुकी होती हैं और जाड़े में पत्तियाँ ताँबे के रंग की हो जाती हैं। बवा, घव।

कालिज : सं० पु० एक प्रकार का चकोर जो शिमला में मिलता है।

कालू : सं० स्त्री० सीप की मछली। सीप के अन्दर का कीड़ा। लोना कीड़ा। सियाल पोका।

कावड़ : सं० पु० एक छोटी बर्छी जो जहाज की गलही में बँधी रहती है और जिससे 'ह्वेल' आदि का शिकार करते हैं।

कावरी : सं० पु० रस्सी का फंदा जिसमें कोई चीज बाँधी जाए। यह दो रस्सियों को ढीला बटकर बनाया जाता है और जहाज में काम आता है। मुद्धी (लश०)

कावली : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली जो दक्षिण भारत की नदियों में होती है।

कासर : सं० स्त्री० वह काली भेड़ जिस के पेट के रोएँ लाल रंग के हों।

किकोरी : सं० पु० एक प्रकार का पौधा।

किचिर-किचिर : सं० स्त्री १. परेशानी, झंझट, २. गीलापन, ३. भीड़। उ० बीमारियों की यह किचिर-किचिर हमेशा नहीं लगी रहती थी।
(बाबा० ४१)

किटकिटाना : क्रि० अ० दाँतों से आवाज करना, गुस्से से दाँत पीसना। उ० दाँत किटकिटाते हुए उसने कहा।
(टे० मे० रा० २७७)

किनाती : सं० स्त्री० एक चिड़िया जो तालों के किनारे रहती है और जिसकी चोंच हरी तथा सिर और कंठ सफेद होता है।

किन्नर : सं० पु० तकरार, दलील, विवाद।

किंरकिन : सं० पु० एक प्रकार का दानें-दार चमड़ा जो घोड़े या गदहे का होता है।

किरकिरा : वि० वेस्वाद, खराव, कंकड़ी या रेत से मिला हुआ कोई पदार्थ। उ० सारा मजा किरकिरा हो गया। (वावा० १६)

किरचिया : सं० पु० एक पक्षी जो वगुले से छोटा होता है। इसके पंजे की झिल्ली सुनहले रंग की होती है।

किरची : सं० पु० १. एक प्रकार का रेशम जो वंगाल में होता है। २. रेशम का लच्छा। ३. किसी वस्तु का हिस्सा, किरिच, किरच।

किरार : सं० पु० एक निम्न जाति।

किर्रा : सं० पु० चिताई की एक कलम का नाम।

किलकिला : क्रि०अ० चकाचौंध होना। उ० सुनि सौ समुंद चरवु भै किल-किला। (जा० ६४।५)

किलकैया : सं०पु० एक प्रकार का नहरुए के ढंग का रोग जिसमें चौपायों के खुरों में कीड़े पड़ जाते हैं।

किलटा : सं० पु० वेंत का टोकरा जो इस ढग का वना रहता है कि वस्तु का भार ढोने वाले के कंधों पर ही पड़ता है। इसे पहाड़ी लोग लेकर ऊँचाई पर चढ़ते है।

किलनी : सं०पु० एक कृमि जो पशुओं के शरीर में पड़ जाता है और वार-वार उन्हें परेशान करता रहता है। उ० अठौड़ी, किलनी, जूं, चिल्लड़। (वल० ११)

किलमोरा : सं० पु० एक प्रकार की दारु-हल्दी जिसकी झाड़ियाँ हिमालय पर कोसों फैली हुई मिलती हैं।

किलवांक : सं० पु० कावुल देश का एक प्रकार का घोड़ा। उ० कावुल के किल-वांक कच्छ दच्छी दरियाई। उम्मट के हवसान जंगली जाति अलाई। (सूदन)

किलवा : सं० पु० वड़ा फावड़ा या वड़ी कुदाल। (रुहेलखंड)

किलवाई : सं० स्त्री० एक वड़ा पांचा व लकड़ी की फरुई जिससे सूखी घास या पुआल इकट्ठा करते हैं।

किलावा : सं० पु० सुनारों का एक औजार।

किहकल : सं०पु० एक चिड़िया।

कील : सं० स्त्री० खुंगी या देव कपास जो असम की गारो पहाड़ियों में होती है।

कुंजड़ा : सं० पु० १. स्त्रियों का दलाल, वेश्याओं के यहाँ रहने वाला। २. सब्जी वेचने वाला। उ० कुंजड़ा से कहकर अच्छी-से-अच्छी तरकारी मँगवाई जाती है। (वल० २०)

कुंडू : सं० स्त्री० काले रंग की एक चिड़िया जिसका कंठ और मुँह सफेद तथा पूंछ पीली होती है। कस्तूरा।

कुकड़ी : वि० पैरों को सिकोड़कर वैठने की एक क्रिया। उ० अउर कुकड़ी मार हरामी साले। (अलग० वै० २२४)

कुकुही : सं० स्त्री० वाजरे की फसल का एक रोग जिसमें वाल पर महीन-महीन काली वुकनी-सी जम जाती है और दाने नहीं पड़ते।

कुचकार : सं० पु० भेड़ की एक जाति।

कुलजा।

कुटकी : सं०स्त्री० १. एक छोटी चिड़िया जो घने जंगलों में होती है और ऋतु के अनुसार रंग बदलती है। २. बादिये के पेच का वह भाग जिसमें लोहे की कीलों और छड़ों में पेच बनाया जाता है।

कुठाकु : सं० पु० कठफोड़वा पक्षी।

कुठो : सं०स्त्री० एक प्रकार की कटाली बर्रे या कुसुम का पेड़ जो रंग बनाने के काम आता है।

कुड़ : सं०पु० अन्न की राशि। कूरा।

कुड़कुड़ाना : क्रि० अ० बोलना, क्रोध से बकना, मन-ही-मन में घुटना, मुर्गे का बोलना। उ० कुड़क मुर्गी की तरह डैने छोड़े कुड़कुड़ाया करते थे। (आधा० ३७६)

कुड़माई : सं०स्त्री० सगाई, कुड़ी+माई, लड़की के पत्नी होने की एक पूर्व रस्म, एक रिवाज़। उ० तेरी कुड़माई हो चुकी है। (झूठा० १।१४)

कुड़मुड़ाना : क्रि०अ० गुस्सा होना, अन्दर ही अन्दर क्रोध दबाना, दाँत पीसना। उ० अन्दर ही अन्दर रईसजादे बड़े कुड़मुड़ाये होंगे। (रदै० ३६१)

कुडुक : सं० पु० प्राचीन काल का एक बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा होता था।

कुडेरना : क्रि०स० राब के बोरों को एक दूसरे पर इस प्रकार रखना जिससे उस की जूसी बहकर निकल जाए।

कुतुली : सं०स्त्री० इमली का कोमल फल जिसके बीज मुलायम हों। कंटिया।

कुत्ता : सं० पु० भेड़िये, गीदड़ और लोमड़ी की जाति का एक हिंसक पशु जिसे लोग प्रायः घर की रक्षा के लिए पालते हैं। इसकी अनेक जातियाँ हैं। इसकी घ्राण शक्ति बड़ी प्रबल होती है। शिकार में इससे बड़ी सहायता मिलती है।

कुद्रव : सं० पु० तलवार चलाने के ३२ हाथों में से एक। उ० धृतलपन कुद्रव क्षिप्त सव्येतर तथा उत्तरत को। (रघुराज)

कुनलई : सं० स्त्री० एक कंटीला छोटा पेड़ जिसमें बहुत-सी पतली टहनियाँ होती हैं। इसकी लकड़ी के खेमों के खूंटे आदि बनते हैं।

कुप्पल : सं० पु० एक प्रकार की सब्जी जिसके कलम बारीक और नुकीले होते हैं। यह लाल रंग की होती है और बरार की लोनार झील के पानी को सुखाकर निकाली जाती है।

कुप्पी : सं० स्त्री० तेल आदि रखने का पात्र, ढिबरी। उ० तेल की एक कुप्पी टिमटिमा रही थी। (टे०मे०रा० २६३)

कुबुद : सं० पु० एक प्रकार का बगुला।

कुमतुम : सं० पु० एक वृक्ष जिसकी लकड़ी भूरे रंग की और बहुत मजबूत होती है और इमारत के काम आती है।

कुमाच : सं० पु० बेडौल रोटी जो कहीं से मोटी और कहीं से पतली हो।

कुनाल : सं० पु० एक छोटा पेड़ जो ८-१० फुट ऊँचा होता है। इसकी पत्तियाँ ४-५ इंच लम्बी होती हैं। जेठ-आसाढ़ में फूलता है और इसका फल खाया जाता है।

कुमेड़िया : सं०पु० एक छोटी जाति का हाथी।

कुमेड़ : सं०पु० छल, कपट, धोखा, दगा।

कुरंबा : सं० पु० भेड़ की एक जाति जो डीलडौल में छोटी होती है और जिसके बाल नीचे से काले पर सिरे से सफेद होते हैं। इसका मांस स्वादिष्ट होता है।

कुरकनी : सं०स्त्री० घोड़े या गदहे के चमड़े का अगला भाग जिसका कीमुख्त नहीं वन सकता।

कुरकुंड : सं० पु० एक घास जिसे रीहा और कनखुरा भी कहते हैं। इसके रेशे से जाल तथा कपड़े बनते हैं।

कुरकुरी : सं० पु० १. घोड़े की एक वीमारी जिसमें उसका पाखाना तथा पेशाव वन्द हो जाता है और पेट फूल जाता है। २. पतली मुलायम हड्डी, जैसे कान की होती है।

कुरड़ा : सं०पु० अरवी और तुरकी जाति के घोड़ों के जोड़े से उत्पन्न एक दोगली जाति का घोड़ा। इस जाति के घोड़े अरव में प्राप्त होते हैं।

कुरमाका : सं० पु० वे आड़ी लकड़ियाँ जो जहाज के नीचे अन्दर की ओर शहतीरों के वीच में उनको जकड़े रहने के लिए लगाई जाती हैं। (लश०)

कुरसथ : सं० स्त्री० एक प्रकार की मैली खाँड़।

कुरसा : सं० पु० एक वृक्ष जो वहुत शीघ्र वढ़ता है और देखने में वहुत अच्छा मालूम होता है।

कुराई : सं० स्त्री० पाँव में डालने की काठ।

कुराल : सं० पु० एक वृक्ष का नाम इस पर फलियाँ लगती हैं।

कुरी : सं० पु० कोल्हू। सं० स्त्री० १. धुस, टीला। २. हाल सौ करैं गौह लइ वाढ़ा। कुरी दुवौ पैज के काढ़ा। (जायसी)

कुरैल : सं०पु० मछली पकड़ने के लिए डंडियों वाला जाल। (व्र०श०)

कुर्री : सं०स्त्री० १. हैंगा, पटरा, पटेल, सुहागा। २. कुरकुरी हड्डी।

कुर्स : सं० पु० इस प्रकार की घास जिसकी जड़ लम्वी, नरम और मजबूत होती है, जो रस्सी बटने और चटाई बनाने के काम में आती है।

कुलंज : सं०पु० घोड़े का एक दोष जिसमें चलते समय उसकी टाँगें आपस में टकराती हैं।

कुलजा : सं० स्त्री० एक प्रकार की जंगली भेड़ जो पामीर और गिलगित में होती है। यह डीलडौल में वड़ी होती है। कुचकार।

कुलनार : सं० पु० एक खनिज पदार्थ व पत्थर जो सफेद व कुछ सुरमाई लिए होता है। सिलखड़ी, संगजराहत, सफेद-सुरमा, कर्पूर शिलासिता।

कुलसन : सं० स्त्री० एक चिड़िया।

कुलाँच : सं० पु० कूद। उ० मन जैसे कुलाँचें भरता हुआ अतीत के सीमाहीन और स्वच्छन्द क्षेत्र की ओर दौड़ चला। (गि० दी० ११०)

कुलाली : सं० स्त्री० दुरवीन। (डिंगल)

कुलू : सं०पु० १. एक पेड़ जिसकी मुलायम छाल के पर्त निकलते हैं। पत्तियाँ १०-१२ इंच लम्बी होती हैं और टहनियों के सिरों पर गुच्छों में होती हैं। गुलू। २. हिमाचल प्रदेश में एक स्थान।

कुल्ला : सं० पु० १. पाखाना निवटान (पूर्वी उत्तर प्रदेश)। २. गड्प, कुल्ली, जिह्वा, दाँत आदि साफ करने की प्रक्रिया। उ० टोंटीसे हाथ धोकर कुल्ला किया। (झूठा० २।१०)

कुल्हड़ : सं० पु० मिट्टी का पोरवा। उ० मैंने हाथ उठाकर एक कुल्हड़ उठाया। (क० पु० ७५)

कुल्हाड़ी : सं० स्त्री० लकड़ी काटने का औजार। उ० अपने पैरों पर कुल्हाड़ी

मारने को वह तैयार है।
(टे० मे० रा० १४२)

कुसर : सं० पु० पानीवेल या मूसल नामक लता की जड़ जो दवा के काम आती है।

कुसियार : सं० पु० गन्ना, ईख। उ० आम, जामुन, कटहर, खीसा, कुसियार, ककड़ी, तरबूज। (बल० १३)

कुस्सा : सं० पु० कुदाल।

कुहर : सं० स्त्री० १. बहरी। एक प्रकार का शिकारी जो पक्षियों को पकड़ता है। २. एक प्रकार का पक्षी जिसका मांस खाया जाता है।

कूकी : सं० स्त्री० एक प्रकार का कीड़ा जो जाड़े की फसलों को हानि पहुँचाता है।

कूटू : सं० पु० एक पौधा जिसे तरकारी के लिए बोया जाता है। बीज काले रंग के तिकोने लम्बे और नुकीले होते हैं। भूसी निकल जाने पर उनके भीतर से दाने निकाल कर आटा पीसते हैं जो फलाहार के काम आता है। कुल्टू, काठू तुंबा, कसपत, कोटू।

कूबा : सं० पु० सीसे का गोलाकार एक औजार जिसे टेकुरी को भारी करने के लिए उसके नीचे चिपका देते हैं।

कूम : सं० पु० एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है। यह इमारत के लिए उपयोगी होती है।

कूमटा : सं० स्त्री० धारवार में होने वाली एक प्रकार की कपास।

कूरा : सं० पु० कूड़ा, ढेर। उ० बिनु जिय पिंड छार कर कूरा। (जायसी)

कूरी : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास। चपरेला, मोतिया।

कूली : सं० स्त्री० एक प्रकार की बहुत छोटी मछली जो दक्षिण भारत की नदियों में होती है।

कूल्हा : सं० पु० चूतड़ की हड्डी जिसका सम्बन्ध कमर से होता है।

कूल्ही : सं० स्त्री० पीतल (सुनारों की बोली)।

कूही : सं० स्त्री० बाज की जाति की एक प्रकार की शिकारी चिड़िया।

केंचुआ : सं० पु० १. कृमि विशेष जो बरसात में निकलता है, गिड़ार। २. पेट का कृमि। उ० जब एक दिन उसके पेट से एक केंचुआ गिरा तो उसने चुपके— (आधा: ६७)

केंत : सं० पु० एक प्रकार का मोटा बेंत जिसकी छड़ियाँ बनती हैं।

केरी : सं० स्त्री० आम का कच्चा और नया फल। अंबिया। (गुजराती)

केवटी : सं० स्त्री० एक प्रकार का बहुत छोटा कीड़ा।

कैंडल : सं० पु० एक प्रकार का पक्षी, बनतीतर।

कैवर : सं०स्त्री० तीर का फल या गाँसी। उ० (क) सीस झरोखे डारि के झाँकी घूंघट डारि। कैवर सी कसकै हिये बाँकी चितवन नारि। (शृं० सतसई)
(ख) रंगी नैन में औरो ललाई दौरि आई है। कि माँचो काम कैवर विश्व शोनित में डुबाई है। (प्रताप)

कैया : सं० पु० १. टीन का काम करने वालों का एक औजार जो करछीनुमा होता है तथा जिससे बरतन रांगे जाते हैं। २. मध्यभारत का घी तेल आदि नापने का एक मान जो प्रायः आधा पाव का होता है।

कोंचा : सं० स्त्री० ग्रन्थि, गाँठ, साड़ी या धोती की गाँठ। नीवी, नाभि के पास बाँधी जाने वाली ग्रन्थि। उ० कोंचा

खोलकर नंगी हो जाती और हाय वाप हाय वाप—(वल० २७)

कोंछ : सं० पु० किनारा, कपड़े का छोर। उ० धोती का कोंछ उनके कंधे पर पड़ा रहता। (राग दर० २३)

कोंड़ई : सं० पु० एक कटीला झाड़ जिस की पत्तियाँ ३-४ अंगुल लम्बी होती हैं। पत्तियाँ चारे के, फल खाने और जड़ तथा छाल दवा के काम आती है।

कोंथ : सं० पु० कुम्हारों की परिभाषा में वर्तन आदि का वह पूर्व रूप जो मिट्टी को चाक पर रखने के वाद वनता है।

कोंहरा : सं०पु० (स्त्री०कोंहरी) उवाले हुए चने या मटर जिनको तेल में छौंक कर नमक मिर्च लगाकर खाते हैं। घुंघनी।

कोआर : सं०पु० कोरा नामक वृक्ष।

कोकंव : सं० पु० एक पेड़ जिसके सव अंश खट्टे होते हैं।

कोकन : सं०पु० एक ऊँचा पेड़ जिसकी लकड़ी पर पीली-पीली धारियाँ होती हैं। इससे चाय के सन्दूक, नावें तथा मकानों की लकड़ियाँ वनती हैं।

कोकनी : सं०पु एक प्रकार का संतरा जो सहारनपुर और दिल्ली में होता है।

कोकनी : वि० १. छोटा, नन्हा, जैसे कोकनी वेर, कोकनी केला। २. घटिया, निकृष्ट, जैसे कोकनी कलावत्तू।

कोकम : सं०पु० एक छोटा सदावहार पेड़ जो केवल दक्षिण भारत में होता है।

कोगी : स०पु० लोमड़ी से मिलता-जुलता एक प्रकार का जानवर जो झुंड में रहता है और फसल को वहुत हानि पहुँचाता है। जिस जंगल में कोगी का झुंड होता है उसमें से शेर डरकर भाग जाता है।

कोचकी : सं०पु० मकोइया से मिलता-जुलता एक रंग जो ललाई लिये भूरा होता है और कई प्रकार से वनाया जाता है।

कोचरा : सं०पु० वड़े पेड़ों पर चढ़ने वाली घनी लता जिसकी पत्तियाँ एक अंगुल लम्वी होती हैं तथा दोनों ओर नुकीली होती हैं।

कोचरी : सं०पु० एक प्रकार का पक्षी।

कोचिंडा : सं०पु० जंगली प्याज जो दक्षिण हिमालय में होता और खाने और दवा के काम में आता है। कौड़ा।

कोची : सं०पु० ववूल की किस्म का एक जंगली पेड़।

कोट अरलू : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली जो खाने में वड़ी स्वादिष्ट होती है।

कोट गंधल : सं०पु० एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी कड़ी, चिकनी और मजवूत होती है और इमारत के काम आती है।

कोड़ा : सं०पु० १. एक प्रकार का वाँस जो दक्षिण में होता है। २. कुश्ती का एक पेच।

कोढ़िया : सं०पु० गलगलिया के वरावर सिलहटी रंग का एक पक्षी। (व्र०श०)

कोतरी : सं०स्त्री०एक प्रकार की मछलीन

कोथ : सं०पु० वाजरे की वाल जिस स्था। से निकलती है वह।

कोथमीर : सं० पु० हरा धनिया। (गुजराती)

कोथी : सं०स्त्री० (तलवार के) स्थान के सिरे पर लगा हुआ धातु का छल्ला या टुकड़ा।

कोनलाय : सं०पु० १९ की संख्या।

कोपड़ : सं०पु० पहरा, सरावाँ, हेंगा।

कोवड़ी : सं०पु० एक प्रकार का वृक्ष जो वरमा और नेपाल में अधिकता से होता है।

कोमता : सं०पु० कीकर की जाति का एक बड़ा सदावहार वृक्ष जो रेतीले इलाकों में अधिकता से होता है।

कोमर : सं०पु० खेत का वह कोना जो किसी ओर अधिक बढ़ गया हो।

कोयता : सं०पु० ताड़ी टपकाने वालों का एक औजार जिससे वे छेव लगाते हैं। (हि०श०सा०)

कोयदा : वि० खराव, विगड़ा, नष्ट। उ० वड़ा कोयदा है। (झूठा० १।१२)

कोयला : सं०पु० एक प्रकार का वहुत वड़ा पेड़ जिसकी लकड़ी इमारती होती है। सोम।

कोरंगा : सं० पु० गोवर और मिट्टी से पोती हुई एक प्रकार की दौरी जिसमें अनाज आदि रखते हैं।

कोर : सं०स्त्री० १. चैती फसल की पहली सिंचाई। २. वह चवैना या खाद्य पदार्थ जो मजदूरों या कुलियों को जलपान के लिए दिया जाता है। छाक, पनपियाव।

कोरवा : सं०पु० पान की खेती का दूसरा वर्ष। जो पान पौधों में दूसरे वर्ष लगता है वह अधिक उत्तम समझा जाता है।

कोरसाकेन : सं० पु० एक प्रकार का वड़ा और सुहावना पेड़ जो वहुत जल्दी वढ़ता है। इसकी लकड़ी मजवूत तथा इमारती होती है।

कोरहन : सं० पु० एक प्रकार का धान। उ० कोरहन, वड़हन, जड़हन मिला औ संसार तिलक खंडविला। (जायसी)

कोरा : सं० पु० १. विना चिरा वाँस जिनसे ठट्टर वनते हैं। उ० कोरे कहा ठाट नव साजा (जा० ३५६।७) २. एक पेड़ जो कद में छोटा होता है। इसकी लकड़ी सफेद चिकनी और नरम होती है। ३. एक प्रकार का सलमा जो कारचोव के काम आता है। ४. अरु के खेत की पहली सिंचाई। ५. विना किनारे की रेशमी धोती।

कोरा : वि० सादा (स्त्री०कोरी) उ० सत्य कहउ लिखि कागद कोरे (मा० १।९।६)

कोरिया : सं० पु० एक पक्षी जो कवूतर से छोटा होता है जिसकी चोंच और पंजे मटियाले होते हैं। यह वोलते समय तेऊँ तेऊँ की आवाज करता है। (व्र०श०)

कोलक : सं० पु० एक प्रकार का छोटा लम्वा औजार जिसकी सतह पर दाने-दाने होते हैं। इससे रेती और आरी तेज की जाती है।

कोलपार : सं० पु० मझोले कद का एक वृक्ष जिसकी कलियों का मुरव्वा वनता है। लकड़ी खेती के औजार वनाने के काम आती है।

कोला : सं० पु० गीदड़, शृगाल। सं० कोष्ट्रा।

कोलियार : सं०पु० एक प्रकार का झाड़ीदार पेड़ जिससे एक प्रकार का गोंद निकलता है। छाल, रंगने और चमड़ा सिझाने के काम आती है। महाराष्ट्र में इसकी पत्तियों में तम्वाकू लपेट कर वीड़ी वनाते हैं।

कोली : सं०पु० हिन्दू जुलाहे, कोरी। सं० कोलिकः।

कोल्हेना : सं० पु० एक प्रकार का मोटा चावल जो पंजाव में होता है।

कोल्हू : सं० पु० तेल या ईख पेरने का

यंत्र। (दि० ना० २।६५) उ० अँटीतल लगाये कोल्हू के बैल की तरह घूमता रहूँ। (अलग० वैं० १५०)

कोवारी : सं० पु० एक प्रकार का जल-पक्षी।

कोसा : सं० पु० एक प्रकार का गाढ़ा रस या अवलेह जो चिकनी सुपारी बनाने के समय सुपारियों को उबालकर तैयार होता है। इसकी सहायता से घटिया दर्जे की सुपारियाँ रंगी और स्वादिष्ट बनाई जाती हैं।

कोसिली : सं० स्त्री० पिराक या गुझिया नामक पकवान। गुजिया।

कोहरी : सं० स्त्री० उबाले या तले हुए चने। घुंघनी।

कोहिल सं० पु० शाही नर बाज।

कोही : सं० स्त्री० शाही नामक बाज की मादा।

कौंचा : सं० पु० ईख के ऊपर का पतला और निरस भाग जिसमें गाँठें पास-पास होती हैं। अगौरा।

कौंर : सं० पु० एक प्रकार का बड़ा पेड़ जो पंजाब, नेपाल और उसकी तराइयों में होता है। इससे इमारती सामान, काठ की थालियाँ और रिकाबियाँ बनती हैं। पहाड़ी लोग इसके फलों को सुखा-पीसकर दूसरे अन्न के साथ खाते है।

कौंरी : सं० स्त्री० पान की चौथाई ढोली जिसमें ५० पान होते हैं। कंवरी।

कौंहर : सं० पु० इन्द्रायन की जाति का, एक प्रकार का फल जो पकने पर बहुत सुदर लाल रंग का हो जाता है। इसके फन के पास सर्प नहीं आता। उ० (क) कौहर सी एड़ीन की लाली देखि सुभाई। पाय महावर देन को आप भई बेपाई। (बिहारी)। (ख) कौहर कौल जपादल विद्रुम का इतनी जो बंधूक में कोत हैं। (शभु०)

कौड़ा : सं० पु० कुई नामक पौधा जिसे जलाकर सज्जी खार बनाई जाती है।

कौड़िया : सं०पु० कौड़िल्ला या किलकिला नामक पक्षी। उ० नयन कौड़िया हिय समुद गुरु सो तेही जोति। मन मरजिया न होइ परे हाथ न आवे मोति। (जायसी)

कौड़ेना : सं० पु० (अल्प कौड़ेनी) कसेरों का लोहे का एक औजार जिससे बर-तनों पर नक्काशी की जाती है।

कौर : सं० पु० एक प्रकार का छोटा फैलने वाला झाड़ जो उत्तर भारत की पहाड़ी और पथरीली भूमि में होता है।

कौलिया : सं० पु० एक प्रकार का छोटा बबूल जो बरार में होता है।

कौवरी : सं० पु० एक हाथ ऊँचा पौधा जिसकी पत्तियाँ नीम जैसी दरी हुई किनारी की होती है। (व्र० ग०)

कौवारी : सं० स्त्री० १. एक प्रकार की चिड़िया, २. कचूर के आकार का वृक्ष जिसमें बहुत से लाल फूलों का एक गुच्छा लगता है। जड़ औषधि के काम आती है। ३. कौवा, ठोंठी।

कौसिया : सं० पु० एक संकर राग। (संगीत)

कौहर : सं० पु० इन्द्रायन।

कौहा : सं० पु० वह लकड़ी जो बंडेरी के सहारे के लिए लगाई जाती है। कौवा बहुँवाँ।

खँखरा : सं० पु० ताँबे का बड़ा देग जिसमें चावल आदि पकाया जाता है।

खँखा : वि० क्रूर, लड़ैती, भयंकर। उ० वह न जाने कैसी खखा लड़ाकू होगी।

खंगर : सं० पु० अधिक पकने के कारण

परस्पर कई ईंटों का चक्र। वि० वहुत सूखा, शुष्क।

खँगार : सं० पु० क्षत्रियों की एक वीर जाति जो गुजरात में रहती है।

खँगोरिया : सं० स्त्री० हँसुली नामक गहना।

खँजड़ी : सं० स्त्री० एक वाद्य जिसे प्रायः फक़ीर वजाते हैं। उ० रामदास की ख़ंजड़ी की गमक निःशब्द वातावरण में तरंग पैदा करती है। (मैला० २४)

खँडविला : सं०पु० एक प्रकार का धान। उ० कोरहन वड़हन जड़हन मिला औ संसार तिलक खंडविला—(जायसी)

खक्खा : १. पंजावी सिपाही। पंजाव के खत्री प्रायः अपने आपको खक्खा कहते हैं। २. अनुभवी पुरुष। ३. वड़ा और ऊँचा हाथी।

खखड़ी : सं० पु० फसल का एक रोग जिससे वालों में दाने नहीं पड़ते।

खखरिया : सं० स्त्री० मैदे और वेसन की बनी हुई पापड़ की तरह की एक प्रकार की हलकी-पतली और अलोनी पूरी।

खखार : सं० पु० मुँह से निकला हुआ कफ। उ० थूक खखार देख के कुटुम्व वाले घृणा करते हैं। (प्र० ग्र० ३३२)

खखोरना : क्रि० स० १. अच्छी तरह से ढूंढ़ना। सव जगह खोज डालना, छान वीन करना। २. साफ करना, जैसे वर्तनों को पानी में खखोर कर रख दो।

खगा : क्रि० स० समाना, अटना। उ० घूंघट में न खगे। (भा० २।६८)

खग्गि : सं० स्त्री० सारस की जोड़ी में उसकी मादा। उ० सारस जोरि किमि हरि मारि गएउ किन खग्गि।
(जा० ३४१।८)

खचाखच : सं० पु० ठसाठस, भीड़, खूव, पूरा। उ० उस समय पार्क खचाखच भर गया था। (टे० मे० रा० २६०)

खच्चर : सं० पु० १. गधे और घोड़ी के संयोग से उत्पन्न एक पशु जो घोड़े से वहुत मिलता जुलता है। शक्ति घोड़े से भी कुछ अधिक होती है। २. खचरा।

खजलिया : सं० पु० अंगूर के पौधों का एक रोग जिसमें पत्तों और डंठलों पर काली-काली धूल-सी जम जाती है और पौधा धीरे-धीरे सूख जाता है।

खजुला : सं० स्त्री० मैदा की वनी पोली और गोल वस्तु जो खांड़ में पगी होती है। (ब्र० श०)

खटकना : क्रि० स० १. लगना, किसी वात की आशंका होना। उ० चुनवारी मेरे जिय खटकी। (भा० २।१८०)

खटका : सं० पु० आवाज़, भयप्रद घटना, संदेह, आशंका। उ० कुर्सियों को फिर से जमाने का खटका। (झूठा० २।१४८)

खटखटाना : क्रि० स० आवाज करना, चोट करना, वस्तु से टकराना। उ० दरवाजा के खटखटाने के साथ अपने गले का भी प्रयोग किया। (टे० मे० रा० १६३)

खटना : क्रि० स० १. धनोपार्जन करना। २. कठिन समय में धैर्य रखना। ३. अधिक श्रम करना।

खटपापड़ी : सं० स्त्री० कसई नामक पेड़ जिसे अमली भी कहते हैं।

खटमल : सं० पु० कीट विशेष जो चारपाई आदि लकड़ी की वस्तुओं में हो जाता है। उ० मनुष्य खटमल आदि जीवों की भाँति वृक्षों पर दवके—
(प्रे० स० २।५४०)

खटमिलावाँ : सं० पु० पियाल नामक वृक्ष जिसमें चिरोंजी होती है।

खटमेमल : सं० पु० एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसकी पत्तियाँ चारे के काम आती है। इसके मटर के समान फल पकने पर काले हो जाते हैं।

खटरिया : सं० स्त्री० एक प्रकार का कीड़ा।

खटलर : सं० पु० सान धरने वालों का एक औजार जो लकड़ी का होता है।

खटला : सं० पु० स्त्रियों के कानों का छेद जिसमें वे वालियाँ पहनती हैं।

खटाल : सं० स्त्री० समुद्र की ऊँची लहर जो पूर्णिमा को उठती है।

खटाव : सं० पु० वह खूँटा जिसे गाड़कर नाव बाँधते हैं।

खटिक : सं० पु० साग आदि बेचने वाली एक जाति।

खटोला : सं० पु० १. छोटी चारपाई। २. एक प्राचीन प्रदेश का नाम जो बुदेलखंड के अन्तर्गत था यहाँ भीलों की वस्ती थी। वर्तमान में सागर दमोह जिले इसी के अन्तर्गत है। उ० पूछो जहाँ कुड और गोला तजि वाए अँधियार खटोला। (जायसी)

खट्ट : सं० पु० जैसलमेर में होने वाला एक प्रकार का संगमरमर जिसका रंग पीला होता है।

खड़ : सं० स्त्री० खर, घास-पात, पत्तियाँ। उ० आप लोग वाँस खड़ सुतली और दूसरा दरकारी चीज का इन्तज़ाम कर देना। (मैला० १२)

खड़ा दसरंग : सं० पु० कुश्ती का एक पेंच। हनुमंत वंध।

खड़ा पठान : सं० पु० जहाज के पिछले भाग का मस्तूल। (लश०)

खड़ी डंकी : सं० स्त्री० मलखम की एक क़सरत।

खढ़खढ़ी : सं०स्त्री० एक घास, वह घास जिसका उपयोग नही होता। उ० घास-फूस खढ़खढ़ी सरपत-सावे किसी एक चीज़ का अभाव नही था। (वल० २१)

खढ़ोर : सं० पु० घर छवाने की वड़ी-वड़ी घासों का मैदान। उ० खढोर इतना वड़ा था कि सभी पट्टीदारों को अपने मकान छवाने लायक—(वल० ६)

खतंग : सं० पु० एक प्रकार का कबूतर जिसका रंग कुछ मैलापन लिए होता है।

खदी : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास जो तालों में उत्पन्न होती है।

खद्दर : सं० पु० १. मोटा कपड़ा, खादी। २. वह वैल जो खाता ज्यादा हो परन्तु वल कम हो।

खन : सं० पु० १. एक प्रकार का वृक्ष जो खोर की तरह होता है। २. एक प्रकार का कपड़ा जिससे महाराष्ट्र की स्त्रियाँ चोलियाँ वनाती हैं।

खनकना : क्रि० अ० वर्तनों या धातु के वने वर्तनों से निकलने वाली आवाज़, ध्वनि। ट्रे में चाय के वर्तन खनकने की आवाज़ आई। (झूठा० १।१६२)

खपड़ा : सं० पु० १. गेहूँ में होने वाला एक कीड़ा २. मिट्टी के वर्तन का टुकड़ा।

खपड़ोइया : सं० पु० सफेद कीड़ा जो धानों में लगता है।

खपली : सं० पु० एक प्रकार का गेहूँ जिसके दानों को भूसी से अलग करने में वड़ी कठिनाई होती है।

खपाट : स० पु० धौंकनी पर लगे हुए लकड़ी के छोटे डडे जिनके सहारे वह उठाई और दवाई जाती है।

खप्पर : सं० पु० १. रूक्ष, निष्ठुर।

२. देवीपात्र, मिट्टी का पात्र, साधुओं का पात्र विशेप।
खपफा : सं० पु० कुश्ती का एक पेच।
खब्बर : सं० स्त्री० दूब नामक घास।
खमाल : सं० पु० १. खजूर के हरे फल जो पच्छिम में भेड़, वकरी और गायों को खिलाये जाते हैं। २. जहाज में असवाव की लदाई। लदनी।
खमो : सं० पु० एक छोटा सदावहार पेड़। इसका छिलका चमड़ा सिझाने और रंग सूती कपड़े रँगने के काम आता है। राई।
खरंजा : सं० पु० १. वह ईंट जो वहुत अधिक पक गई हो। झाँवा। २. आँगन में ईंटों का फर्श। (व्र० श०)
खरकत्ता : सं० पु० जटोरे की जाति का एक पक्षी।
खरकना : वि० स० वजना, खड़कना। उ० खरकि उठी तलवार। (भा० २।८००)
खरदा : सं० पु० अंगूर का एक रोग जिसमें उसकी डालियों पर लाल रंग की वुकनी वैठ जाती है और पौधे की वाढ़ नष्ट हो जाती है।
खरदुक : सं० पु० प्राचीन काल का एक पहनावा। उ० चंदनौता और खरदुक भारी। वांसपूर झिलमिल के सारी। (जायसी)
खरपत : सं० पु० एक प्रकार का वृक्ष जो रुहेलखंड, अवध तथा नीलगिरि में अधिकता से होता है। फल मकोय के आकार का होता है जिसे कच्चा ही खाते हैं। धोगर।
खरवट : सं० पु० काठ के दो टुकड़ों से वना हुआ एक तिकोना औजार जिसमें रेती जाने वाली वस्तु को फँसाकर रेतते हैं।
खरसा : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली जो असम तथा वर्मा की नदियों में होती है। सं० पु० १. ग्रीष्म ऋतु, गरमी के दिन, २. अकाल।
खरहर : सं० पु० वलूत की जाति का एक पेड़ जो हिमालय की तराई में होता है। इसकी पत्तियाँ वेर की पत्तियों से वड़ी होती हैं। छाल से चमड़ा सिझाया जाता है।
खरहरा : सं० पु० खरैरा, अरहर की लकड़ी या ऐसी ही किसी वस्तु से निर्मित झाड़ू, व्रुश। उ० घोड़े के पुट्ठों पर एक चौकीदार खरहरा कर रहा था। (राग दर० २०)
खरहरी : सं० स्त्री० एक मेवा (कदाचित् खजूर) उ० नरियर फरे फरी खरहरी। फरें जानु इन्द्रासन पुरी॥ (जायसी)
खराई : सं० स्त्री० सवेरे अधिक देर तक जलपान या भोजनादि न मिलने के कारण जुकाम होने की स्थिति। गला वैठना, या प्रकृति में ऐसी ही गड़वड़ी होना। मुहा० खराई मारना (जलपान करना)।
खरिक : सं० पु० १. वह ईख जो खरीफ की फसल के वाद वोई जाए २. छुआरा।
खरिया : सं० स्त्री० १. वह लकड़ी जिसकी सहायता से नाँद में नील कसकर भरते या दवाते हैं। २. सफेद मिट्टी जो लिखने आदि के काम आती है।
खरी : सं० स्त्री० १. एक प्रकार की ईख, २. पशुओं को खल के साथ दी जाने वाली वस्तु। वि० स्त्री० १. अच्छी, सत्य। उ० जो खरि वात कहें रिस लागे खरिपै कहे वसीठ। (जा० २६८।६)
खरीम : सं० स्त्री० मुर्गी की जाति की

चिड़िया जो प्रायः पानी के किनारे रहती है। इसके पर तीतर की तरह चितले होते हैं।

खरील : सं० पु० एक प्रकार का जेवर जिसे स्त्रियाँ सिर पर पहनती हैं।

खरे : सं० पु० एक आने प्रति रुपये की दलाली। (दलाल)

खरेठ : सं० पु० एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

खरैरा : सं० पु० अरहर की लकड़ियों से वनी झाड़ू। (ग्र० श०)

खरोंच : सं० स्त्री० किसी लकडी आदि से लगी हुई हल्की चोट या आघात। उ० मधुर खरोंच का अनुभव करके वावा ने कहा—(वावा० ७२)

खरोड़ा : सं०पु० ब्राह्मण खानदान, जो दरभंगा का था। उ० खरोड़े खानदान के भारी-भारी राजा-राजकुमार। (वल० १०७)

खवाई : सं० स्त्री० नाव में वह गड्ढा जिसमें मस्तूल खड़ा किया जाता है।

खसना : क्रि० अ० गिरना, उ० खसी माल मूरत मुसकानी। (मा० १।२३६।३)

खसरा : सं० पु० एक रोग जिसमें देह पर छोटी-छोटी फुंसी हो जाती हैं। इसे माता निकलना भी कहते हैं।

खसिया : सं० स्त्री० १. एक पहाड़ी का नाम जो असम में है। २. इस पहाड़ी के आसपास का प्रदेश। उ० चला परवती लेइ कुमाउँ। खसिया मगर जहाँ लगि नाऊँ। (जायसी)

खसोट : सं० स्त्री० लूट, छीनछान, झपट। उ० क्या चीज खसोट क्या शै। (भा० १।७६०)

खसोटी : सं० स्त्री० गाली (स्त्रियों की), छेड़ने वाली औरत, दुष्टा। उ० हाड़ चावोगी खसोटी। (वूंद० २४)

खाँग : क्रि० अ० चूकना। उ० मुहमद किमि न पुकारे रोस दाउ जेहि खाँग। (जा० ३२०।६)

खाँचा : सं० पु० टोकरी, डलिया, पला। उ० मैं जिस खाँचे में था, उसे रख दिया गया। (वावा० २६)

खाँव खाँव : सं०पु० परेशान, या दकिया-नूसी करने की क्रिया। उ० पति से खाँव-खाँव करती है। (प्र० ग्र० २५२)

खाँवाँ : सं० पु० एक प्रकार का छोटा पौधा जिसके फूल सफेद होते है।

खाकी : सं० पु० संप्रदाय विशेष। उ० न जाने कहाँ के सन्त महन्त साधु विरक्त खाकी नागे (भ० नि० ९)

खाखा : सं० पु० खलासी, मल्लाह, जहाजी।

खाटिन : सं० पु० एक प्रकार का धान जो अगहन में होता है।

खादी : सं० स्त्री० गजी या उसी प्रकार का मोटा कपडा।

खारिक : सं०पु० १. फलविशेष, छुहारा। २. वह ईख जो खरीफ की फसल में वोई जाए। उ० खारिक दारन खोपरा खीरा। (सूर)

खाल : सं० स्त्री० पशुओं की ऊपरी त्वचा।

खाली : वि० रिक्त, वेकार, सिर्फ, व्यर्थ, रीता। (हि० श० सा०)

खाव : सं० स्त्री० जहाज की वह कोठरी जिसमें माल रखा जाता है। (लश०)

खिगरी : सं० स्त्री० मैदे की वनी हुई वहुत पतली और छोटी खस्ता पूरी या मठरी। खीकरी।

खिखिर : सं० स्त्री० लोमडी। उ० गले

की आवाज एकदम खिखिर की तरह है। (मैला० १६७)

खिड़की : सं० स्त्री० वातायन। कमरे में हवा के लिए बना हुआ स्थान। खड-क्किया। (दे० ना०) उ० खिड़कियों में स्त्री लोग किसके हेतु एकाग्रचित हो रही हैं। (भा० २।३२६)

खिनौरी : सं० स्त्री० पुराना हल। (ब्र० श०)

खिन्नी : सं० पु० एक वृक्ष जिसका निवौरी जैसा पीला फल होता है, जिसमें मीठा दूध भरा होता है। (ब्र० श०)

खिर : सं० स्त्री० जुलाहों की ढरकी जिसमें बाने का सूत रहता है और जो बुनते समय एक ओर से दूसरी ओर चलाई जाती है। नार।

खिलखिलाहट : सं० पु० हँसी, हँसने की आवाज, प्रसन्न होने का भाव। उ० मनमोहन खिलखिलाकर हँस पड़ा। (टे० मे० रा० २६८)

खिल्ली : सं० स्त्री० मजाक, हँसी, दिल्लगी। उ० ईश्वर के प्रति खिल्ली उड़ाने का भाव रहता है। (बूंद० १६५)

खिवाही : सं० स्त्री० एक प्रकार की ईख।

खिसौंहा : वि० खिसिआया हुआ, लज्जित और संकुचित। उ० गहकि गांसु औरे गहे रहे अध कहे बैन। देखि खिसौंहे पिय नयन किए रिसौंहे नैन ।। (विहारी)

खीखर : सं० पु० १. एक प्रकार का वन-बिलाव, २. एक वृक्ष, कीकर। (सहारनपुर)

खीप : सं० पु० १. एक प्रकार का घना सीधा पेड़ जो बलुई जमीन में होता है। इसकी पत्तियाँ चारे के काम आती हैं। उ० खीप पिड़ारु कोमल भिंडी (जायसी)। २. लज्जालू। ३. गंध प्रसारिणी, गंध पसारा।

खील : सं० स्त्री० १. वह भूमि जो बहुत दिनों तक परती पड़े रहने के उपरांत पहले पहल जोती गई हो। नौतोड़। २. धान का लावा।

खीस : सं० स्त्री० गाय का वह दूध जो ब्याने के पीछे सात दिन तक निकलता है। पेउस।

खीस : सं० पु० दांत। मुहा० खीस निपोरना।

खीसा : सं० पु० १. जेब, थैली। २. खेत में होने वाला पदार्थ। उ० आम, लताम, जामुन, कटहर, खीसा, कुसियार (गन्ना), ककड़ी, तरबूज और खरबूजा— (वल० १३)

खुंड : सं० पु० १. एक प्रकार की मोटी घास जो काली मिट्टी की भूमि में अधिकता से होती है। गुंड, गूनर। २. एक प्रकार का पहाड़ी टट्टू। गूंठ, गुंठा।

खुखंड : सं० पु० एक प्रकार की राई।

खुखड़ी : सं० स्त्री० १. तकुए पर चढ़ा कर ऊपर लपेटा हुआ सूत या ऊन जो बुनने के काम आता है। कुकड़ी। २. एक प्रकार की बड़ी छुरी जो प्रायः नेपाल में बनती है।

खुचड़ : सं० स्त्री० १. नुक्स, कमी, खोट, कमजोरी। उ० वह मेरी हर बात पर खुचड़ निकालने लगा। (राग दर०२४६)

खुटका : सं० पु० संदेह, भय। उ० पढ़े लिखे लोग खुटका में चुर जाते हैं। (प्र० ग्र० ६६)

खुटमेरा : सं० पु० एक प्रकार का मोटा निकृष्ट धान।

खुटिला : सं० पु० करनफूल नामक कर्णाभूषण। उ० खुटिला सुभग जड़ाइ के मुकुतामनि छवि देत। प्रगट भयो घन मध्य ते शशि मनु नखत समेत। (सूर)

खुट्टी : सं० स्त्री० १. घाव से निकला हुआ वह मवाद जो घाव के ऊपर ही जम जाता है। खुरंड। २. पेड़ की छाल, जैसे नीम की खुट्टी।

खुड्डी : सं०पु० पाखाना, शौच करने का स्थान।

खुड़ला : सं० पु० मुर्गियों का दर्बा। चिड़ियाखाना।

खुड़हा : सं० पु० गड्ढे वाला स्थान। उ० खुड़हे कैं रीति के होते हैं। (प्र० ग्र० २६३)

खुड़ुआ : सं०पु० वर्षा या जाड़े आदि से बचने के लिए एक विशेष प्रकार से सिर पर डाला हुआ कंबल या और कोई कपड़ा। घोघी।

खुदबुदाना : क्रि० स० गर्म पानी में उबलने की क्रिया। उ० कोई बहुत गर्म चीज मन के भीतर खुदबुदा रही थी। (अलग० वै० ६७६)

खुद्दी : सं० स्त्री० चावल की कन्नी, टूटा हुआ अन्न। उ० पाव आधपाव खुद्दी के लिये माँ किस तरह रिड़ियाती फिरती थी। (बल० ७२)

खुरी : सं० स्त्री० इतना तेज, प्रवाहित पानी जिसके विरुद्ध नाव न चल सके।

खुरू : सं० स्त्री० नारियल की गरी।

खुर्राट : वि० १. बूढ़ा, अनुभवी, २. चालाक, काइयाँ।

खुर्राटा : क्रि० वि० नींद में होने वाली आवाज़, अच्छा सोना, सोते समय नथुनों तथा मुँह से आवाज आना। उ० दबी और दबाती हुई खुर्राटे लेते चली जा रही थी। (झूठा० २।११६)

खुलवा : सं० पु० गली हुई धातु को साँचे में भरने या ढालने वाला।

खुसुर-फुसुर : सं० पु० वह आवाज जो धीरे-धीरे फुसफुसाहट के साथ निकलती है। गुपचुप, या चुप-चाप। उ० मालूम हुआ तो खुसुर फुसुर होने लगी। (बाबा० ६१)

खूंट : सं० स्त्री० कान का बड़ा गहना जो गोल दीये के आकार का होता है। विरिया ढार। उ० तेहि पर खूंट दीप हुई बारे। दुई ध्रुव दुहूँ खूंट बेसारे। (जायसी)

खूंट : सं०पु० १. आठ सेर की तौल जो घी तेल आदि के लिए प्रचलित थी। २. कान की मैल। ३. कोना, दिशा।

खूंटा : सं० पु० जमीन में गाड़ा जाने वाला लकड़ी का डंडा जिससे पशु आदि बाँधे जाते हैं। उ० हाथी न खूंटे के समान है न खंभे के। (प्र० ग्र० ६२१)

खूंसट : सं० पु० बुड्ढा, खुर्राट, दुष्ट, खराब, बेशर्म। उ० इस खूंसट को तो शरम-हया होनी चाहिये। (झूठा० १।६६)

खूखी : सं० स्त्री० एक कीड़ा जो चैती फसल को जाड़े में नाश करता है। कूकी, कुकुही, गेरुई।

खूच : सं०स्त्री० जलडमरू मध्य (लग०)

खेई : सं० स्त्री० झड़बेरी की सूखी झाड़ी। झाड़-झंखाड़।

खेऊ : सं० पु० वर्मा, स्याम और मणिपुर के जंगलों में होने वाला एक बड़ा पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत अच्छी होती है।

खेकसा, खेखसा : सं०पु० परवल के आकार का फल जिसकी तरकारी बनती है।

खेजड़ी : सं० स्त्री० शामी का वृक्ष।

खेड़ा : सं० पु० कई प्रकार का मिश्रित सस्ता अनाज जो प्राय: पालतू चिड़ियों विशेषत: कबूतरों को खिलाया जाता है।
खेड़ी : सं० स्त्री० १. एक प्रकार का देसी लोहा जिससे बने हथियार तेज होते हैं। यह नेपाल में बहुतायत से बनता है। झखुटिया लोहा । २. वह मांस खंड जो जरायुज जीवों के बच्चों की नाल के दूसरे छोर में लगा होता है।
खेप : सं० स्त्री० लदान, पारी, खेपा। उ० अब्बास के बाद कुवरा ने भी पेटियों की एक खेप उतार दी थी।
(आधा० १९६)
खेमटा : सं० पु० १. बारह मात्राओं की एक ताल जिसमें तीन आघात और एक खाली होता है। २. इस ताल पर होने वाला गायन और नृत्य।
खेलुली : सं० स्त्री० बात। उ० पर्वत उठा देना एक छोटी-सी खेखुली है।
(प्र० ग्र० ४९५)
खेव : सं० पु० एक प्रकार की घास जो वर्षा ऋतु में पहला पानी पड़ते ही अधिकता से होती है। ऊसर की घास।
खेवनाव : सं०पु० एक प्रकार का वड़ा वृक्ष जो नदियों के किनारे अधिकता से पाया जाता है इसके रेशे से रस्सी बटी जाती है।
खेवरियाना : क्रि० स० एकत्र करना, बटोरना।
खेसाड़ी : सं० स्त्री० एक कुद्रव अन्न, शष्य विशेष, वह अन्न जिसका प्रयोग अन्नाभाव में किया जाता है। उ० जला-वन के अभाव में खेसाड़ी और मसूर के दाने भिगो-भिगोकर—। (बाबा० ७६)
खेह : सं० स्त्री० धूल, राख (क) उ० तब खेह उड़ाउन झोली (जा० १८६।४)
(ख) तिनके मुख में खेह (भा० २।६८)
खैरवाल : सं० पु० कोलियार नामक वृक्ष।
खैरा : सं० पु० १. धान की फसल का एक रोग जिसमें बाल पीली पड़ जाती है। २. तबला बजाने में एक ताल की धुन। ३. एक प्रकार की छोटी मछली।
खोंगा : सं० पु० अटकाव, रुकावट।
खोंच : सं० स्त्री० १. मुट्ठी। २. उतना अन्न या वस्तु जो मुट्ठी में समा जावे। ३.पक्षी पकड़ने की लग्गी।(जा० ६९।८)
खोंचाड़-खोंचाड़ : सं० पु० वह आवाज जो पानी में किसी वस्तु के गिरने से होती है। अनुकरणात्मक ध्वनिविशेष।
(बाबा० ७५)
खोंची : सं० स्त्री० वह थोड़ा अन्न, फल, तरकारी आदि जो दूकानदार मंडी या बाजार में छोटी-छोटी सेवाएँ करने वाले या भिखमंगों को देते हैं। उ० खायो खोंची माँगि मैं तेरो नाम लियो रे।
(वि० ३३)
खोंता : सं० पु० १. घास-फूस, बाल, आदि का बना चिड़ियों का घोंसला। २. कपड़े में किसी वस्तु से लगकर बना हुआ छिद्र।
खोंप : सं० स्त्री० १. पेड़ की शाखा। २. वेणी, केशविन्यास, बालों का समूह। उ० खोंपा छोरि कैसी मोकराई
(जायसी)
खोखर : सं० पु० सम्पूर्ण जाति का एक राग जो मालकोश का पुत्र माना जाता है। इसका समय दिन का प्रथम पहर है।
खोखलापन : सं०पु० पोल, रिक्त, खाली, ढोंग। मुहा० ढोल में पोल। उ० वह मनुष्य की पराजय का खोखलापन है।
(टे० मे० रा० १४३)

खोचकिल : सं० पु० चिड़ियों का खोता। घोंसला, नीड़।

खोज : सं० पु० १. तलाश, पदचिह्न, प्रा० खोज्ज। २. पता, ठिकाना। उ० सचिव चलायउ तुरत रथ इतउत खोज दुराइ। (भा० २।८५)

खोट : सं० स्त्री० दोष, दुष्ट। उ० परा-दिस्टि वह राकस खोटा। (जा० ३६६।४)

खोटना : क्रि० स० नोड़ना, खोंटना। वह क्रिया जो बथुआ या चने का साग तोड़ते समय की जाती है। उ० छप्पर की ओलती से लटकते तिनके को खोट लिया। (वल० १७)

खोंडर : सं० पु० गड्ढा, कोडर, खोह। उ० बरगद का खोडर देखता आया था। (बाबा० ७८)

खोतरी : वि० कनकटी, कुतरी। उ० इत्तिफाक से कानी खोतरी पत्तियाँ या फूल फल लग सकते है। (भ० नि० ६६)

खोदई : सं० पु० एक छोटा पेड़ जो हिमालय की तराई में होता है यह रंगने और दवा के काम में आता है।

खोपड़ी : सं० स्त्री० १. सिर, माथा। उ० कच्ची खोपड़ी और विलायती दिमाग वाले हैं। २. बुद्धि, जैसे तुम में इतनी भी खोपड़ी नहीं है। (प्र० ग्र० ६०६)

खोबा : सं० स्त्री० गच या पलस्तर पीटने की थापी।

खोभरना : क्रि० अ० बीच में आना, आड़ा पड़ना।

खोर : सं० पु० बबूल की जाति का ऊँचा सुन्दर पेड़ जो सिन्ध में होता है। इस से खेती के औजार बनते है। खन, साही काँटा, बनरीठा।

खोरा : सं० पु० कटोरा खोर। उ० रतन जराउ खोरा खोरी। (जा० २८३।३)

खोरि : सं० स्त्री० १. गली रास्ता। उ० खेलत अवध खोरि गोली भौंरा चकडोरि (गी० १।४१) २. छोटी कोठरी, खोली (जा० ५५७), खोल्ल।

खोलिया : सं० स्त्री० एक प्रकार की पनालीदार रुखानी जिससे बढ़ई लकड़ी पर फूल पत्ती व वेलवूटे खोदते हैं।

खोवरा : सं० पु० जुड़े हुए दो या चार काँटे।

खोह : सं० स्त्री० गुफा, गुहर। उ० विच-विच खोह नदी और नारा। (जा० १३६।५)

खौखियाना : क्रि० अ० चिल्लाना, दबाना, घूरना, खोंसना। उ० हमारी बिल्ली हमी को खौखियाए। (झूठा० २।४६४)

खौर : सं० पु० तिलक, टीका। उ० स्याम शरीर खौर चंदन की। (भा० २।३११)

खौरि : सं० स्त्री० राख (सुनार)। मुहा० खौरि करना—राख में मिला देना।

खौरिया : सं० स्त्री० १. छोटा कटोरा, बिलिया। २. छोटे चमकीले बुंदे जिन्हें स्त्रियाँ या लीला वाले मुँह पर चिपकाते है। ३. कुएँ की पैढ़ी का वह बिचला भाग जो तरसा खींचते-खींचते बैलों के पहुँचने पर कुएँ के मुँह पर आ जाता है।

खौरू : सं० पु० बैल या साँड़ की डकार।

ख्वेंतर : सं० पु० गोफना, ढेलवाँस।

गँगरी : सं० स्त्री० एक प्रकार की कपास जिसकी पत्तियाँ चौड़ी और बड़ी, रेशे पतले, फूल के नीचे की कमरखी पत्तियाँ बड़ी और बैंगनी रंग की होती है।

गररा : सं०पु० एक प्रकार का घोड़ा। गर्रा। उ० हरे कुरंग महुअ बहु भाँति गरर को काह बलाह सुभाँति (जायसी)

गररी : सं० पु० एक चिड़िया किलहंटी, सिरोही, गलगलिया। उ० फटकत श्रवन श्वान द्वारे पर गररी करत लराई।
(सूर०)

गरहन : सं०पु० एक प्रकार की मछली।

गराब : सं०पु० १. तीन मस्तूलों वाला एक प्रकार का जहाज जिसका व्यवहार १४वीं और १५वीं शती में बंगाल और उसके आसपास की खाड़ियों में होता था। २. साधारण नाव। ३. गाजरों में लगने वाला एक कीड़ा।

गरावा : सं०पु० हलकी जमीन। कम उपजाऊ भूमि।

गरिया : सं०पु० एक पेड़ जो साधारण ऊँचा होता है। शिशिर में इसकी पत्तियाँ झड़ जाती हैं। लकड़ी दृढ़ कठिन सुन्दर चमकीली और साफ होती है जिससे गाड़ी, मेज, कुरसी, अलमारी आदि बनाई जाती हैं। बहुरूपी।

गर्जन : सं० पु० शाह की जाति का एक पेड़। इसके पेड़ पीले रंग के सीधे और सौ सवा सौ हाथ ऊँचे होते हैं। इनके कई भेद होते हैं। इस पेड़ से एक प्रकार का निर्यास भी निकलता है जो अलसी के तेल की तरह रंगाई के काम आता है।

गलगड : सं०पु० हरगीला नामक चिड़िया।

गलगल : सं० पु० १. मैना की जाति की चिड़िया। सिरगोरी गलगलिया। २. बड़ा नीबू जो चकोतरे के बराबर होता है। यह बहुत खट्टा होता है। आचार डालने और औषध के काम भी आता है। ३. चर्बी की बत्ती का एक टुकड़ा जो जहाज में समुद्र की गहराई नापने वाले यन्त्र में सीसे की नली से लगा रहता है, नली समुद्र में गिराकर उसकी चीजें निकाली जाती हैं। ४. अलसी और चूने को मिलाकर बना हुआ मसाला जो लकड़ी आदि जोड़ने के काम आता है।

गलगलिया सं०स्त्री० किलहंटी, सिरोही।

गलोना : सं०पु० एक प्रकार का सुरमा जो कंधार और काबुल से आता है।

गवला : सं०पु० धान विशेष जो रूपरंग में बासमती और सेले का मिश्रण होता है। (व्र०श०)

गवेजा : सं०पु० वार्त्तालाप। उ० केवट हँसे सो सुनत गवेजा समुद। न जानु कुंवाकर मेजा। (जायसी)

गहनी : सं०पु० १. पलाश की जड़ आदि कूटकर उस से नाव के छेदों को बंद करने की क्रिया। २. पशुओं का एक रोग जिससे उनके दाँत हिलने लगते हैं। ३. गहन नामक औजार जिससे जोते खेतों में से घास निकाली जाती है।

गहरू : सं० स्त्री०देर, विलम्ब। उ०विनवहिं सखि गहरु नहिं कीजै।
(जा० ३००।२)

गहेजुआ : सं०पु० छछूंदर। उ० मछरी मुख जस केंचुआ मुसवन मुँह गिरदान। सर्पन माँह गहेजुआ जाति सबन की जान। (कबीर)

गांगन : सं०पु० एक फोड़ा जो प्रायः बच्चों को निकल आता है।

गांडर : सं०पु० झाड़दार घास जो प्रायः जल में होती है। इसे हाथी और सूअर बड़े प्रेम से खाते हैं। गाँड़र ताँती।
(तुलसी)

गाँड़ : सं० पु० पायु, गुदा, चूतड़। उ० अरे ई रेआह साली गाँड़ न मारे रहती त तोरा ईहो अरमान पूरा कर देते।
(आधा० ३२२)

गागर : सं०पु० (स्त्री० गागरी) मटका, घड़ा। उ० नारि सिर धारि प्रगट गागरी भराई। (भा० २।२३६)

गाज : सं०पु० १. काँच की चूड़ी। २. झाग, जो पानी या किसी तरल पदार्थ से उठता है।

गाटर : सं०पु० छोटा खेत, गाटा।

गाड़ी : सं०स्त्री० वाहन, बैलों का छकड़ा शकट, वह वाहन जिस पर मनुष्य सवारी करते हैं।

गाठिया : सं०पु० एक नमकीन पकवान, यह बेसन का बना होता है तथा इसका उपयोग गुजरात तथा महाराष्ट्र में बहुत होता है। उ० नाना किदर गया। गाठिया वी लेयेंगा काय ? (सा० ल० म० ८)

गादुर : सं०पु० चमगादड़। उ० ते नर गादुर जानि जिय करिय न हरस विषाद। (वि० २५८)

गारा : सं० पु० १. वह नीची भूमि जिसमें पानी बहुत दिन न टिक सके। २. गीली मिट्टी जिसका उपयोग मकान बनाने के लिए होता है। ३. एक संकीर्ण जाति का राग जो दोपहर में गाया जाता है।

गारा कान्हड़ा : सं० पु० एक राग जो संध्या के उपरांत गाया जाता है।

गाल : सं० पु० जाना। तम्बाकू की एक जाति।

गालमसूरी : सं० स्त्री० एक पकवान व मिठाई। उ० अरु तैतहि गाल मसूरी। जेहि बखानहि मुख दुख दूरी। (जायसी)

गाव : सं० पु० एक पेड़। इसके फल से एक प्रकार का चिपचिपा रस निकलता है जो नाव के पैंदे में लगाया जाता है और जाल में माँझा देने के काम आता है।

गावी : सं० स्त्री० ऊपर का पाल (जहाजी) इसके कई भेद हैं। अगले को तिर्कट, बिचले को बड़ा, पिछले को कलमी कहते हैं। इसके ऊपर का पाल सावर उससे ऊपर का तावार और इससे भी ऊपर सवाई कहलाता है।

गाही : सं० पु० १. फलादि गिनने का एक मान जो पाँच-पाँच का होता है। पाँच वस्तुओं का समूह। २. उँगलियों के मध्य का स्थान।

गिड़नी : सं० स्त्री० एक प्रकार का साग जिसकी पत्तियाँ दो-दो अंगुल लम्बी और जौ भर चौड़ी होती हैं। डंठल हरा होता है और उसकी गाँठों पर सफेद फूलों के गुच्छे लगते हैं। फूल झड़ जाने पर छोटे-छोटे बीज पड़ते हैं।

गिंदर : सं० पु० एक कीड़ा जो फसल को बहुत हानि पहुँचाता है।

गिचपिची : सं० स्त्री० कीचड़, गन्दगी, मैली-कुचैली। उ० चेहरा बिना धुला हुआ और आँखें गिचपिची थीं। (राग दर० ३३)

गिजई : सं० पु० १. सलमे के काम का एक प्रकार का तार। २. बरसात में होने वाले लाल-लाल कीड़े जो प्रायः खेतों आदि में निकलते हैं। गिज़ाई।

गिट्टा : वि० नाटा, ठेंगना, गिड्डा।

गिट्टी : सं० स्त्री० पत्थर या कंकड़ी आदि जिससे बच्चे खेल खेलते हैं, कंकड़ी या ईंट का टुकड़ा, गोट। उ० लकीरें खींचकर टापू या गिट्टियों के खेल खेलते रहते थे। (झूठा० १।५८)

गिठुआ : सं० पु० जुलाहे का करघा। अड्डा।

गिड़रा : सं० पु० सफेद रंग का एक कीड़ा जो गेहूँ आदि में पड़ जाता है। मक्का-ज्वार में भी यह पाया जाता है। गिड़ार।

गिरजा : सं० पु० कीड़े-मकोड़े खाने वाला एक पक्षी जो पंजाव और राजपूताने के अतिरिक्त सारे भारत में पाया जाता है। यह प्राय: सिंघाड़े के तालावों के आस-पास रहता है और ऋतु परिवर्तन के अनुसार अपना स्थान भी वदला करता है। यह तेजी से उड़ता है परन्तु इसका शब्द वहुत धीमा और विचित्र होता है। इसका शिकार भी किया जाता है।

गिरासी : सं० स्त्री० एक प्राचीन जाति जो गुजरात में होती है। ये वड़े फसादी और डाकू होते हैं।

गिलकिया : सं० स्त्री० नेनुआ या घिया-तोरी नामक तरकारी।

गिलगिली : सं० पु० १. घोड़े की एक जाति। २. मुलायम मृदु। ३. उनका पैर गिलगिली सी चीज से लगा। (वूंद २०)

गिल जई : सं० स्त्री० अफगानिस्तान में रहने वाली एक शूर जाति।

गिलमिल : सं० पु० एक प्रकार का कपड़ा जो पुराने जमाने में वनता था। उ० वादला दरियाई नौरंग साई जरकस काई झिलमिल है। ताफता कलंदर वाफता वंदर मुजर सुन्दर गिलमिल है। (सूदन)

गिलहरा : सं० पु० १. एक प्रकार का कपड़ा। यह कपड़ा सूत का वनता है और इसमें मोटी-मोटी धारियाँ होती हैं। २. वाँस की फट्टियों का वना हुआ एक पात्र जिसमें पान रखते हैं। वेलहरा।

गिलहरी : सं० स्त्री० पेड़ पर रहने वाला एक जीव जिसकी पूँछ के ब्रुश वनते हैं। इसकी पीठ पर धारियाँ होती हैं। कंटो।

गिलौरी : सं० स्त्री० एक या कई पानों का वीड़ा जो साधारण वीड़े से कुछ भिन्न और तिकोना, चौकोना तथा कई आकार का होता है।

गिल्ला : सं० पु० गोफन में रखकर फेंका जाने वाला ढेला।

गीठम : सं० पु० एक प्रकार का घटिया सादा कालीन या गलीचा।

गीदड़ : सं० पु० कुत्ते की जाति का पशु विशेष, शृगाल, क्रोष्ट्रा। उ० वुजदिल गीदड़ की तरह घर की औरत को छोड़ आये। (झूठा० २/१३५)

गीला : सं० पु० १. एक प्रकार की जंगली लता। २. भीगा हुआ, तर।

गीली : सं० स्त्री० एक प्रकार का वहुत ऊँचा पेड़ जिसके हीर की लकड़ी चिकनी भारी मजवूत और सुर्खी लिए हुए पीले रंग की होती है और मेज कुर्सियाँ वनाने के काम आती है। इसका पेड़ हिमालय की तराई में अधिक होता है। वरमी।

गुंटा : सं० पु० ताल, छोटा जलाशय।

गुंठा : वि० नाटे कद का, नाटा, वौना।

गुंड : सं० पु० मलार राग का एक भेद। उ० राम सुयश सव गावहिं सस्वर सारंग गुंड। (तुलसी)

गुंडा : सं० पु० वदमाश, दादा, दुष्ट। गुंडुम (त०) = स्वास्थ्य <गुंडा (अर्थ-परिवर्तन) उ० गुंडा कौन नहीं है रंगनाथ वावू! (राग दर० २०६)

गुगरल : सं० पु० एक प्रकार की वतख।

गुगानी : सं० स्त्री० पानी के ऊपर की हलकी हिलोर जो थोड़ी हवा के कारण उठती है। खलमली। (लश०)

गुज : सं० पु० वाँस की एक कील जो तीखी और परे के गोड़ के छेदों में लगाई जाती है। (रेशम खोलने वाले)

गुजुवा : सं० पु० (स्त्री० गूजी, गुजुई) एक प्रकार का काला कीड़ा या गवरौला जो वरसात में पैदा होता है। यह गोवर के नीचे विल वनाकर रहता है।

गुट्ट : सं० पु० १. घूँसा, मुक्का। २. गिरोह समूह, पार्टी। उ० अपने गुट्ट के हाथ मे समेट लेना चाहते थे। (झूठा० २।१५)

गुट्टा : वि० नाटा, ठेंगना।

गुड्ड : सं० स्त्री० एक चिड़िया जिसे गुडुरी कहते है। उ० धरे परेवा पंडुक हेरी। खेहा गुडरू और वगैरी। (जा० २६।४)

गुड्डा : सं० पु० कपड़े का वना पुतला जिससे वच्चे खेलते है। स्त्री० गुड्डी।

गुड़गुड़ाना : क्रि० स० गुड़ना का सकर्मक रूप।

गुड़गुड़ी : सं० स्त्री० छोटा हुक्का जिसमें तमाखू रखकर पीते है। (प्र० ग्र० १३३)

गुड़ना : क्रि० स० डंडे को इस तरह फेकना कि वह अपने सिरों के बल पलटा खाता हुआ दूर तक चला जाय। लड़के एक प्रकार के खेल में ऐसे ही डंडा फेंकते है।

गुड़मुड़ी : वि० लिपटा हुआ, या मुड़ा हुआ कोई पदार्थ।

गुड़ी : सं० स्त्री० पतंग, चंग, कनकौवा, गुड्डी।

उ० गुड़ी उड़ी लखि लाल की अँगना अँगना माहिं।

वौरी लो दौरी फिरै छुवत छवीली छाहिं॥ (विहारी)

गुतेला : सं० पु० एक प्रकार की मछली जिसे वंगू भी कहते है।

गुत्त : सं० स्त्री० चुटिया, चोटी, स्त्रियों के बालों की बनी चोटी। उ० भावें मेरी गुत्त पट ले। (झूठा० १।३१२)

गुत्ता : सं० पु० १. लगान पर खेत देने का व्यवहार। २. लगान।

गुदगुदी : सं० स्त्री० अंगों में मजाक के लिए हाथ से की जाने वाली क्रिया।

गुदमा : सं० पु० एक प्रकार का मोटा और मुलायम कंवल जो ठंडे पहाड़ी देशों में वुना जाता है।

गुदरिया : सं० पु० एक प्रकार का नीवू।

गुदी : सं० स्त्री० नदियों के किनारे का वह स्थान जहाँ नावें वनती है या मरम्मत के लिए रक्खी जाती है।

गुद्दा : सं० पु० पेड़ की मोटी डाल। (प्र०ग्र० ४५५)

गुथली : सं० पु० एक वस्त्र जिसे स्त्रियाँ विवाह पर पहनती है। (गि० दी० १४६)

गुव्वा : सं० पु० रस्सी के वीच डाला हुआ फंदा। (लश०)

गुम : सं० पु० समुद्र की खाड़ी। (लश०)

गुमीला : सं० पु० गोटा जो मल रुकने के कारण पेट में पड़ जाता है।

गुमका : सं० पु० भुसी से दाना अलग करने का काम।

गुमटा : सं० पु० एक प्रकार का कीड़ा जो कपास के फूल को नष्ट कर देता है जिससे फसल मारी जाती है।

गुमटी : सं० पु० नाव या जहाज का पानी वाहर फेकने वाला मल्लाह या खलासी।

गुम्मा : सं० पु० वड़ी मोटी ईंट जो अँग्रेजी ढंग की इमारतों में लगती है।

गुरखाई : सं० स्त्री० वह रेहन जिसमें रेहन रखने वाला रेहन रक्खी हुई जमीन की ३।४ तीन चौथाई मालगुजारी देता है।

गुरजा : सं० पु० एक प्रकार का पक्षी। लौवा।

गुरजिय आलू : सं० पु० रतालू जमीकंद आदि की जाति का एक कंद जो वंगाल और मध्य पश्चिम तथा दक्षिण भारत में होता है। इसका रंग ऊपर से लाल होता

है और इसकी बहुत बड़ी लता होती है।

गुरसल : सं० पु० गलगलिया, सिरोही, किलहंटी।

गुरसम : सं० पु० सोनारों की एक प्रकार की छेनी।

गुरहा : सं० पु० १. वह तख्ता जो छोटी नावों में अन्दर की ओर दोनों सिरों पर जड़ा रहता है। इन्हीं तख्तों में से एक पर खेने वाला मल्लाह बैठता है। २. एक प्रकार की छोटी मछली जो प्रायः एक बालिश्त लंबी होती है। यह उत्तर प्रदेश, बंगाल और आसाम की नदियों में पाई जाती है।

गुराव : सं० पु० १. तोप लादने की गाड़ी। उ० गुरगुराव रहंकते भूले तंह लागे विपुल बयाले। (रघुराज)
२. वह बड़ी नाव जिसमें केवल एक मस्तूल हो।

गुरिदल : सं० पु० १. किलकिला की जाति का एक पक्षी जो जलाशयों के निकट रहता है और मछली खाता है। बादामी। २. कचनार का पेड़।

गुरिया : सं० स्त्री० १. दरी बुनने के करघे की वह बड़ी लकड़ी या शहतीर जिसमें वै का बांस लगा रहता है। झिल्लन।
२. वह रस्सी जिसका एक सिरा हेंगे में और दूसरा बैलों के गरदन के पास जुए के बीच में बंधा रहता है।

गुरुचखाप : सं० पु० बढ़इयों का रंदे की तरह का एक औजार जिससे लकड़ी गोल की जाती है।

गुर्रा : सं० पु० वह रस्सी जिससे धुनिया धनुही का फरहा कसते हैं।

गुर्राना : क्रि० अ० कुत्ते आदि का चिल्लाना उ० काम पड़ने पर भूकने या गुर्राने लगते हैं। (म० नि० १४७)

गुर्री : सं० स्त्री० भुने हुए जौ।

गुलगुथना : वि० कोमल और मुलायम। उ० गोल गोल गुल-गुथने कपोलों पर प्यार की मोहर लगाना ही चाहता था। (गि० दी० २३०)

गुलगुला : सं० पु० १. एक प्रकार की घास जो प्रायः ऊसर जमीन में उगती है। २. पकवान जो गुड़ और आटे से बनाया जाता है। मुहा० गुड़ खाओ और गुल-गुले से परहेज।

गुलगुला : वि० मुलायम, नर्म।

गुलगुलिया : सं० पु० बंदर नचाने वाला मदारी।

गुलगुली : सं० स्त्री० १. एक प्रकार की मछली जो हिमालय के झरनों में बहुत पाई जाती है। यह दो हाथ तक लंबी होती है, इसका मांस बहुत कांटेदार होता है।

गुलची : सं० स्त्री० रंदे की तरह का बढ़इयों का एक औजार जिससे लकड़ी में गलता बनाया जाता है।

गुलझटे : सं० पु० लट, बालों की गांठ, झोंप, उलझे हुए बाल। उ० उनमें गुल-झटे और धूल की परतें जम रही थीं। (सा० ल० म० ५२)

गुलमा : सं० पु० मसालेदार कीमा भरी बकरी की अंतड़ी। दुलमा, लगूंचा।

गुलावजम : सं० पु० आसाम की पहाड़ियों में होने वाली एक प्रकार की झाड़ी जिसकी पत्तियों से एक प्रकार का भूरा रंग निकलता है और जिसकी छाल के रेशे से रस्सियां बनती हैं। सोनाफूल।

गुलू, गुलू : सं० पु० १. एक बड़ा पेड़ जो २५ से ४० हाथ तक ऊंचा होता है। इसमें टहनियों के सिरों पर गुच्छों में लम्बी पत्तियां लगती हैं। जाड़े में इसका

पतझड़ होता है। इस वृक्ष की टहनियों-पत्तियों और कतीरानाम की गोंद का उपयोग औषध में होता है। लकड़ी से खिलौने व रेशे से रस्सियाँ बनाई जाती हैं। २. एक प्रकार की मछली जो सवा हाथ लंबी होती है। ३. एक प्रकार की वटेर।

गुले : सं० पु० एक प्रकार का छोटा पेड़ जो उत्तर भारत में अधिकता से होता है। इसकी लकड़ी मजबूत चमकदार और ढुलाई के काम वाली होती है। कहीं-कहीं इसके बीजों की माला भी बनती हैं। रंग चोल।

गुल्गा : सं० पु० एक प्रकार का ताड़ जो सुंदर वन में पानी के किनारे लता की तरह फैलता है तथा चटगाँव, वरमा आदि में भी पाया जाता है। पत्तों के डंठलों को एक में बाँधकर उन पर सुंदरवन के लट्ठे वहाए जाते हैं। पत्ते छप्पर बनाने के काम आते हैं और गोल पत्ता कहाते हैं।

गुल्ला : सं० पु० १. वह ताना जो रेशमी धोतियों के किनारे बुनने में अलग तनकर माँज में लगाया जाता है। २. दरी कालीन बुनने के करवे में वह बाँस जिसमें वज के दोनों सिरे बंधे रहते हैं। ३. एक पहाड़ी पेड़ जो बहुत ऊँचा होता है। हीर की लकड़ी सुगन्धित हलकी भूरे रंग की होती है और मजबूत होने के कारण इमारत के काम आती है। सराय। ४. गोटा पट्ठा बुनने वालों का एक डोरा जो मजबूत होता है और जिसके दोनों सिरों पर सरकंडे की लकड़ियाँ लगी रहती हैं। यह डोरा ताना के बदले में पड़ा रहता है।

गुल्लू : सं० पु० एक वनस्पति से निकला तेल। उ० घी के स्थान पर गुल्लू का तेल। (प्र० ग्र० ४०८)

गुहड़ा : सं० पु० चौपायों का एक रोग। खुरपका। इसमें उनके मुँह से लार बहती है खुर में दाने पड़ जाते हैं और उनका शरीर गरम रहता है। चलने में भी वे लँगड़ाते हैं।

गुहर : सं० स्त्री० आवाज, ध्वनि, शोर, पुकार उ० रोती-भर्राती आवाज से गुहर मचाई। (बावा० २२)

गूंच : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली।

गूंछ : सं० पु० एक प्रकार की बड़ी मछली जो ६ फुट तक लंबी होती है और भारत की सब नदियों में पाई जाती है। इसका मुँह नीचे की ओर रहता है। आकार से भद्दी होती है। गहरे पानी में रहने के कारण जल्दी नहीं फँसती।

गूंदी : सं० स्त्री० १. गधेला नामक पेड़ जो गिरगिट्टी की जाति का होता है।

गूटी : सं० स्त्री० लीची का पेड़ लगाने की एक युक्ति। २. चौपायों का एक रोग।

गूदर : सं० पु० कपड़े की कथरी, गोदड़ा (गुजराती) उ० गूदड़े में छिपे हुए लाल भी मिल जाते हैं। (प्र० ग्र० १४३)

गूलर : सं० पु० १. मेढक, दादुर, २. वृक्ष विशेष। यह काफी बड़ा होता है इसके फल औषधि के काम आते हैं।

गेंडुली : सं० स्त्री० ऐंडुरी, कपड़े या रस्सी की बनी गद्दी जिसे सिर पर रखकर सामान उठाते हैं। उ० ओढ़नियों को गेंडुलियों की तरह लपेट लिया। (झूठा० २।१११)

गेंद : सं० पु० रबड़ या कपड़े की गेंद जिससे बच्चे खेलते हैं।

गेंदा : सं० पु० १. दो ढाई हाथ ऊँचा पौधा जिससे पीले रंग के फूल निकलते हैं।

इसके दो भेद होते हैं पहला तिपत्ती गेंदा, और दूसरा हजारा गेंदा। इसकी पत्ती पीसकर लगाने से घाव से खून आना बंद हो जाता है। गेंदे की सूखी पंखुड़ियों को फिटकरी के साथ पानी में उबालने से गंध का रंग बन जाता है। २. एक आतिशबाजी जिसमें गेंदे के फूल के आकार के गुल निकलते हैं। ३. सोने चाँदी के आकार का एक घूंघरूदार गहना जो जोशन या बाजू में घुंडी के स्थान पर होता है और नीचे लटका रहता है।

गेंदोड़ा : सं० पु० गुड़ की डली (बिजनौर)

गेंदोड़िया : सं० स्त्री० वैश्यों की एक जाति।

गेहूं : एक खाद्य पदार्थ (गोधूम)।

गेगम : सं० पु० एक धारीदार व चार-खाना कपड़ा। मूंगिया सींकिया।

गेगला : सं० पु० मसूर की जाति का एक प्रकार का जंगली पौधा जो पंजाब से बंगाल तक ६००० फुट की ऊँचाई तक होता है। इसके दाने काले रंग के और प्राय: गेहूँ में मिले देखे जाते हैं। गेहूँ के खेत में यह उत्पन्न होकर फसल खराब कर देता है।

गेगला : वि० मूर्ख, जड़, बेवकूफ, भोंदू।

गेजुनिया : सं० पु० गुल दुपहरिया।

गेनुर : सं० पु० एक बारामासी घास जो पशुओं के चारे के काम आती है और सूखने पर छाजन के काम आती है। गोनर, गूनर।

गेठा : सं० पु० मोका नामक वृक्ष इसकी लकड़ी सजावट के काम आती है।

गेवा : सं० स्त्री० ताने की कंघी की तीलियाँ। ये तीलियाँ लकड़ी की चिरी हुई पतली फट्टियों की होती हैं। (जुलाहे)

गेल्हा : सं० पु० चमड़े का कुप्पा जिसमें तेली तेल रखते हैं।

गेवर : सं० पु० एक पेड़। गेंगवा।

गैंटा : सं० पु० कुल्हाड़ी।

गैंती : सं० स्त्री० जभी। खोदने का एक औजार। कुदाल।

गैती : सं० स्त्री० एक पेड़ जो हिमालय के किनारे होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और अंदर सुर्ख होती है। यह नक्काशी के लिए बहुत उम्दा होती है। इससे विविध सामान बनते हैं।

गैवर : सं० पु० एक चिड़िया जिसके डैने छाती और पीठ सफेद, दुम काली तथा चोंच और पैर लाल होते हैं।

गैरी : सं० स्त्री० खरही। डाँठ का ढेर। खेत से कटे हुए डंठलों का ढेर।

गोंगवाल : सं० पु० वैश्यों की एक जाति।

गोंटा : सं० पु० एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसमें बरसात में छोटे-छोटे फूल और जाड़े में काले रंग के छोटे मीठे फल लगते हैं जो खाने में स्वादिष्ट लगते हैं।

गोंड़ा : सं० स्त्री० एक प्रकार की बड़ी लता जो देहरादून, अवध, गोरखपुर, बुंदेलखंड बंगाल और मध्य भारत के जंगलों में विशेषत: जहाँ साल के वृक्ष हों अधिकता से होती है। यह बहुत फैलती है समय पर काटी छाँटी न जाय तो जंगलों को बहुत हानि पहुँचाती है। इसकी पत्तियाँ चौड़ी होती हैं और चीर के काम आती हैं।

गोइंजो : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली जिसका मुंह और पूंछ दोनों एक ही तरह के होते हैं। इस पर छिलका नहीं होता।

गोइंड़ : सं० पु० गाँव से सटे खेत। नजदीक वाला सिवान।

गोइन : सं० पु० एक मृग-उ० हरिन रोझ

लगना वनवसे।चीतर गोइन झाँख और ससे। (जायसी)

गोइवका : सं० पु० मारवाड़ी वैश्यों की एक जाति।

गोइयार : सं० पु० खाकी रंग का एक छोटा पक्षी।

गोइलवाल : सं० पु० वैश्यों की एक जाति।

गोई : सं० स्त्री० वैलों की जोड़ी (ब्र०श०)

गोजी : सं० स्त्री० लाठी। उ० गोजी लेकर लड़कों के पीछे कटकटाकर दौड़ते। (अलग० वै० ३४२)

गोकुंद : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली जो दक्षिण की नदियों में पाई जाती है।

गोगा : सं० पु० छोटा काँटा, मेख।

गोघरी : सं० स्त्री० एक प्रकार की कपास जो भड़ौंच और वड़ौदा में होती है।

गोटा : सं० पु० लहँगा आदि कपड़े के नीचे लगाई जाने वाली एक चमकीली पट्टी। गोट। उ० ऊँची दीवारों के किनारे पर फेनों की गोट लगी दीख पड़ती थी। (सा० ल० और० १)

गोड़ : सं० पु० पैर। उ० मूड़ गोड़ भी है कि यों ही (प्र० ग्र० ५७०)

गोड़न : सं० पु० वह क्रिया जिसके अनुसार ऐसी मिट्टी से भी वना लिया जा सकता है जो नोनी न हो।

गोड़िया : सं० पु० मल्लाह।

गोदगुदालो : सं० पु० गूलू नामक पेड़।

गोदा : सं० पु० कटवाँसी वाँस।

गोदी : सं० स्त्री० वड़ी नदी व समुद्र में वह घेरा हुआ स्थान जहाँ जहाज मरम्मत के लिए व तूफान आदि के उपद्रव से वचने के लिए रखे जाते हैं। डाक। (लश०)

गोदी : सं० पु० एक प्रकार का ववूल जो नहरों के किनारों के वाँधों पर प्राय: लगाया जाता है।

गोन : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास जो थूथी की तरह की होती है और जिसका साग वनता है।

गोनी : सं० स्त्री० पकाए हुए कत्थे का वह गोला जो राख की सहायता से उसका जल सुखा लेने के वाद वनाया जाता है। (तंवोली)

गोवरी : सं० स्त्री० जहाज के पेंदे के छेद। (लश०)

गोविया : सं० पु० एक प्रकार का छोटा वाँस जो आसाम की पहाड़ियों में अधिकता से होता है। यह देखने में सुन्दर, सघन छाया वाला होता है। इसकी लकड़ी से जंगली लोग तीर कमान और टोकरे वनाते हैं।

गोम : सं० स्त्री० १. घोड़ों की एक भंवरी जो नाभि से ऊपर छाती की ओर होती है। इसे सव लोग वहुत वुरा समझते हैं। २. पृथ्वी। (डिंगल)

गोर : सं० पु० १. ऊँट की छाती (ब्र० श०) २. समाधिस्थल। उ० इसके वाद संतन के गोर पर माटी दी जायेगी। (मैला०४८)

गोरका : सं० पु० अरयल नामक वृक्ष जो दक्षिणी भारत में होता है।

गोर चकरा : सं० पु० सन की जाति का एक जंगली पौधा जिसके पत्ते घीकुआर की तरह चिकने और लंवे होते हैं। यह पौधा वगीचों में शोभा के लिए भी लगाया जाता है। उसके रेशे से प्राचीन काल में धनुष की डोरी वनाई जाती थी। दवा में इसका प्रयोग होता है।

गोरन : सं० पु० एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी लाल रंग की और वहुत मजवूत होती है। लकड़ी से किश्तियाँ, इमारती सामान वनाए जाते हैं। छाल से चमड़ा सिझाया जाता है।

गोरया : सं० पु० एक प्रकार का धान जो अगहन के महीने में तैयार होता है और जिसका चावल बहुत दिनों तक रहता है।

गोरल : सं० पु० एक प्रकार का जंगली पौधा।

गोरवा : सं० पु० एक प्रकार का बाँस जिसकी छोटी-छोटी टहनियों से हुक्के के नैचे बनाये जाते हैं।

गोरसर : सं० पु० वह पतली कमाँची जिसे बाँस के पंखों की डंडी के आसपास देकर बंधन से जकड़ देते हैं।

गोरा : सं० पु० १. एक प्रकार की कील जो नील के कारखानों में बट्टी काटने के लिए रहा करती है। २. एक प्रकार का नीबू जो लंबोतरा होता है।

गोराडू : सं० पु० वह बालू मिली मिट्टी जिसमें कोदो बहुत पैदा होता है। यह गुजरात में बहुत पैदा होती है।

गोलर : सं० पु० कसेरू।

गोली : सं० स्त्री० दासी, नौकरानी, रखैल। उ० मैं तेरी गोली हूँ। (झूठा० २/१५५)

गोसंदा : सं० पु० महुवे का फूल। कोइंदा।

गोसी : सं० पु० एक प्रकार की समुद्र में चलने वाली नाव जिसमें दो से लेकर सात तक मस्तूल होते हैं।

गोह : सं० पु० पैर, जैसे—मेरे गोहने बैठ।

गौरवा : सं० पु० चटक पक्षी, चिड़ा।

गौरिया : सं० पु० १. काले रंग का एक प्रकार का जलपक्षी जिसका सिर भूरा और गर्दन सफेद होती है। ऋतु भेदानुसार इसकी चोंच का रंग बदला करता है। २. मिट्टी का बना छोटा हुक्का। ३. एक प्रकार का मोटा कपड़ा।

गौरीसर : सं० पु० हंसराज नामक बूटी, सेंमल पत्ती।

गौहन : अव्यय० साथ, निकट, समीप। उ० क्यों धौं ये निगोड़े प्रान जान घन आनंद के। गौहन न लागे जब वे करि बिजै चले॥ (घनानंद)

ग्यांविर : सं० पु० कीकर की जाति का एक पेड़ जिसके पत्तों और लकड़ियों से पपड़िया खैर बनाया जाता है।

ग्वांड : सं० पु० पड़ोस, प्रतिवेशी। उ० यह नहीं सोचती, ग्वांड कैसा है। (झूठा० २।१५५)

घँगोल : सं० पु० कुमुद।

घँटील : सं० स्त्री० एक घास जो चारे के काम में आती है और जमीन पर दूर तक फैलती है। गधे इसे बहुत खाते हैं।

घघरी : वि० उपाधि अनुजवर कृष्णदास घघरी रहे (भा० २।२४६)

घटियारी : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास। खवी। यह पंजाब में होती है और इसमें अदरक की-सी महक आती है।

घतर : सं० पु० प्रभातकाल, तड़का।

घपला : सं० पु० पोल, अशान्ति, मेलमाल। उ० रियासत में बड़ा घपला है। (कु० पु० ५४७)

घपुआ : वि० मूर्ख, जड़, नासमझ।

घमंड : वि० गर्व, अहंकार, उ० घन घमंड नभ गरजत घोरा। (भा० ४।१४।१)

घमूह : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास जो प्राय: करील आदि की झाड़ियों के नीचे बहुत होती है। इसका स्वाद कड़वापन लिए हुए नमकीन होता है। इसके नरम कल्लों को ही चौपाये खाते हैं।

घमोई : सं० स्त्री० कटंगी बाँस का एक प्रकार का रोग जिसके पैदा होने से उस बाँस में नए कल्ले नहीं लगते। इस बाँस की जड़ों में बहुत से पतले और घने अंकुर निकलते हैं जो बाँस की बाढ़ और नए कल्लों की उत्पत्ति रोक देते हैं। उ० अबही

ते मन संसय होई। वेनु वंस तें भएसि घमोई। (तुलसी)

घमोय : सं० स्त्री० एक छोटा पौधा जो गोभी की तरह का होता है। इसके पत्ते कटावदार तथा काँटों से भरे होते हैं। फूल पीले और प्याले के आकार के होते हैं। इसके डंठल और पत्तों से निकलने वाला रस आँख के रोगों के लिए उपादेय होता है। स्वर्णक्षीरी, सत्यानाशी, भंड भाँड।

घरन : सं० स्त्री० एक प्रकार की पहाड़ी भेड़। जुंवली।

घरी : सं० स्त्री० लपेट, परत, तह। उ० है निर्गुन सारी वारिक वलि घरि करौ हम जोही। (कृ० गी० ४१)

घर्राटा : वि० सोते समय नाक और मुंह से आवाज करने की क्रिया। उ० ओढ़ना कंकड़ों पर विछाकर सोते हैं तो वह घर्राटे की नींद आती है। (भ० नि० १।१२०)

घलता : क्रि० स० नष्ट करना। उ० नाक-नायक रहित घने घने घर छालतो (गी० ५।१३)

घवरि : सं० पु० फलों का गुच्छा—उ० हेम वौर मरकत घवरि लसत पट भय डारि (भा० १।२८८)

घसड़ा : सं० पु० झगड़ा, कलह, झंझट टंटा। उ० रत्ना के वावत कुछ घसड़ा हो गया तुम सुना काका ? (सा० ल० म० २१७)

घसत : सं० पु० वकरा (डिंगल)

घांची : सं० स्त्री० तेली, तेल का व्यापारी। (व्र० श०)

घाँटो : सं० पु० एक राग जो चैत मास में गाया जाता है।

घाउघप्प : वि० खूब ठूंसकर खाने की क्रिया। उ० घाउघप्प पेट का ठाँस ठाँस न भरै। (प्र० ग्र० ४)

घाघरा : सं० पु० १.एक पौधे का नाम, २.स्त्रियों के पहनने का एक अधोवस्त्र।

घाघस : सं० स्त्री० एक प्रकार की वढ़िया और वड़ी मुर्गी।

घामड़ : सं० पु० मूर्ख। उ० समीउद्दीन खां भी कोई घामड़ नहीं थे। (आधा० ११५)

घावरा : सं० पु० एक वड़ा पेड़ जो वहुत ऊँचा और सुन्दर होता है। छाल चिकनी एवं हीर की लकड़ी चमकीली तथा दृढ़ होती है। पत्तियाँ चमड़ा सिझाने के काम आती है।

घालि : सं० पु० घलुआ, वह वस्तु जो खरीदने के उपरांत दुकानदार से ले ली जाती है। उ० विभीसनु घालि नहिं ताकहुं गनै। (भा० ६।६४)

घिग्घी : सं० पु० भय से घवड़ाने की क्रिया। उ० उसकी घिग्घी वँध गई। (क० पु० १२६)

घिघियाना : क्रि० अ० डर या आतंक से घवराना। उ० घसीटाराम की घिघियाई हुई आवाज आई। (झूठा० १।१४६)

घियारा : सं० पु० एक घुमक्कड़ जाति। (व्र० श०)

घिरोरा : सं० पु० घूस का विल। उ० काने घुसी कहै घूस चिरौरा विलारी और व्याल विले मुंह वैसो। (केशव)

घिर्री : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास। घिरनी।

घुंसा : सं० पु० एक लकड़ी जिसके सहारे से जाठ उठाकर कोल्हू में डालते हैं।

घुंइयाँ : सं० स्त्री० एक तरकारी, अरवी। (प्र० ग्र० ४०७)

घुंट : सं० पु० एक जंगली पेड़। इसकी छाल और फलियों से चमड़ा सिझाया

जाता है। घोंट।

घुग्घी : सं० स्त्री० १. तिकोना लपेटा हुआ कंवल आदि जिसे किसान और गड़रिये धूप, पानी और शीत से बचने के लिए सिर पर डालते हैं। घोघी, खुड्डुआ। २. कपोत जाति की एक चिड़िया जिसका रंग पकी हुई ईंट की तरह होता है। ढुढरू, पेड़की, पंडुक, फाख्ता।

घुघनी : सं० स्त्री० वह चना या दाल जो तेल से छुकी होती है। (प्रे० स० २९)

घुंघरू : सं० पु० पैरों में नाचने के समय पहना जाने वाला आभूषण जिसमें घंटियाँ वंधी रहती हैं। (भा० २।६८३)

घुच्चू : सं० पु० वह स्थान जो अंदर घुसा हुआ हो—जैसे घुच्चू जैसे आँखें। (सौ० अजान० २८)

घुटी : सं० स्त्री० बच्चों को दी जाने वाली औषधि जिससे उनका स्वास्थ्य ठीक रहता है।

घुड़कना : क्रि० अ० डाँटना, घूरना, गुस्से से बोलना या देखना। उ० उसे पैसों की जरूरत है इसलिए उन्होंने उसे घुड़क दिया। (आधा० ८७)

घुन्ना : वि० चालाक। उ० तू बड़ा घुन्ना है (क० पु० १०९) सं० स्त्री० घुन्नी।

घुरचा : सं० पु० कपास ओटने की चर्खी। (अल्मोड़ा)

घुरड़ : सं० पु० हिरन, पहाड़ी मृग। उ० तुमने कभी घुरड़ का गोश्त खाया है। (झूठा० २।३०५)

घुरवा : सं० पु० जानवरों का एक रोग। यह रोग एक पशु से उड़कर दूसरे में जा व्यापता है और कठिनाई से दूर होता है। इसकी उत्पत्ति एक प्रकार के जहर से होती है जो पशुओं के रुधिर में हो जाता है। इसमें गला सूज जाता है और ज्वर बड़े जोर से चढ़ता है।

घूंघरा : सं० पु० एक प्रकार का बाजा।

घूंट : सं० पु० एक बार पीने योग्य तरल पदार्थ जैसे जल या दूध आदि।

घूआ : सं० पु० १. काँस, मूंज व सरकंडे आदि का रुई की तरह का फल जो लंबी सीकों में लगता है। २. पानी के किनारे की मिट्टी में रहने वाला एक कीड़ा जिसे बुलबुल आदि पक्षी खाते हैं रेवाँ। ३. दरवाजे में ऊपर या नीचे का वह छेद जिसमें किवाड़ की चूल अटकाई जाती है।

घूगंला : सं० पु० सर्प विशेष, यह रंग में गेरुआ और लम्बाई में एक हाथ का होता है। (व्र० श०)

घूगस : सं० पु० ऊँचा, बुर्ज, गरगज।

घूघी : सं० स्त्री० १. थैली, २. जेब, खीसा, ३. घुग्घी, फाख्ता।

घूटरघूं : सं० पु० १. गुप्त बात, २. ध्वनि, कबूतर आदि की आवाज, प्रेमालाप। उ० घर प्रेमोन्मत्त मिथुन के कूजन और घुटरघूं से भर गया। (झूठा० २।३४४)

घूना : वि० चतुर, अनुभवी, खुर्राट।

घूरा : सं० पु० ढेर, कूड़े का स्तूप, मल डालने का स्थान। उ० विजया भवानी घूरे में छिपी हुई हैं। (टे० मे० रा० १५४)

घूसा : सं० पु० घूंसा, मुक्का, उँगलियों को बाँधकर मारने की प्रक्रिया। (भ० नि० २।६३)

घेंघ : सं० पु० १. एक प्रकार का भोजन जो चने की बहुरी को चावलों में मिलाकर पकाने से बनता है। २. घेघा।

घेंटी : सं० स्त्री० १. चने की फली, चने की फली जिसके भीतर बीज रूप से चना रहता है। २. चने की फली के आकार

की कोई वस्तु।

घेघा : सं० पु० १. गला। गले की नली जिससे भोजन व पानी पेट में जाता है। २. गले का एक रोग जिसमें गले में सूजन हो जाती है। यह रोग प्राय: गोरखपुर, वस्ती आदि जिलों के निवासियों को हो जाता है।

घेतल, घेतला : सं० पु० एक प्रकार का भद्दा जूता जिसका पंजा चपटा और मुड़ा हुआ होता है। इसे महाराष्ट्र या दक्षिण में अधिक पहनते हैं।

घेपना : क्रि० स० १. हाथ पैर से रौंद कर मिलाना। एक में लथपथ करना। २, छीलना, खुरचना, ३. स्त्री प्रसंग करना। (वाजारू)

घेराव : सं० पु० १. वृत्त, २. घेरा, ३. चक्र। चारों ओर से घेरने की क्रिया या भाव। आजकल इस शब्द की महत्ता तथा विस्तार वहुत वड़े क्षेत्र में होने लगता है। राजनैतिक क्षेत्र में भी इस शब्द की व्यापकता देखी जा सकती है।

घेलौना : सं० पु० घलुआ। उ० पुण्य का पुण्य एहसान घेलौना में। (भ० नि०२।१४७)

घेवर : एक मिष्ठान। (सूर)

घैया : सं० पु० १. कोख, पेट, २. गाय के थन से नि:सृत दूध की धार। उ० नैसुक घैया पिएउ सवेरे (सूर० ४६३)

घैरू : सं० स्त्री० वदनामी, उ० समुझि तुलसी कपि कर्म घर घर घैरू (क०६।४)

घोंघ : सं० पु० एक प्रकार का पक्षी।

घोंघा : सं० पु० (स्त्री० घोंघी) १. शंख की तरह का एक कीड़ा जो प्राय: नदियों तालावों, जलाशयों में पाया जाता है। इसका मांस मधुर और पित्तनाशक माना जाता है। उ० कोई उठी मोती ले घोंघा काहू हाथ (जा०६४।६) २. गेहूँ की वाल में वह कोश व कोथली जिसमें दाना रहता है।

घोंघा : सं० पु० .१ एक जंगली वृक्ष जो वहुत वड़ा होता है इसकी लकड़ी मजवूत होती है और किसानों के औजार वनाने के काम आती है। २. घूंट नामक वृक्ष।

घोंट : सं० पु० गुच्छा, केले जैसी वस्तु का गुच्छा। उ० केलों की घोंट, तुलसी फूल, लक्षमन भोग जैसे वढ़िया चावल। (वावा० ६६)

घोख : सं० स्त्री० पेच, गलती, त्रुटि, कमजोरी, शिकायत। उ० जरा वात करो तो घोखें निकालने लगती है। (भूठा० २।१५४)

घोगर : सं० पु० एक पेड़। खरपत।

घोघ : सं० पु० वटेर फँसाने का जाल।

घोघा : सं० पु० एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो चने की फसल को हानि पहुँचाता है। यह कीड़ा सर्दी से पैदा होता है और चने की घेंटियों में घुसकर दाने खा जाता है जिससे खाली घेंटी ही घेंटी रह जाती है।

घोचिल : सं० स्त्री० एक प्रकार की चिड़िया।

घोटा घोवा : सं० पु० रेवद चीनी की जाति का एक पेड़ जो खसिया की पहाड़ियों, पूरवी वंगाल तथा लंका आदि में होता है। इसमें से निकलने वाली राल रंगाई तथा दवाई के लिए उपयोगी होती है। कनकुटकी, रेवाचीनी, सीरा।

घोटाला : सं० पु० घपला, गड़वड़। गड़वड़ घोटाला।

घोड़ा पलास : सं० पु० मालखंम की एक कसरत जिसमें एक हाथ मालखंम पर उलटा ऐंठकर सामने रखते और दूसरे से

मोंगरे को पकड़ते हैं। जिधर का हाथ मोंगरे पर होता है उसी ओर का पाँव मालखंभ पर फेंक सवारी बाँधते हैं और दोनों हाथ निकाले हुए ताल ठोंकते हैं।

घोमसा : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास।

घोरारा : सं० पु० एक प्रकार का गन्ना।

घौद : सं० पु० फलों का गुच्छा, जैसे केले का घौद या गौद।

घौरि : सं० पु० डाल या फलों का गुच्छा उ० काहू गही केरा की घौरि। (जा० १८७।७)

चंग : सं० स्त्री० १. एक प्रकार की तिव्वती जौ, २. एक प्रकार के जौ की शराव जो भूटान में वनती है। ३. पतंग, गुड्डी उ० चढ़ी चंग जनु खेंच खेलारू (भा०२।२४०।३)

चंगा : वि० अच्छा, सुन्दर, भला, ठीक। (व्र० श०)

चंडाह : सं० पु० गाढ़े की तरह का एक मोटा कपड़ा।

चंडिआ : सं० पु० एक प्रकार का देशी लोहा।

चंडूल : सं० पु० एक खाकी रंग की छोटी चिड़िया जो पेड़ों और झाड़ियों में बहुत सुन्दर घोंसला वनाती है और बहुत अच्छा वोलती है।

२. चरस या चंडू पीने वाला। उ० वम्बू नायर मुंह चूस चन्डू पीय होय चंडूल। (प्र० स० १।५४४)

चंदनौता : सं० पु० एक प्रकार का लहंगा उ० चंदनौता जो खर दुख भारी। बाँस-पूर झिलमिल की सारी। (जायसी)

चंपत : वि० चलता, गायव, अन्तर्धान। जैसे वह चोर चंपत हो गया।

चंवी : सं० स्त्री० कागज या मोमजामे का एक तिकोना टुकड़ा जो कपड़ों पर रंग छापते समय उन स्थानों पर रखखा जाता है। जहाँ रंग चढ़ाना मंजूर नहीं होता। पट्टी, कतरनी।

चंबू : सं० पु० १. एक प्रकार का धान जो पहाड़ों पर विना सिंची जमीन पर चैत में होता है। २. ताँवे पीतल या और किसी धातु का छोटे मुंह का सुराहीनुमा वर्तन जिससे हिन्दू देवमूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं। ३. एक प्रकार का लोटा जो विशेषकर ओरछा में वनता है। इसका फूल बहुत उत्तम होता है। ४. वह लोटा या डिव्वा जिसमें पानी भरकर पाखाना जाते हैं।

चंचरी : सं० पु० १. पत्थर के ऊपर से वहने वाला पानी (माँझी) २. एक चिड़िया जो भारत में स्थाई रूप से रहती है। यह छोटा घोंसला जमीन पर घास आदि में वनाती है। ३. वह अन्न जो दाना पीटने पर भी वाल में लगा रहे। (ज्वार, मूंग आदि के लिए) गूरी, कोसी करही, भूडरी।

चंदराना : सं० पु० क्रि० स० १. झुठलाना, वहलाना। २. जान वूझकर अनजान वनना, जान वूझकर कोई वात पूछना।

चकचकाना : क्रि० अ० १. पानी, खून, रस या और किसी द्रव पदार्थ का सूक्ष्म-कणों के रूप में किसी वस्तु के भीतर से निकलना। रस-रस कर ऊपर आना। जैसे जहाँ जहाँ वेंती लगा है खून चकचका आया है। २. भग जाना। उ० चक चकित चित्त चखीन चुभि चकचकाई चैंडी रहता। (पद्माकर)

चकचाना : क्रि० स० चौंधियाना, चकाचौंध लगना। उ० तो पद चमक चकचाने चंद्रचूड़ चप चितवत एक टक जक वध

गई है। (चरण चन्द्रिका)

चकचाव : सं० पु० चकाचौंध। उ० गोकुल के चप सों चकचाव गो चोर लौं चौंकि अयान विसासी। (पद्माकर)

चकचौंह : सं० स्त्री० चकाचौंध।

चकचौहना : क्रि० स० चाह से देखना। आशा लगाए व टक बांध कर देखना। उ० जनु चातक मुख बूंद सेवाती। राजा चकचौहत तेहि भाँति। (जायसी)

चकमा : सं० पु० १. वबून नामक वंदर की जाति। २. धोखा। उ० वह चकमा देकर भाग गया।

चकरसी : सं० पु० एक वहुत वड़ा पेड़ जिसकी लकड़ी से मेज-कुर्सियाँ वनती हैं और छाल से चमड़ा सिझाया जाता है।

चकला : सं० पु० १. वेश्यागृह, कोठी। उ० यह कोई छल्ला कोठी, चकला थोड़े ही है। (झूठा० २।१४०) २. मोहल्ला, चौक, गली।

चकलेदार : सं० पु० किसी प्रदेश का शासक या कर संग्रह करने वाला। किसी सूवे का हाकिम या मालगुजारी वसूल करने वाला।

चकवा : सं० पु० एक वहुत ऊँचा पेड़ जिसकी हीर की लकड़ी वहुत मजवूत और छाल कुछ स्याही लिये सफेद होती है।

चकवाना : क्रि० चकपकाना, हैरान होना, चकित होना। उ० मुखचंद की देखि प्रभा दिन में चकवा चकई चकवाने रहें। (देव)

चकातरी : सं० पु० एक पेड़ का नाम।

चकावल : सं० स्त्री० घोड़ों के अगले पैर में गामचे की हड्डी का उभार।

चकुला : सं० पु० चेंटुआ, चिड़िया का वच्चा। उ० अंडन के मनों मंडल मध्य तें द्वे निकसे चकुला चकवा के। (गंग)

चकोट : सं० स्त्री० (चकोटी) उ० चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहें। (क० ६।४०)

चकौटा : सं० पु० १. एक प्रकार का लगान जो वीघे के हिसाव से नहीं होता। २. वह पशु जो ऋण के वदले में दिया जाय। मुलवन।

चगड़ या चघड़ : वि० चालाक। चतुर। उ० सांसारिक विषयों में कुशल चघड़ चतुर। (प्रे० स० २६५)

चगद : सं० पु० १. घोड़ों की एक जाति। २. एक चिड़िया।

चगुनी : सं० स्त्री० वह जमीन जो वहुत दिन परती रहकर एक वर्ष में वोई जाए।

चचरा : सं० पु० एक पेड़ का नाम।

चचरी : सं० स्त्री० लकड़ी या वाँस की खप्पच। उ० उसकी चचरियाँ खोलकर अपने चमार भाई ले गए। (वावा० ७५)

चटक : क्रि० वि० शीघ्र, जल्दी, त्वरा, तुरन्त, एकदम। उ० महिपाल को चटक ध्यान आया। (वूंद० ५६०)

चटका : सं० पु० चने का वह हरा ढोंढ़ जिसमें अच्छी तरह दाने न पड़े हों। पपटा।

चटनी : सं० स्त्री० धनिया-पोदीना से वना स्वादिष्ट तरल पदार्थ। उ० कोउ मसाले पीसत कोउ चटनी ह्वै तत्पर। (प्रे० स० २६)

चटपट : वि० शीघ्र। उ० पिचकारी मारी चटपट वहिया गहि लीनो रे। (प्रे० स० ६२२)।

चटपटी : वि० स्वादिष्ट, अच्छा। उ० कांऊ वताओ रूप चटपटी लाय। (भा० २।३६६)

चटरी : सं० स्त्री० खेसारी नामक कुधान्य।

लतरी। चिपटैया।

चटियल : वि० १. खुला हुआ, खाली मैदान जहां पेड़ादि न हों। निचाट। २. गंजी खोपड़ी, ३. चटोरा।

चटिहार : वि० जड़, मूर्ख, उजड्ड।

चटी : सं० स्त्री० चटसार, पाठशाला। उ० मुनिवृन्द जहाँ वेद पढ़ी शुक सारस हेल चकोर चटी।

चटीचरि : सं० पु० विशेष पौधा।

चट्टा : सं० पु० १. चटियल मैदान, खुला मैदान। २. गंजी खोपड़ी।

चट्टान : सं० पु० पत्थर का बड़ा ढोका। उ० सजित सुडौल परे पाहन चट्टान समुच्चटा (प्रे० स० १)

चट्टी : सं० स्त्री० १. टिकान, पड़ाव, मंजिल। उ० सो कछु आगे द्वीप लखाई तहं एक चट्टी परम सुहाई। (रघुराज) २. फरुखाबाद जिले में पैर में पहनने का एक गहना। ३. लकड़ी की बनी चप्पलनुमा उपानह।

चट्टू : सं० पु० एक प्रकार की दूब जिसे खुरैया भी कहते हैं।

चड्डा : सं० पु० १. जाँघ की जड़। जंघा का ऊपरी भाग। २. स्त्री० जाँघ में पहना जाने वाला एक वस्त्र। चड्डी।

चड़सी : सं० पु० चरस पीने वाले लोग, चरसबाज।

चतरोई : सं० स्त्री० पाँच-छ: हाथ ऊँची एक प्रकार की झाड़ी जिसकी छाल सफेद रंग की होती है और फागुन-चैत में जिसमें पीले रंग के छोटे फूल लगते हैं।

चतुरी : सं० स्त्री० पुराने ढंग की एक प्रकार की पतली नाव जो प्राय: एक ही लकड़ी में खोदकर या और किसी प्रकार बनाई जाती है। डुंगा।

चद्दर : सं० स्त्री० ओढ़ने या बिछाने का वस्त्र। (भा० २।४८७)

चनकन : सं० पु० शलगम।

चनचना : सं० पु० क्रोध से बड़बड़ाने की क्रिया। उ० ड्योढ़ी पर पैर रखा नहीं कि चनचना उठी। (अलग० बै० २६३)

चनखना : क्रि० अ० चिढ़ना खफा होना, चिटकना। उ० श्री हरिदास के स्वामी श्यामा कुंज बिहारी सों प्यारी जब तू बोलत चनख चनख। (हरिदास)

चनार : सं० पु० एक प्रकार का बहुत बड़ा पेड़ जो उत्तर भारत में होता है। इसके पत्ते पंजे के आकार के होते हैं जो जाड़े में झड़ जाते हैं। मजबूत लकड़ी जो मेज-कुर्सी के काम आती है।

चनियारी : सं० स्त्री० एक जलपक्षी जो साँभर झील के निकट और वर्मा में अधिक पाया जाता है। इसके पर बहुत सुंदर होते हैं। हरगीला।

चन्हारिन : सं० स्त्री० एक प्रकार की जंगली चिड़िया।

चप : सं० स्त्री० घोली हुई वस्तु जैसे चूने का चप।

चपड़गट्टू : वि० १. आफत का मारा, २. गुत्थम गुत्था।

चपरनी : सं० स्त्री० मुजरा, गाना। (वेश्याओं की बोली)।

चपराना : क्रि० स० झूठा बनाना, झुठलाना।

चपरैला : सं० पु० एक प्रकार की घास। कूदी।

चपलस : सं० पु० एक पेड़ जिसके भीतर की लकड़ी पीलापन लिए भूरी और मजबूत होती है जिससे सजावट के सामान नाव, तख्ते, आदि बनते हैं। यह ज्यों-ज्यों पुरानी होती है त्यों-त्यों कड़ी और मजबूत होती जाती है।

चपाती : सं० स्त्री० फुलका, रोटी। उ०

सौउनिया ने चपाती को तवे से उतार कर रोटी को टोकरी में रखा।
(आधा० ३५०)

चपैंहर : सं० पु० एक फूल का नाम।

चपोट सिरीस : सं० स्त्री० सिरीम या सीसम की जाति का पेड़ जो शिशिर में अपनी पत्तियाँ झाड़ता है। इसकी पत्ती तथा छाल दवा के काम आती है।

चपोर : सं० पु० एक जल पक्षी जो शरद् ऋतु में बंगाल तथा असम में दिखाई पड़ता है। इसकी चोंच और पैर पीले तथा सिर, गर्दन और छाती हलकी भूरी होती है।

चबक : सं० स्त्री० रह-रहकर उठने वाला दर्द, पीड़ा, चिलक, टीस।

चबकना : क्रि० अ० रह-रहकर दर्द करना, टीसना, चमकना, चिलकना, हूल मारना।

चबकी : सं० स्त्री० सूत व ऊन की वह गुथी हुई रस्सी जिससे स्त्रियाँ केश बाँधती हैं। पराँदा, मुडबाँधना, चँवरी।

चबला : सं० पु० पशुओं के मुँह का एक रोग, लाल रोग।

चमक : सं० स्त्री० काटने या डंक मारने की क्रिया।

चमोक : सं० पु० बेवकूफ, मूर्ख, गावदी।

चमचम : सं० पु० एक प्रकार की बंगला मिठाई जो छेने से तैयार होती है।

चमरौर : सं० पु० एक बड़ा पेड़ जिसकी छाया बहुत घनी होती है।

चमला : सं० पु० (अल्प० चमली) भीख माँगने का ठीकरा। भिक्षापात्र।

चमूकन : सं० पु० एक प्रकार की किलनी जो चौपायों के शरीर में चिपटी रहती है।

चमेठी : सं० स्त्री० पालकी के कहारों की बोली। सवारी लेकर जब कहार खेतों में चलता है और रास्ते में अरहर, तीसी, गेहूँ आदि की खूटियाँ पड़ती है तो उनसे बचने के लिए अगला कहार चमेठी-चमेठी कहकर पिछले कहारों को सावधान करता है।

चमोई : सं० स्त्री० एक पेड़ जिसकी छाल से नेपाली कागज बनाया जाता है। घन-कोटा, सतपरा, सतबरसा। यह पेड़ सिक्किम से भूटान तक होता है।

चम्मोरानी : सं० पु० बच्चों का एक खेल।

चरका : सं० पु० मडुवा नामक अन्न का भेद।

चरचराना : क्रि० अ० आँखों में लगना, दर्द होना, चरचर की आवाज होना, उ० आँखें कोहरे में मिले धुएँ से चरचराने लगतीं। (झूठा० १।७६)

चरत : सं० पु० एक प्रकार का बड़ा पक्षी जिसका शिकार किया जाता है।

चरतिरिया : सं० स्त्री० मिरजापुर जिले में पैदा होने वाली एक मामूली कपास।

चरना : सं० पु० सुनारों का एक औजार जिससे नक्काशी करने में सीधी लकीर या लंबा चिह्न बनाया जाता है।

चरपट : सं० पु० उचक्का, चोर, धूर्त। उ० चरपट चोर धूर्त गंठि छोरा।
(जा० ३९।८)

चरपनी : सं० स्त्री० वेश्या का गाना (वेश्याओं की बोली)।

चरमरा : सं० पु० एक प्रकार की घास। लकड़ी।

चरलीता : सं० पु० एक काष्ठौषधि। उ० चव चिराइता चित्र चीता चौक चौब चीनी चरलीता। (सूदन)

चरवा : सं० पु० एक प्रकार का बढ़िया मुलायम चारा जो खेत में बारहों मास पैदा होता है। चौपाए इसे बड़े चाव से

खाते हैं। घम्मन।

चरवी : सं० स्त्री० कहारों का एक सांकेतिक शब्द। इससे आगे वाला कहार पीछे वाले कहार को सूचना देता है कि रास्ते में एक्का या गाड़ी है।

चराक : सं० पु० एक प्रकार की चिड़िया।

चरावर : सं० स्त्री० व्यर्थ की बात, बकवाद। उ० फालगुन में एक प्रेम को राज है काहे वेकाज करौ हो चरावर।

चरी : सं० स्त्री० चौपायों के लिए बोया गया आहार, वह शष्य जो पशुओं को खिलाई जाय। उ० चरी कहीं-कहीं सचमुच ही उग आयी थी। (राग दर० २४)

चरेरा : सं० पु० एक पेड़ जो हिमालय की तराई और पूर्वी वंगाल में अधिकता से होता है। इसके हीर की लकड़ी इमारत के काम आती है। इसके फलों से एक प्रकार का तेल भी निकलता है।

चरेला : सं० पु० एक प्रकार का जाल जिससे झील या तालाव के किनारे रहने वाले पक्षी पकड़े जाते हैं।

चलका : सं० पु० एक प्रकार की साधारण नाव।

चलता : सं० पु० १. एक प्रकार का बहुत बड़ा सदावहार पेड़ जिसकी लकड़ी चिकनी मजबूत और अन्दर से लाल होती है। इसके पुराने पत्तों से हाथी का दाँत साफ किया जाता है। इसमें वेल के आकार का वड़ा फल लगता है जो कच्चा भी खाया जाता है और जिसकी तरकारी भी वनती है। २. रास्ते में वह स्थान जहाँ फिसलन और कीचड़ बहुत अधिक हो (कहारों की बोली)। ३. कवच, झिलम।

चल्ली : सं० स्त्री० तकले पर लपेटा हुआ सूत या ऊन। कुकड़ी।

चस : सं० स्त्री० किसी किनारेदार कपड़े में किनारे के ऊपर या नीचे की ओर बनी हुई कलावत्तू या किसी दूसरे रंग के रेशम व सूत की पतली लकीर या धारी।

चलक : सं० स्त्री० १. हल्का दर्द, कसक। २. गोटे या अतलस आदि की पतली गोट।

चसम : सं० पु० रेशम का खुज्झा। रेशम के तागों में निकला हुआ निकम्मा अंश।

चस्सी : सं० पु० हथेली या तलवों की खुजली।

चहका : सं० पु० जलती हुई लकड़ी, लुआठी, लूका। मुहा० चहका देना व लगाना—आग लगाना। (स्त्रियों की गाली) फाग में गाया जाने वाला गीत विशेष।

चहल पहल : अनु० बहुत से लोगों के आने जाने की धूम, आनन्दोत्सव, ठेलपेल।

चहली : सं० स्त्री० कुएँ से पानी खींचने की चर्खी, गराड़ा, घिरनी।

चहोरना : क्रि० अ० १. धान या अन्य किसी वृक्ष के पौधे को एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह लगाना, वैठाना। २. सहेजना, देखभाल कर सुरक्षित रखना। ३. काटी कूटी माछरी छीके धरी चहोर। कोई एक औगुन मन वसा दह में परी वहोरि—कवीर०।

चाँगड़ा : सं० पु० तिव्वत देश का एक प्रकार का वकरा।

चाँचर : सं० स्त्री० १. वह जमीन जो एक वर्ष या कई वर्षों तक बिना जोती हुई छोड़ दी जाय। परती छोड़ी हुई जमीन। २. सालपान नामक क्षुप। ३. टट्टी का परदा जो किवाड़ के बदले काम में लाया जाय। उ० चाँचर की खपचियों के नीचे

से हल्का-हल्का धारीदार प्रकाश जमीन पर लोट रहा था। (अलग० बैं० २४६)

चाँटा : क्रि० स० चटना—धरती परै सरग को चाँटा। (जा० २२०।३)

चाँटी : सं० स्त्री० १. चीटी। उ० कीन्हे सिलावा इंदुर चांटी (जायसी)। २. वह कर जो पहले कारीगरों पर लगता था। ३. तवले की संजाफदार मगजी जिस पर तवला वजाते समय तर्जनी उंगली पड़ती है। ४. तवले का वह शब्द जो इस स्थान पर तर्जनी उँगली का आघात पड़ने से होता है।

चाँड़ना : क्रि० स० १. खोदना, खोदकर गिराना। २. उजाड़ना, उखाड़ना। उ० प्रविशि वाटिका चाँड़ न लागे, घुरघुरात रखवारे भागे। विश्राम, ३. ठगना।

चाँप : सं० स्त्री० सोने की वे कीलें जिन्हें लोग अगले दाँतों पर जड़वाते हैं।

चाऊ : सं० पु० ऊँट या वकरे का वल। (पहाड़ी)

चाकट : सं० पु० एक प्रकार का कड़ा जो हाथ में पहना जाता है!

चाटा : सं० पु० (स्त्री० अल्प चाटी) वह वरतन जिसमें कोल्हू का पेरा हुआ रस इकट्ठा होता है। नाँद।

चादर : सं० स्त्री ओढ़ने का वस्त्र। उ० वह चादर ओढ़े है। (क० पु० १४६)

चापू : सं० पु० हिमालय के आसपास के प्रदेशों की एक प्रकार की छोटी वकरी जिसके वाल वहुत लम्बे और मुलायम होते हैं। इसके वालों के कंवल आदि वनते हैं।

चारोली : सं० स्त्री० गुठली।

चाली : सं० पु० १. मोहल्ला, पाला। २. गिड़ार, वरसात का एक लाल कृमि, गेंडुआ, केंचुआ। उ० चाली या गुँधा आटा या सत्तू का वोर देकर काँटे को पानी में डाल देते। (वल० ३३)

चाल्ह : सं० स्त्री० चेल्हवा मछली। उ० वात कहत भइ देस गुहारी। केवटाई चाल्ह समुंद महं मारी। (जायसी)

चाल्ही : सं० स्त्री० नाव में वह स्थान जो मरिया के पास ही वाँस की फट्टियों से पटा रहता है और जहाँ खेने वाला मल्लाह वैठता है।

चावड़ी : सं० स्त्री० पथिकों का उतरने का स्थान। चट्टी। पड़ाव।

चावल : सं० पु० तण्डुल, भात, चाँवर, चोखा। (गुजराती)

चास : सं० स्त्री० जोत, वाह। उ० हल में जुता हुआ वैल दिन-भर खेत चास करता है। (मैला० १०८)

चासा : सं० पु० १. उड़ीसा की एक जाति जो किसानी पर निर्वाह करती है। २. हलवाहा, हल जोतने वाला। ३. किसान, खेतिहर।

चिंगना : सं० पु० १. किसी पक्षी विशेषतः मुर्गी का छोटा वच्चा। २. छोटा वालक। वच्चा।

चिंदी : सं० स्त्री० टुकड़ा। मुहा० चिंदी-चिंदी करना टुकड़े-टुकड़े कर देना। हिंदी की चिंदी निकालना, अत्यन्त तुच्छ भूल करना।

चिंपा : सं० पु० एक गहरे काले रंग का कीड़ा जो ज्वार, वाजरे, अरहर और तम्वाकू को खा डालता है।

चिगुरा : सं० पु० एक प्रकार का वगुला।

चिगुला : सं० पु० १. वच्चा, वालक। २. किसी पक्षी का छोटा वच्चा।

चिउली : सं० स्त्री० १. महुए की जाति का एक जंगली पेड़ जो हिमालय के आस-पास भूटान तक होता है। इसमें एक प्रकार का तेल मक्खन की तरह जम जाता

खाते हैं। घम्मन।

चरखी : सं० स्त्री० कहारों का एक सांकेतिक शब्द। इससे आगे वाला कहार पीछे वाले कहार को सूचना देता है कि रास्ते में एक्का या गाड़ी है।

चराक : सं० पु० एक प्रकार की चिड़िया।

चरावर : सं० स्त्री० व्यर्थ की बात, बकवाद। उ० फालगुन में एक प्रेम को राज है काहे बेकाज करो हो चरावर।

चरी : सं० स्त्री० चौपायों के लिए बोया गया आहार, वह शस्य जो पशुओं को खिलाई जाय। उ० चरी कहीं-कहीं सचमुच ही उग आयी थी। (राग दर० २४)

चरेरा : सं० पु० एक पेड़ जो हिमालय की तराई और पूर्वी बंगाल में अधिकता से होता है। इसके हीर की लकड़ी इमारत के काम आती है। इसके फलों से एक प्रकार का तेल भी निकलता है।

चरेला : सं० पु० एक प्रकार का जाल जिससे झील या तालाब के किनारे रहने वाले पक्षी पकड़े जाते हैं।

चलका : सं० पु० एक प्रकार की साधारण नाव।

चलता : सं० पु० १. एक प्रकार का बहुत बड़ा सदाबहार पेड़ जिसकी लकड़ी चिकनी मजबूत और अन्दर से लाल होती है। इसके पुराने पत्तों से हाथी का दाँत साफ किया जाता है। इसमें बेल के आकार का बड़ा फल लगता है जो कच्चा भी खाया जाता है और जिसकी तरकारी भी बनती है। २. रास्ते में वह स्थान जहाँ फिसलन और कीचड़ बहुत अधिक हो (कहारों की बोली)। ३. कवच, झिलम।

चल्ली : सं० स्त्री० तकले पर लपेटा हुआ सूत या ऊन। कुकड़ी।

चस : सं० स्त्री० किसी किनारेदार कपड़े में किनारे के ऊपर या नीचे की ओर बनी हुई कलाबत्तू या किसी दूसरे रंग के रेशम व सूत की पतली लकीर या धारी।

चसक : सं० स्त्री० १. हल्का दर्द, कसक। २. गोटे या अतलस आदि की पतली गोट।

चसम : सं० पु० रेशम का लुच्छा। रेशम के तागों से निकला हुआ निकम्मा अंश।

चस्सी : सं० पु० हथेली या तलवों की खुजली।

चहका : सं० पु० जलती हुई लकड़ी, लुआठी, लूका। मुहा० चहका देना व लगाना—आग लगाना। (स्त्रियों की गाली) फाग में गाया जाने वाला गीत विशेष।

चहल पहल : अनु० बहुत से लोगों के आने जाने की धूम, आनन्दोत्सव, ठेलपेल।

चहली : सं० स्त्री० कुएँ से पानी खींचने की चर्खी, गराड़ा, घिरनी।

चहोरना : क्रि० अ० १. धान या अन्य किसी वृक्ष के पौधे को एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह लगाना, बैठाना। २. सहेजना, देखभाल कर सुरक्षित रखना। ३. कादी कूटी माछरी छीके धरी चहोर। कोई एक औगुन मन बसा दह में परी बहोरि—कबीर०।

चाँगड़ा : सं० पु० तिब्बत देश का एक प्रकार का बकरा।

चाँचर : सं० स्त्री० १. वह जमीन जो एक वर्ष या कई वर्षों तक बिना जोती हुई छोड़ दी जाय। परती छोड़ी हुई जमीन। २. सालपान नामक क्षुप। ३. टट्टी का परदा जो किवाड़ के बदले काम में लाया जाय। उ० चाँचर की खपचियों के नीचे

से हल्का-हल्का धारीदार प्रकाश जमीन पर लोट रहा था। (अलग० वै० २४६)

चाँटा : क्रि० स० चटना—धरती परै सरग को चाँटा। (जा० २२०।३)

चाँटी : सं० स्त्री० १. चीटी। उ० कीन्हे सिलावा इंदुर चाँटी (जायसी)। २. वह कर जो पहले कारीगरों पर लगता था। ३. तबले की संजाफदार मगजी जिस पर तबला बजाते समय तर्जनी उँगली पड़ती है। ४. तबले का वह शब्द जो इस स्थान पर तर्जनी उँगली का आघात पड़ने से होता है।

चाँड़ना : क्रि० स० १. खोदना, खोदकर गिराना। २. उजाड़ना, उखाड़ना। उ० प्रविशि वाटिका चाँड़ न लागे, घुरघुरात रखवारे भागे। विश्राम, ३. ठगना।

चाँप : सं० स्त्री० सोने की वे कीलें जिन्हें लोग अगले दाँतों पर जड़वाते हैं।

चाऊ : सं० पु० ऊँट या बकरे का बल। (पहाड़ी)

चाकट : सं० पु० एक प्रकार का कड़ा जो हाथ में पहना जाता है।

चाटा : सं० पु० (स्त्री० अल्प चाटी) वह बरतन जिसमें कोल्हू का पेरा हुआ रस इकट्ठा होता है। नाँद।

चादर : सं० स्त्री ओढ़ने का वस्त्र। उ० वह चादर ओढ़े है। (क० पु० १४६)

चापू : सं० पु० हिमालय के आसपास के प्रदेशों की एक प्रकार की छोटी बकरी जिसके बाल बहुत लम्बे और मुलायम होते है। इसके बालों के कंबल आदि बनते हैं।

चारोली : सं० स्त्री० गुठली।

चाली : सं० पु० १. मोहल्ला, पाला। २. गिड़ार, बरसात का एक लाल कृमि, गेंडुआ, केंचुआ। उ० चाली या गुँधा आटा या सत्तू का बोर देकर काँटे को पानी में डाल देते। (बल० ३३)

चाल्ह : सं० स्त्री० चेल्हवा मछली। उ० बात कहत भइ देस गुहारी। केवटाई चाल्ह समुंद महं मारी। (जायसी)

चाल्ही : सं० स्त्री० नाव में वह स्थान जो मरिया के पास ही बाँस की फट्टियों से पटा रहता है और जहाँ खेने वाला मल्लाह बैठता है।

चावड़ी : सं० स्त्री० पथिकों का उतरने का स्थान। चट्टी। पड़ाव।

चावल : सं० पु० तण्डुल, भात, चाँवर, चोखा। (गुजराती)

चास : सं० स्त्री० जोत, बाह। उ० हल में जुता हुआ बैल दिन-भर खेत चास करता है। (मैला० १०८)

चासा : सं० पु० १. उड़ीसा की एक जाति जो किसानी पर निर्वाह करती है। २. हलवाहा, हल जोतने वाला। ३. किसान, खेतिहर।

चिगना : सं० पु० १. किसी पक्षी विशेषतः मुर्गी का छोटा बच्चा। २. छोटा बालक। बच्चा।

चिंदी : सं० स्त्री० टुकड़ा। मुहा० चिंदी-चिंदी करना टुकड़े-टुकड़े कर देना। हिंदी की चिंदी निकालना, अत्यन्त तुच्छ भूल करना।

चिपा : सं० पु० एक गहरे काले रंग का कीड़ा जो ज्वार, बाजरे, अरहर और तम्बाकू को खा डालता है।

चिगुरा : सं० पु० एक प्रकार का बगुला।

चिगुला : सं० पु० १. बच्चा, बालक। २. किसी पक्षी का छोटा बच्चा।

चिउली : सं० स्त्री० १. महुए की जाति का एक जंगली पेड़ जो हिमालय के आस-पास भूटान तक होता है। इसमें एक प्रकार का तेल मक्खन की तरह जम जाता

खाते हैं। घम्मन।

घरवी : सं० स्त्री० कहारों का एक सांकेतिक शब्द। इससे आगे वाला कहार पीछे वाले कहार को सूचना देता है कि रास्ते में एक्का या गाड़ी है।

घराक : सं० पु० एक प्रकार की चिड़िया।

घरावर : सं० स्त्री० व्यर्थ की बात, बकवाद। उ० फालगुन में एक प्रेम को राज है काहे बेकाज करो हो चरावर।

चरी : सं० स्त्री० चौपायों के लिए बोया गया आहार, वह भक्ष्य जो पशुओं को खिलाई जाय। उ० चरी कहीं-कहीं सचमुच ही उग आयी थी। (राग दर० २४)

घरेरा : सं० पु० एक पेड़ जो हिमालय की तराई और पूर्वी बंगाल में अधिकता से होता है। इसके हीर की लकड़ी इमारत के काम आती है। इसके फलों से एक प्रकार का तेल भी निकलता है।

घरेला : सं० पु० एक प्रकार का जाल जिससे झील या तालाब के किनारे रहने वाले पक्षी पकड़े जाते हैं।

चलका : सं० पु० एक प्रकार की साधारण नाव।

चलता : सं० पु० १. एक प्रकार का बहुत बड़ा सदाबहार पेड़ जिसकी लकड़ी चिकनी मजबूत और अन्दर से लाल होती है। इसके पुराने पत्तों से हाथी का दाँत साफ किया जाता है। इसमें बेल के आकार का बड़ा फल लगता है जो कच्चा भी खाया जाता है और जिसकी तरकारी भी बनती है। २. रास्ते में वह स्थान जहाँ फिसलन और कीचड़ बहुत अधिक हो (कहारों की बोली)। ३. कवच, झिलम।

चल्ली : सं० स्त्री० तकले पर लपेटा हुआ सूत या ऊन। कुकड़ी।

चस : सं० स्त्री० किसी किनारेदार कपड़े में किनारे के ऊपर या नीचे की ओर बनी हुई कलाबत्तू या किसी दूसरे रंग के रेशम व सूत की पतली लकीर या धारी।

चसक : सं० स्त्री० १. हल्का दर्द, कसक। २. गोटे या अतलस आदि की पतली गोट।

चसम : सं० पु० रेशम का गुच्छा। रेशम के तारों में निकला हुआ निकम्मा अंश।

चस्सी : सं० पु० हथेली या तलवों की खुजली।

चहका : सं० पु० जलती हुई लकड़ी, लुआठी, लूका। मुहा० चहका देना व लगाना—आग लगाना। (स्त्रियों की गाली) फाग में गाया जाने वाला गीत विशेष।

चहल पहल : अनु० बहुत से लोगों के आने जाने की धूम, आनन्दोत्सव, ठेलपेल।

चहली : सं० स्त्री० कुएँ से पानी खींचने की चर्खी, गराड़ा, घिरनी।

चहोरना : क्रि० अ० १. धान या अन्य किसी वृक्ष के पौधे को एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह लगाना, बैठाना। २. सहेजना, देखभाल कर सुरक्षित रखना। ३. काटी कूटी माछरी छीके धरी चहोर। कोई एक औगुन मन बसा दह में परी बहोरि—कबीर०।

चाँगड़ा : सं० पु० तिब्बत देश का एक प्रकार का बकरा।

चाँचर : सं० स्त्री० १. वह जमीन जो एक वर्ष या कई वर्षों तक बिना जोती हुई छोड़ दी जाय। परती छोड़ी हुई जमीन। २. सालपान नामक क्षुप। ३. टट्टी का परदा जो किवाड़ के बदले काम में लाया जाय। उ० चाँचर की खपचियों के नीचे

से हल्का-हल्का धारीदार प्रकाश जमीन पर लोट रहा था। (अलग० वै० २४६)

चाँटा : क्रि० स० चटना—धरती परै सरग को चाँटा । (जा० २२०।३)

चाँटी : सं० स्त्री० १. चींटी। उ० कीन्हे सिलावा इंदुर चाँटी (जायसी)। २. वह कर जो पहले कारीगरों पर लगता था। ३. तबले की संजाफदार मगजी जिस पर तबला बजाते समय तर्जनी उँगली पड़ती है। ४. तबले का वह शब्द जो इस स्थान पर तर्जनी उँगली का आघात पड़ने से होता है।

चाँड़ना : क्रि० स० १. खोदना, खोदकर गिराना। २. उजाड़ना, उखाड़ना। उ० प्रविशि वाटिका चाँड़ न लागे, घुरघुरात रखवारे भागे। विश्राम, ३. ठगना।

चाँप : सं० स्त्री० सोने की वे कीलें जिन्हें लोग अगले दाँतों पर जड़वाते हैं।

चाऊ : सं० पु० ऊँट या बकरे का बल। (पहाड़ी)

चाकट : सं० पु० एक प्रकार का कड़ा जो हाथ में पहना जाता है।

चाटा : सं० पु० (स्त्री० अल्प चाटी) वह बरतन जिसमें कोल्हू का पेरा हुआ रस इकट्ठा होता है। नाँद।

चादर : सं० स्त्री ओढ़ने का वस्त्र। उ० वह चादर ओढ़े है। (क० पु० १४६)

चापू : सं० पु० हिमालय के आसपास के प्रदेशों की एक प्रकार की छोटी बकरी जिसके बाल बहुत लम्बे और मुलायम होते हैं। इसके बालों के कंबल आदि बनते हैं।

चारोली : सं० स्त्री० गुठली।

चाली : सं० पु० १. मोहल्ला, पाला। २. गिड़ार, बरसात का एक लाल कृमि, गेंडुआ, केंचुआ। उ० चाली या गुँधा आटा या सत्तू का बोर देकर काँटे को पानी में डाल देते। (बल० ३३)

चाल्ह : सं० स्त्री० चेल्हवा मछली। उ० बात कहत भइ देस गुहारी। केवटाई चाल्ह समुंद महं मारी। (जायसी)

चाल्ही : सं० स्त्री० नाव में वह स्थान जो मरिया के पास ही बाँस की फट्टियों से पटा रहता है और जहाँ खेने वाला मल्लाह बैठता है।

चावड़ी : सं० स्त्री० पथिकों का उतरने का स्थान। चट्टी। पड़ाव।

चावल : सं० पु० तण्डुल, भात, चाँवर, चोखा। (गुजराती)

चास : सं० स्त्री० जोत, बाह। उ० हल में जुता हुआ बैल दिन-भर खेत चास करता है। (मैला० १०८)

चासा : सं० पु० १. उड़ीसा की एक जाति जो किसानी पर निर्वाह करती है। २. हलवाहा, हल जोतने वाला। ३. किसान, खेतिहर।

चिगना : सं० पु० १. किसी पक्षी विशेषतः मुर्गी का छोटा बच्चा। २. छोटा बालक। बच्चा।

चिंदी : सं० स्त्री० टुकड़ा। मुहा० चिंदी-चिंदी करना टुकड़े-टुकड़े कर देना। हिंदी की चिंदी निकालना, अत्यन्त तुच्छ भूल करना।

चिंपा : सं० पु० एक गहरे काले रंग का कीड़ा जो ज्वार, बाजरे, अरहर और तम्बाकू को खा डालता है।

चिगुरा : सं० पु० एक प्रकार का बगुला।

चिंगुला : सं० पु० १. बच्चा, बालक। २. किसी पक्षी का छोटा बच्चा।

चिउली : सं० स्त्री० १. महुए की जाति का एक जंगली पेड़ जो हिमालय के आस-पास भूटान तक होता है। इसमें एक प्रकार का तेल मक्खन की तरह जम जाता

खाते हैं। घम्मन।

चरवी : सं० स्त्री० कहारों का एक सांकेतिक शब्द। इससे आगे वाला कहार पीछे वाले कहार को सूचना देता है कि रास्ते में एक्का या गाड़ी है।

चराक : सं० पु० एक प्रकार की चिड़िया।

चरावर : सं० स्त्री० व्यर्थ की बात, बकवाद। उ० फालगुन में एक प्रेम को राज है काहे वेकाज करौ हौ चरावर।

चरी : सं० स्त्री० चौपायों के लिए बोया गया आहार, वह शष्य जो पशुओं को खिलाई जाय। उ० चरी कहीं-कहीं सचमुच ही उग आयी थी। (राग दर० २४)

चरेरा : सं० पु० एक पेड़ जो हिमालय की तराई और पूर्वी बंगाल में अधिकता से होता है। इसके हीर की लकड़ी इमारत के काम आती है। इसके फलों से एक प्रकार का तेल भी निकलता है।

चरेला : सं० पु० एक प्रकार का जाल जिससे झील या तालाव के किनारे रहने वाले पक्षी पकड़े जाते हैं।

चलका : सं० पु० एक प्रकार की साधारण नाव।

चलता : सं० पु० १. एक प्रकार का बहुत वड़ा सदावहार पेड़ जिसकी लकड़ी चिकनी मजबूत और अन्दर से लाल होती है। इसके पुराने पत्तों से हाथी का दाँत साफ किया जाता है। इसमें वेल के आकार का वड़ा फल लगता है जो कच्चा भी खाया जाता है और जिसकी तरकारी भी वनती है। २. रास्ते में वह स्थान जहाँ फिसलन और कीचड़ बहुत अधिक हो (कहारों की बोली)। ३. कवच, झिलम।

चल्ली : सं० स्त्री० तकले पर लपेटा हुआ सूत या ऊन। कुकड़ी।

चस : सं० स्त्री० किसी किनारेदार कपड़े में किनारे के ऊपर या नीचे की ओर बनी हुई कलावत्तू या किसी दूसरे रंग के रेशम व सूत की पतली लकीर या धारी।

चलक : सं० स्त्री० १. हलका दर्द, कसक। २. गोटे या अतलस आदि की पतली गोट।

चसम : सं० पु० रेशम का खुज्झा। रेशम के तागों में निकला हुआ निकम्मा अंश।

चस्सी : सं० पु० हथेली या तलवों की खुजली।

चहका : सं० पु० जलती हुई लकड़ी, लुआठी, लूका। मुहा० चहका देना व लगाना—आग लगाना। (स्त्रियों की गाली) फाग में गाया जाने वाला गीत विशेष।

चहल पहल : अनु० बहुत से लोगों के आने जाने की धूम, आनन्दोत्सव, ठेलपेल।

चहली : सं० स्त्री० कुएँ से पानी खींचने की चर्खी, गराड़ा, घिरनी।

चहोरना : क्रि० अ० १. धान या अन्य किसी वृक्ष के पौधे को एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह लगाना, बैठाना। २. सहेजना, देखभाल कर सुरक्षित रखना। ३. काटी कूटी माछरी छीके धरी चहोर। कोई एक औगुन मन वसा दह में परी वहोरि—कवीर०।

चाँगड़ा : सं० पु० तिब्बत देश का एक प्रकार का वकरा।

चाँचर : सं० स्त्री० १. वह जमीन जो एक वर्ष या कई वर्षों तक विना जोती हुई छोड़ दी जाय। परती छोड़ी हुई जमीन। २. सालपान नामक क्षुप। ३. टट्टी का परदा जो किवाड़ के बदले काम में लाया जाय। उ० चाँचर की खपचियों के नीचे

से हल्का-हल्का धारीदार प्रकाश जमीन पर लोट रहा था। (अलग० वै० २४९)

चाँटा : क्रि० स० चटना—धरती परै सरग को चाँटा। (जा० २२०।३)

चाँटी : सं० स्त्री० १. चीटी। उ० कीन्हे सिलावा इंदुर चाँटी (जायसी)। २. वह कर जो पहले कारीगरों पर लगता था। ३. तबले की संजाफदार मगजी जिस पर तबला बजाते समय तर्जनी उँगली पड़ती है। ४. तबले का वह शब्द जो इस स्थान पर तर्जनी उँगली का आघात पड़ने से होता है।

चाँड़ना : क्रि० स० १. खोदना, खोदकर गिराना। २. उजाड़ना, उखाड़ना। उ० प्रविशि वाटिका चाँड़ न लागे, घुरघुरात रखवारे भागे। विश्राम, ३. ठगना।

चाँप : सं० स्त्री० सोने की वे कीलें जिन्हें लोग अगले दाँतों पर जड़वाते हैं।

चाऊ : सं० पु० ऊँट या बकरे का बल। (पहाड़ी)

चाकट : सं० पु० एक प्रकार का कड़ा जो हाथ में पहना जाता है!

चाटा : सं० पु० (स्त्री० अल्प चाटी) वह बरतन जिसमें कोल्हू का पेरा हुआ रस इकट्ठा होता है। नाँद।

चादर : सं० स्त्री ओढ़ने का वस्त्र। उ० वह चादर ओढ़े है। (क० पु० १४९)

चापू : सं० पु० हिमालय के आसपास के प्रदेशों की एक प्रकार की छोटी बकरी जिसके बाल बहुत लम्बे और मुलायम होते हैं। इसके बालों के कंबल आदि बनते हैं।

चारोली : सं० स्त्री० गुठली।

चाली : सं० पु० १. मोहल्ला, पाला। २. गिड़ार, बरसात का एक लाल कृमि, गेंडुआ, केंचुआ। उ० चाली या गुँधा आटा या सत्तू का बोर देकर काँटे को पानी में डाल देते। (बल० ३३)

चाल्ह : सं० स्त्री० चेल्हवा मछली। उ० बात कहत भइ देस गुहारी। केवटाई चाल्ह समुंद महं मारी। (जायसी)

चाल्ही : सं० स्त्री० नाव में वह स्थान जो मरिया के पास ही बाँस की फट्टियों से पटा रहता है और जहाँ खेने वाला मल्लाह बैठता है।

चावड़ी : सं० स्त्री० पथिकों का उतरने का स्थान। चट्टी। पड़ाव।

चावल : सं० पु० तण्डुल, भात, चाँवर, चोखा। (गुजराती)

चास : सं० स्त्री० जोत, बाह। उ० हल में जुता हुआ बैल दिन-भर खेत चास करता है। (मैला० १०८)

चासा : सं० पु० १. उड़ीसा की एक जाति जो किसानी पर निर्वाह करती है। २. हलवाहा, हल जोतने वाला। ३. किसान, खेतिहर।

चिंगना : सं० पु० १. किसी पक्षी विशेषतः मुर्गी का छोटा बच्चा। २. छोटा बालक। बच्चा।

चिंदी : सं० स्त्री० टुकड़ा। मुहा० चिंदी-चिंदी करना टुकड़े-टुकड़े कर देना। हिंदी की चिंदी निकालना, अत्यन्त तुच्छ भूल करना।

चिंपा : सं० पु० एक गहरे काले रंग का कीड़ा जो ज्वार, बाजरे, अरहर और तम्बाकू को खा डालता है।

चिंगुरा : सं० पु० एक प्रकार का बगुला।

चिंगुला : सं० पु० १. बच्चा, बालक। २. किसी पक्षी का छोटा बच्चा।

चिउली : सं० स्त्री० १. महुए की जाति का एक जंगली पेड़ जो हिमालय के आस-पास भूटान तक होता है। इसमें एक प्रकार का तेल मक्खन की तरह जम

है, नेपाल में इसे घी में मिलाते हैं। २. एक प्रकार का रंगीन रेशमी कपड़ा।

चिक : सं० स्त्री० कमर का वह दर्द जो एक बारगी अधिक बल पड़ने के कारण होता है। चिमक, झटका, लचक।

चिकड़ी : सं० स्त्री० एक छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी मजबूत एवं पीलापन लिए हुए होती है। इसकी कंघियाँ बनाई जाती हैं, कठौत भी इसके बनते हैं। इसके पत्तों की खाद बनती है।

चिकोटी : सं० स्त्री० चुंटी, नाखूनों से नोंचने की क्रिया। उ० उसकी बाँह पर चिकोटी भी काट लेता था। (झूठा० २।२७८)

चिक्कस : सं० पु० लोहे, पीतल आदि के छड़ का बना हुआ वह अड्डा जिस पर बुलबुल, तोते आदि बैठाए जाते हैं।

चिक्का : सं० पु० १. थोड़ा, अल्प। २. पत्थर का टुकड़ा (चिक्क>दे० ना०) शब्द विपर्यय–किच्च–अल्प, हिस्सा।

चिखर : सं० पु० चने का छिलका, चने की भूसी, चने की कराई। .

चिखुरन : सं० स्त्री० वह घास जो खेत को निरा कर निकाली जाती है।

चिखुरना : क्रि० स० जोते हुए खेत में से घास निकालकर बाहर करना।

चिचड़ा : सं० पु० दो हाथ ऊँचा एक पौधा जिसमें थोड़ी-थोड़ी दूर पर गाँठें होती हैं। गाँठों के दोनों ओर पतली टहनियाँ या पत्तियाँ लगी होती हैं। फूल और बीज लंबी-लंबी सीकों में गुथे रहते हैं। इस पौधे की जड़ मुसली होती है। इसकी जड़, पत्ती सभी दवा के काम आती है। यह पौधा बरसात में घासों के साथ उगता है। अपमार्ग, लटजीरा, औंगा, अंझाझार आदि इसके अन्य नाम हैं।

चिचड़ी : सं० स्त्री० एक कीड़ा जो चौपायों, कुत्तों तथा बिल्लियों के शरीर में चिमटा रहता है और उनका खून पिया करता है। किलनी, किल्ली। मुहा० चिचड़ी-सा चिमटता, पीछा न छोड़ना।

चिजारा : सं० पु० कारीगर, मेमार। उ० क–कबिरा देवल ढाई पटा भई ईंटें संहार। कोई चिजारा चूनिया मिला न दूजी बार। (कबीर) ख– करी चिजारा प्रतही ज्यों ढहै न दूजी बार। (कबीर)।

चिट्टा : सं० पु० झूठा बढ़ावा। वह उत्तेजना जो किसी को कोई ऐसा काम करने के लिए दी जाय जिसमें उसकी हानि व हँसी हो। मु० उन्होंने उन्हें चिट्टा चढ़ा रक्खा है।

चिड़चिड़ा : सं० पु० गुस्सैल, क्रोधी, थोड़ी-सी बात पर चिढ़ने वाला। उ० चिड़चिड़ा है मट्की है। (परती० २३८)

चिड़ारा : सं० पु० नीची जमीन का खेत जिसमें जड़हन बोया जाता है।

चिढ़ाना : क्रि० स० किसी को कुढ़ाना, मजाक करना। (प्र० ग्र० ४६०)

चितरोख : सं० स्त्री० एक चिड़िया का नाम, चितरवा। उ० धौरी पंडुक कहि पिय ठाऊँ। जो चितरोखन दूसर नाऊ। (जायसी)

चिबोरी : सं० पु० मजाक। उ० बबुआ असन बातें चिबोरी में ही कर रहे थे। (अलग० वै० २१८)

चिपुआ : सं० पु० चेल्हवा मछली।

चिप्पी : सं० स्त्री० १. बजाने के लिए लकड़ी का एक वाद्य। २. साधुओं को दिया जाने वाला भोजन। ३. चिप्पा, कागज आदि चिपटाने की क्रिया। उ० स्वयं आकर चिप्पी लगाने लगता। (झूठा० २।२८)

चिमचू : सं० पु० दो हाथ ऊँचा पौधा,

जिसके पत्ते बैंगन जैसे, सफेद फूल वाला और बेर की गुठली जैसे फल वाला होता है। (ब्र० श०)

चिरचिटा : सं० पु० १. चिचड़ा, अपामार्ग। २. एक ऊँची घास जो बाजरे के पौधे के आकार की होती है जिसे चौपाये खाते हैं।

चिरमिटी : सं० स्त्री० गुंजा, घुँघुची।

चिरला : सं० पु० एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो महीनों तक बिना पत्तियों के रहती है। इसमें काले रंग के मीठे फल लगते हैं जिनका व्यवहार औषधि में होता है।

चिरैला : सं० पु० एक जाल जो बड़ी मछलियों के पकड़ने के काम आता है। (ब्र० श०)

चिलचिलाना : क्रि० अ० धूप का लगना, तेज धूप का आभास होना। उ० ढाई पहर की चिलचिलाती धूप में हलों से खुलते। (बाबा० ५३)

चिलड़ा : सं० पु० उलटा नामक पकवान।

चिलसी : सं० स्त्री० एक प्रकार की तमाखू जो कश्मीर में होती है।

चिलवाँस : सं० पु० एक प्रकार का फंदा जिससे चिड़ियाँ फसाई जाती हैं।

चिलौहो : सं० पु० एक औजार जिससे पेड़ की शाखाएँ काटी जाती हैं।

चिल्ला : सं० पु० १. जंगली पेड़ २. उर्द या मूँग या रींछे के मैदे की परोंठी या घी चुपड़कर सेकी हुई रोटी। चीला, उलटा। ३. धनुष की डोरी। ४. पगड़ी का छोर जिसमें कलावतू का काम रहता है।

चिल्लाना : क्रि० अ० आवाज करना, चीत्कार करना। उ० धाय बचाबहु कृष्ण आर्त सुरसों चिल्लाने— (प्रे० स० ६२)

चिहुँटनी : सं० स्त्री० गुंजा, घुंघुची, चिरमटी।

चीकट : सं० पु० मैल, कीचड़, गन्दगी। उ० जिसे वहाँ गर्द चीकट, चाय की कई बार इस्तेमाल की गई पत्ती और खौलते पानी आदि के सहारे बनाया जाता था। (राग दर० ६)

चीकर : सं० पु० कुएँ के ऊपर का बना हुआ वह स्थान जिसमें मोट या चरस आदि से निकाला हुआ पानी गिराया जाता है और जहाँ से पानी नालियों द्वारा होकर खेतों में जाता है।

चीखुर : सं० स्त्री० गिलहरी, कंटी।

चीड़ : सं० पु० १. एक प्रकार का देशी लोहा। २. जूते के लिए चमड़ा साफ करने की क्रिया (मोचियों की परिभाषा) ३. एक वृक्ष जिसकी लकड़ी बड़े काम की होती है।

चीथड़ा : सं० पु० फटा हुआ कपड़ा। उ० मनहुँ लाल चीथड़ा बीच सचमसल बनावै। (प्रे० स० ४६)

चीनी : सं० स्त्री० सफेद रंग का प्रसिद्ध मीठा पदार्थ जो गन्ने के रस से बनता है। खजूर, चुकंदर से भी चीनी बनाई जाती है।

चीप : सं० स्त्री० १. चार अंगुल की एक लकड़ी जो जूते के कलबूत में सबसे पीछे चढ़ाई जाती है। (चमारों की बोली) २. जमीन से निकली मिट्टी का वह अंश जो एक बार फावड़ा चलाने से खुदकर निकल आए। ३. लकड़ी से निकली खप्पच।

चीरी : सं० स्त्री० एक मछली। उ० देखते-देखते सारा बरामदा बाग्टी, मांडील, खारा, साँभर, चीरी, तामड़ी आदि कई प्रकार की मछलियों से भर गया। (सा० ल० म० ८)

चीलर : सं० पु० जूँ की तरह का पर

सफेद रंग का एक छोटा कीड़ा जो मैले कपड़ों में पड़ जाता है।

चील्ही : सं० स्त्री० एक प्रकार का तन्त्रोपचार जिसे वालकों के कल्याणार्थ स्त्रियाँ करती हैं। उ० मनै रघुराज मुख चूमति चरण चापि चील्ही करवाय राई लौन उतरायौ है। (रघुराज)

चुंगली : सं० स्त्री० नाक में पहनने का एक आभूषण जिसे 'समथा' भी कहते हैं। एक प्रकार की नथ।

चुआ : सं० पु० एक प्रकार का पहाड़ी गेहूँ।

चुकटना : क्रि० अ० चिपटना, सिकुड़ना, पतले होना। उ० खेती चौपट हुई तो लोगों के गाल चुकट जाएँगे। (वल० १३५)

चुकरी : सं० स्त्री० रेंवद चीनी।

चुकरेंड : सं० पु० दो मुंहा साँप जिसे गूँगी भी कहते हैं। उ० लेखनि डंक भुजंग की रसना अपननि जानि गज रद मुख चुकरैंड के कक्षा शिखा वखानि। (केशव)

चुकिया : सं० स्त्री० तेलियों की घानी में पानी देने का वर्तन। कुल्हिया।

चुक्कड़ : सं० पु० कुल्हड़, पोरवा, मिट्टी का वना वर्तन, सकोरा। उ० मिट्टी के चुक्कड़ों की तरह दिल भी यहीं टूटते हैं। (मैला० १६९)

चुगलस : सं० स्त्री० एक तरह की लकड़ी।

चुगला : सं० पु० १. एक वार का दिया हुआ भाग जैसे चुगला देना। २.टेसू, पुतला, मिट्टी का वनाया हुआ पुतला। उ० हाँ, मेरा चुगला ऐसा-वैसा नहीं है। दुमुँहा चुगला है। (परती० २५०)

चुग्घी : सं० स्त्री० चखने की थोड़ी-सी वस्तु। चाट, चसका।

चुचका : वि० पिचका। उ० चुचके गाल और निचुड़े कपड़े की तरह जर्जरि कलेवर। (भ० नि० ३८)

चुटक : सं० पु० एक प्रकार का गलीच या कालीन।

चुटकी : सं० पु० १. मजाक। उ० कान्ह कं चुटकी (भा० २।५७) २. हाथ की चार उँगलियाँ और अँगूठे को मिलाकर वन हुआ आकार। इस मुद्रा से भिखारिय को आटा आदि देते हैं। ३. नोंचने य खोंसने की प्रक्रिया।

चुड्डो : सं० स्त्री० एक गाली जो स्त्रिय को दी जाती है। छिनाल।

चुड़ाव : सं० पु० एक जंगली जाति।

चुड़ैलवाल : सं० स्त्री० वैश्यों की ए जाति।

चुड़ैल : सं० स्त्री० एक दुष्टात्मा। उ० इ चुड़ैल से पीछा छूटे (भा० २।६८)

चुनचुना : सं० पु० कसेरों का एक लो का औजार।

चुनचुना : वि० १. जिसके छूने या खा से चुनचुनाहट पैदा हो जिसके स्पर्श रे जलन लिए हुए पीड़ा हो। २. चिढ़ वाला, रोनेवाला, वात-वात पर ठिनक वाला।

चुनचुनाना : क्रि० अ० १. जीभ व चम पर तीक्ष्ण लगना। कुछ जलन लिए हु चुभन की-सी पीड़ा करना जैसे—रा का लेप वदन पर चुनचुनाता है। २ ठिनकना, रोना, चीं-चीं करना। लड़क के लिए।

चुनचुनाहट : सं० स्त्री० शरीर पर कु जलन लिए चुभने की-सी पीड़ा। झा या तीक्ष्णता जिसका अनुभव त्वचा क हो।

चुनिया : सं० स्त्री० सुनारों की वोली मे लड़की को कहते हैं।

चुन्नट : सं ०स्त्री ०मोड़कर बनाई हुई वस्तु, किसी वस्तु में हाथ से सिकोड़ कर बनाई हुई सिलवट। उ० पल्लों में चुन्नटें डाल-कर··· मरोड़ी हुई थी। (बाबा० २८)

चुन्नी : सं० स्त्री० लड़कियों के पहनने का एक ऊपरी वस्त्र, चुन्दरी। उ०और चुन्नी मोटे कपड़े की मिलती थी। (झूठा० १।२१)

चुप : सं० पु० पक्के लोहे की वह तलवार जिसमें टूटने से बचाने के लिए एक कच्चा लोहा लगा रहता है। चुप रहना, मौन रहना। उ० चुप ह्वै बैठो मौन। (भा० २।१३६)

चुपका : सं० पु० भूरी और सफेद पीठ का चूहे की जाति का जानवर। (ब्र० श०)

चुपड़ी : सं० स्त्री० तेल या घी से सिक्त वस्तु, जैसे चुपड़ी रोटी।

चुपरी आलू : सं० पु० पिंडालू या रतालू जो मद्रास और मध्य भारत में अधिकता से होता है।

चुर : सं०पु० १. बाघ आदि के रहने का स्थान। माँद। २. चार-पाँच आदमियों के बैठने का स्थान। बैठक। उ० घाट बाट, चौपार चुर देवल हाट मसान। (भगवत रसिक)

चुरस : सं० स्त्री० कपड़े आदि की शिकन, सिलवट, सिकुड़न।

चुलबुलाहट : सं० स्त्री० चंचलता, चप-लता, शोखी।

चुलाव : सं० पु० वह पुलाव जिसमें मांस न पड़ा हो।

चुलिया : वि० चालाक–उ० गहि चंचल अंचल चुलिया। (भा० २।१९४)

चुलियाला : सं० पु० एक मात्रिक छन्द का नाम जिसमें १३ और १६ के विश्राम से २९ मात्राएँ होती है। उ० मेरी विनती मानि के हरि जू देखौ नेक दया करि। नाहीं तुम्हरी जात है दुख हरिबे की टेक सदा कर।

चुल्लू : सं० स्त्री० १. ओख। २. हाथों की उँगलियों से बनाया गया कटोरीनुमा आकार। मुहा० चुल्लू भर पानी में डूबना–लज्जा व घृणा से भर जाना।

चुवा : सं० पु० भजना, भेजा, हड्डी की नली के भीतर का मांस।

चुहँटी : सं० स्त्री० चुटकी—उ० चुहुँटी चिबुक चाँपि चूमि। लोल लोयन को रस में बिरस कह्यौ बचन मलीनो है।

चुहचुहिया : सं० स्त्री० एक चिड़िया जो ऊषाकाल में चूह-चूह करके बोलती है। (बाबा० १०६)

चुहटना : क्रि० स० रौंदना, कुचलना। उ० फिरि फेरि अहुटत चलत चुहटत दुहू पहरत आइ। (सूदन)

चुहड़ा : सं०पु०भंगी, अलालखोर, चाण्डाल (स्त्री० चुहड़ी)।

चुहल : सं० स्त्री० मजाक, आनन्द प्रसन्न, हँसी। उ० चेहरे से चुहल की मुस्कान उड़ गई। (झूठा० १।२६१)

चुहाड़ : वि० दुष्ट उ० चोर चुहाड़ धोखे-बाज, घूसखोर वगैरह की दुर्दशा। (भ०नि० २।८०)

चुहिली : सं० स्त्री० चिकनी सुपारी।

चुहुटनी : सं० स्त्री० गुंजा, घुंघुची। उ० हँसि उतार हिय तें दई तुम जु तिहि दिना लौल। (बिहारी)

चूअरी : सं० स्त्री० जरदालू, खूबानी।

चूड़ : सं० पु० स्त्रियों के पहनने का एक प्रकार का महीन ऊनी कपड़ा जो पहाड़ी प्रदेशों में बनता है।

चूँड़ी : सं० स्त्री० एक दवा विशेष, जो गले में लगाई जाती है। उ० हम चूँड़ी

लगवाते परेशान हो जाते हैं।

(झूठा० १।११७)

चूड़ी : सं० स्त्री० हाथ में पहना जाने वाला सीसे आदि का वलय, वँगड़ी—पहले वालों में चूड़ामणि पहना जाता था। चूड़ा से चूड़ी जो अव हाथों में पहना जाता है।

चूतड़ : सं० पु० नितम्व, गाँड़, वह स्थान जिसके सहारे वैठा जाता है। उ० वड़े इतमीनान से एक चूतड़ उठाकर पादने लगे। (आधा० ३४५)

चून : सं० पु० एक प्रकार का वड़ा थूहड़। इसके दूध में सुगन्धि होती है परन्तु यह आँख के लिए काफी हानिकारक है। वासी दूध लगने से शरीर में छाले पड़ जाते हैं। चूल।

चूरमूर : सं० पु० वे खूँटियाँ जो जौ या गेहूँ के कट जाने पर खेत में रह जाती हैं।

चूरा : सं० पु० पनिहारी का ऊपरी भाग जो कुड़ के नीचे वाले छेद में ठुका रहता है इसी को पाया भी कहते हैं (हलवाह)

(ब्र० श०)

चूल : सं० स्त्री० किसी लकड़ी का वह पतला सिरा जो किसी दूसरी लकड़ी के छेद में उसके साथ जोड़ने के लिए ठोका जाय। मुहा० चूलें ढीली होना—अधिक श्रम से थकावट होना।

चेंगी : सं० स्त्री० चमड़े की चकती या सन या सुतली का घेरा जिसे पैंजनी या पहिये के वीच में इसलिए पहना देते हैं जिसमें दोनों एक दूसरे से रगड़ न खायें।

चेंचुला : सं० पु० एक प्रकार का पकवान। इसके वनाने में पहले गुँधे हुए आटे या मैदे को पूरी की तरह पतला वेलकर और चौखटा वनाकर कुछ दवा देते हैं और तुंव घी आदि में तल लेते हैं।

चेंटियारी : सं० स्त्री० अवलक रंग का एक प्रकार का वहुत वड़ा जल पक्षी जिसके पैर प्रायः हाथ भर लम्वे और चोंच एक वालिश्त की होती है। इसके सिर पर वाल या पर नहीं होते। इसके स्वादिष्ट मांस के लिए शिकार किया जाता है।

चेंफ : सं० पु० ऊख का छिलका।

चेंव : सं० पु० आम आदि के डंठल से निकला हुआ पहला तरल पदार्थ जिसके लगने से मुँह पर व्रण भी हो जाता है और गले में आकर वहुत कष्ट देता है।

चेतुरा : सं० पु० एक प्रकार की चिड़िया जो संसार के सव भागों में पाई जाती है। इसके नर और मादा के रंग में भेद होता है। यह पेड़ों पर कटोरे के आकार का नीड़ वनाती है।

चेनगा : सं० स्त्री० एक प्रकार की छोटी मछली जो उत्तर तथा पश्चिम भारत की नदियों और वड़े-वड़े तालावों विशेषतः ऐसी नदियों और तालावों में जिनमें घास अधिक हो पाई जाती है। यह एक वालिश्त लंवी होती है और इसका सिर गिरई से कुछ वड़ा होता है। चेंगा, चेंनया।

चेपांग : सं० पु० नेपाल में रहने वाली एक पहाड़ी जाति।

चेवुला : सं० पु० एक पेड़ जिसकी छाल चमड़ा सिझाने और रंगों के काम आती है।

चेरना : सं० पु० एक प्रकार की छैनी जिससे नक्काशी करने वाले सीधी लकीर करते हैं।

चेरा : सं० पु० मोटे ऊन का निर्मित गलीचा।

चेरुआ : सं० पु० एक खाद्य पदार्थ जो

सतुआ सानकर पिठोरा की तरह बनाकर अदहन में पकाने से तैयार होता है।

चेरुई : सं० स्त्री० घड़े के आकार का पर उससे कुछ बड़ा एक प्रकार का मिट्टी का बरतन।

चेरू : सं० स्त्री० एक प्रकार की जंगली जाति जिसकी बहुत-सी रस्में आदि क्षत्रियों से मिलती-जुलती होती हैं। विहार के अनेक स्थानों में इस जाति के लोगों की बनवाई बहुत-सी इमारतें हैं। आजकल इस जाति के लोग मिरजापुर जिले तथा दक्षिण में पाए जाते हैं। उ० गुरु हमार तुमह राजा हम चेला औ नाथ (जा० १४७।४)

चेला : सं० पु० १. शिष्य (चेल्लय दे० ना०)। २. एक प्रकार का सर्प जो बंगाल में पाया जाता है। ३. एक प्रकार की छोटी मछली।

चेवारी : सं० स्त्री० एक प्रकार का बाँस जो दक्षिण और पश्चिम भारत में होता है। इसकी चटाइयाँ और टोकरियाँ बनाई जाती हैं।

चेचड़ा : सं० पु० इस पर मोटी और लम्बी फली आती है। ग्रामीण इसकी फलियों के आगे दीपक दिखाते हैं जिससे वे बढ़ें। इसकी तरकारी भी बनती है।

चेती : सं० पु० वह पक्षी जिसका सिर और गर्दन कत्थई रंग की होती है। यह जाड़ों में दिखाई पड़ता है। इसकी तरह टिकरी तिदारी, नकटा आदि चिड़ियाँ होती हैं। (ब्र० श०)

चेपला : सं० पु० एक प्रकार का पक्षी। उ० कहत पीपलौ पीपली नितहि चेपला आइ। मीत खून यह अर्थ कौ समझ लेहु चित लाइ। (रसनिधि)

चैयाँ : सं०स्त्री० बाँह। उ० चैयाँ चैयाँ गही चैयाँ वैयाँ वैयाँ ऐसे बोल्यौ—(सूर)

चैली : सं० स्त्री० १. कान का मैल। उ० कान की चैली उड़ा देते हैं (प्र० ग्र० ३४७) २. लकड़ी या ऐसी ही किसी वस्तु का टुकड़ा। उ० आम की आधी जली चैली से पीठ दाग दी। (वल० ३६)

चोंक : सं० स्त्री० वह चिह्न जो चुंबन में दाँत लग जाने के कारण गाल पर पड़ जाता है। उ० चहचही चुभके चुभी है चोंक चुंबन की लहलही,लांमी लटें लटकी सुलंक पर। (पद्माकर)

चोंगा : सं० पु० १. बाँस की खोखली नली या पोर जिसका एक सिरा गाँठ के कारण बंद हो और दूसरा खुला हो। सुनार आदि इसमें अपने औजार रखते हैं। २. इस आकार का या कुछ चौड़ा कागज आदि का बना लिफाफा जो कोई चीज रखने के लिए बनाया जाय।

चोंप : सं० पु० आम की टोपी उतारने पर बहने वाला रस। चेंप। उ० चंदन चोंप पवन अस पीउ। (जा० ३२३।७)

चोई : सं० स्त्री० दाल का वह छिलका जो उसको भिगोकर मलकर अलग किया जाता है अथवा जो दाल चुरते समय स्वयं दाने से अलग होकर उतर जाता है।

चोखा : वि० स्वादिष्ट, अच्छा उ०अनोखे चोखे सर हिय (भा०२।३५)

चोखा : सं० पु० १. चावल (गुजराती), २. आलू या बैगन का भुर्ता। चोखा (भोजपुरी)

चोचला : सं० पु०दिखावा या फैशन। उ० अमीरी चोचलों में इतना सबर और धीरज कहाँ (सौ अजान० ५७)

चोटी-पोटी : वि० स्त्री० १. चिकनी-चुपड़ी (बात), खुशामद से भरी बात। २. झूठी या बनावटी (बात) इधर-उधर की बात।

उ० तुम जानति राधा है छोटी। छतुराई अंग-अंग भरी है पूरन ज्ञान न बुद्धि की मोटी। हमसों सदा दुरावति सो यह बात कहत मुख चोटी पोटी। (सूर)

चोढ़: सं० पु० उत्साह, उमंग। उ० गूंज गरे सिर मोर पखा मतिराम हो गाय चरावत चोढ़े। (मतिराम)

चोढ़ा: सं० पु० वह कटान जिसमें ज्वार और बाजरे की बाढ़ एक बार दरातों से काट ली जाती है। (दिनमान)

चोथ: सं० पु० गोबर का ढेर, गाय या भैंस का एक बार का किया हुआ गोबर। उ० धूल-धक्कड़ में उनका पाँव गोबर के एक चोथ पर पड़ गया। (राग दर० ४०६)

चोप: सं० पु० चाह, इच्छा, उत्साह। उ० मत्त गज गन निरखि सिंघ किसोरहि चोप (भा० १।२६७) आम या अन्य फलों के तोड़ने पर ढेपीं के पास से निकलने वाला लसदार पदार्थ।

चोरीला: सं० पु० एक प्रकार का बढ़िया चारा जिसके दाने कभी-कभी गरीब लोग अनाज की तरह खाते हैं। पशुओं को यह चारा बीज पड़ने से पहले खिलाया जाता है।

चोवा: सं० पु० अरगजा लेपन, गन्ध, सुगन्ध। उ० का मूलह एहि चंदन चोवा। (जायसी)

चोसा: सं० पु० लकड़ी रेतने की एक प्रकार की रेती जो प्राय: एक हाथ लम्बी और दो अंगुल चौड़ी होती है।

चौंकड़ा: सं० पु० करील का पौधा।

चौंह: सं० पु० गलफड़ा।

चौंही: सं०स्त्री० हल की एक लकड़ी जिसे परिहारी भी कहते हैं।

चौक गोभी: सं० स्त्री० एक प्रकार की गोभी।

चौचक: वि० अच्छी तरह, अच्छा। उ० मिसिर चबूतरे पर चौचक खड़े हो गये थे। (अलग० वै० १२२)

चौड़चपट्ट: सं० पु० खुला मैदान, बेशर्म, निर्लज्ज, नग्न होने का भाव। उ० व्याह कर आयी और चौड़चपट्ट खोल कर बैठ गयी। (झूठा० १।६५)

चौताली: सं० स्त्री० कपास की ढेढी या डोडा जिसमें से रुई निकलती है।

चौरी: सं० स्त्री० १. एक पेड़ जिसकी लकड़ी चिकनी और मजबूत होती है और मेज, कुर्सी, अलमारी, तस्वीर के चौखटे बनाने के काम आती है। २. एक पेड़ जिसकी छाल से रंग बनता है, तथा चमड़ा सिझाया जाता है। ३. चुटिया, वेणी। उ० रत्ना झूले पर पैर लटकाये बालों की चौरी हिलाती रही। (सा०ल० म० ७)

चौला: सं० पु० लोबिया, बोड़ा। (स्त्री० चोली)।

चौस: सं० पु० बुकनी, चूर, चूर्ण।

चौहें: क्रि० वि० चारों ओर, चारों तरफ। उ० राम कहे चकित चुरैले चहु अल्ले त्यों सबी सकरि मल्ले चौंहें चकित मसान को। (रामकवि)

छंगन मंगन: सं० पु० एक खेल। उ० छंगन-मंगन अँगना खेलत चारु चार्‌यौ भाई। (गी० १।२७)

छकी: क्रि० स० तृप्त। उ० प्रेमस आसव छकी हों रोम। (भा० २।१६८)

छछिया: सं० पु० मट्‌ठा, छाछ। उ० जियावे कैसे छछिया फीकी। (भा०२।६१३)

छछूंदर: सं० पु० चूहे की जाति का जीव। ऐसा कहा जाता है जब सर्प इसे चूहे के भ्रम में पकड़ लेता है तो यदि वह मुंह से

छोड़ देता है तो अंधा हो जाता है यदि खा लेता है तो मर जाता है। उ० छछूंदर के सिर में चमेली का तेल।
(क० पु० ४६०)

छपका : सं० स्त्री० एक पक्षी जो आकार में कबूतर से छोटा, मटियाले बादामी रंग का होता है जिसकी पूंछ लम्बी और चोंच सफेद होती है (ब्र० श०)। पानी उछालने की क्रिया। छपका खेलना।

छपड़ी : सं० स्त्री० एक प्रकार व भुजंगा पक्षी।

छपही : सं० स्त्री० सोने व चाँदी का एक गहना जिसे स्त्रियाँ हाथ की उँगलियों में पहनती हैं।

छप्पर : सं० पु० छत का आवरण जो सिरकियों एवं फूस का बना हुआ होता है।

छबड़ा : सं० पु० (स्त्री० अल्प छबड़ी) १. टोकरा, डला, झावा, छितना। २. खाँचा।

छबरा : सं० पु० पला, डला। छव्वय> छावर>छबर। इसमें गोबर,कंडा रखते हैं।

छबिया : सं० पु० फरसा, कुल्हाड़ीनुमा उपकरण,एक घातक अस्त्र। उ० वीरसिंह सबसे पहले छबियें लेकर गली में पहुँच गये थे। (भूठा० १।१४७)

छब्बी : सं० स्त्री० पैसा (दलाल)

छमकछड़ी : सं० स्त्री० पतली नवोढ़ा, सुन्दर आकृति वाली, छमकछल्लो, चमकदार औरत। उ० वह शांति पति का ठीक प्रतिरूप छमकछड़ी, पतली और बिजली सी चपल थी। (भूठा० २।३८८)

छरई : सं० स्त्री० एक तरह का ठप्पा।

छरी : सं० स्त्री० छड़ी, संटी। उ० फूलछरी कर लीन्हे। (भा० २।४५२)

छलक : क्रि० स० छलकना <छलक्क उ० छुरी छलकि छलाबाँसी (भा० २।१६२)

छल्ला : सं० पु० अँगूठी, छला, उँगलियों में पहना जाने वाला आभूषण। उ० झंगटिया वो एक-एक छल्ला उतार कर रख गई। (आधा० १५१)

छवा : सं० पु० एड़ी। उ० छवान की छुई न जाति शुभ साधु माधुरी। (केशव)

छही : सं० स्त्री० वह चिड़िया (प्राय: कबूतर) जो अपने अड्डे से उड़कर दूसरे के अड्डे पर जाकर रहे और फिर कुछ दिनों में वहाँ की कुछ चिड़ियों को बहला कर अपने अड्डे पर ले आवे। कुट्टा। मुल्ला।

छाँड़ : क्रि० स० छोड़ना <छड्ड उ० सो सत छाँड़ि जो धरम बिनासा।
(जा० ९२।७)

छाई : सं० स्त्री० १. राख। २. खाद।

छाक : सं० पु० कलेवा, जलपान। उ० बलदाउ देखियत दूरि ते आवति छाक पठाई मेरी मैया (कृ० गी० १९)

छागर : सं० पु० बकरा, अजा, <छगल> छागल> छागर। उ० काली माई को छागर की जोड़ी। (बल० १३५)

छाल : सं० स्त्री० पेड़ की त्वचा या पशु आदि की ऊपरी खाल। (ब्र० श०)

छिउँका : सं० पु० जो साधारण चींटे से छोटा पतला तथा भूरा होता है और बड़े जोर से काटता है। यह प्राय: पेड़ों पर होता है।

छिगा : सं० पु० छोटी-छोटी मछली पकड़ने का एक जाल। (ब्र० श०)

छिछला : वि० जहाँ कम पानी हो। उ० छिछले छीलर सब जग माहीं।
(भा० २।६१४)

छिछली : सं० स्त्री० १. जहाँ अधिक पानी न हो। २. वह क्रिया जो पानी में पत्थर डालकर की जाती है। उ० उसने

पानी में छिछली फेंकी। (आधा० २३९)

छिछोरा : सं० पु० नीच, बदमाश, दुष्ट, छैला। उ० तारा को लगा आदमी छिछोरा नहीं है। (भूठा० १।७८)

छिड़कना : क्रि० स० किसी तरल पदार्थ को बिखेरना, फैलाना, डालना। उ० नौकर हर आध घण्टे बाद पानी छिड़क देता था। (टे० मे० रा० १)

छितरना : क्रि० अ० बिखरना, फैलना। उ० पैर लम्बे-लम्बे होकर छितरे पड़े थे। (वावा० ८)

छिनाल : सं० स्त्री० वेश्या, परपुरुषगामी <छिण्णाल। उ० हरामजादा मुझे छिनाल कहता था। (क० पु० ५१)

छिपकली : सं० स्त्री० एक जीव जो प्राय: घरों में दिखाई पड़ता है। पंजाबी कोड किल्ली। उ० छिपकलियाँ आ गई थीं, गिलहरियाँ तो खैर—(वावा० ७५)

छिपाठी : सं० पु० छोर या किनारे वाला हिस्सा। उ० बाँस की छिपाठी पर लाल झंडा फहरा रहा है। (वल० १७२)

छींक : सं० स्त्री० छिक्का, नाक तथा मुँह से निकलने वाला वायु वेग।

छींट : सं० स्त्री० पानी का उड़ा हुआ बिंदु <छिंट। उ०हसत हँसावत छींट उड़ावत (भा० २।४५७)

छीउल : सं० पु० पलाश, ढाक।

छीता : सं० पु० वहू के मायके या ससुराल जाने की सायत।

छीपा : सं० पु० मुँह में टपका कर कुछ पीने की क्रिया। उ० लीन्हे दूध पिआइउ छीपा (जा० ५८७।७)

छीपी : सं० पु० वह लंबी छड़ी जिससे लोग कबूतर उड़ाते हैं।

छीवर : सं० स्त्री० मोटी छींट, कपड़ा, जिस पर वेलबूटे छपे हों। उ० हा-हा हमारी सौं साँची कहौ वह को हुती छोहरी छीवर वारी।

छीलर : सं० पु० रिक्त स्थान, खाली जगह। उ० छिछले छीलर सब जग माहीं। (भा०२।६१४)

छुईमुई : सं० स्त्री० लाजवंती, एक क्षुप जो थोड़े स्पर्श से ही मुरझा जाती है।

छुट्टी : सं० स्त्री० अवकाश, छुटकारा। उ० कोउ को उपासना कोई के झगड़ों से छुट्टी नहीं (प्र० ग्र० १२८)

छुहारी : सं० स्त्री० (पु० छुहारा) छोटी और निकृष्ट जाति का छुहारा।

छुहा : वि० क्रि० रंगा हुआ, नाना रंगों से चित्रित। उ०छुहे पुरर घट सहज सुहाए। (भा० १।३४४।३)

छेरी : सं० स्त्री० बकरी, अजा, छागल। (व्र० श०)

छेवर : सं० पु० एक घास जो चारे के काम आती है। घंटील।

छेड़ा : सं० पु० रस्सी, किनारा (लश०), जैसे बारीक छेड़ा।

छैल : सं० पु० रसिया (छइल्ल दे० ना०) रसिया छैल छिकनियाँ (भा० २।१९३) छइल्ल (कीर्ति०)।

छैल चिकनिया : सं० पु० शौकीन, बना-ठना आदमी।

छैल तबीला : सं० पु० १. सजावजा और युवा पुरुष, रंगीला पुरुष, बाँका। २. छबीला नामक पौधा।

छौंक : सं० पु० दाल आदि का बघार, तड़का, बड़ी बात। उ० चले हैं पंडितहि छौंकने (प्र० ग्र० ४५५)

छोई : सं० स्त्री० गन्ने आदि की खाई या रसनिसृत अंश, खोई। उ० गाँड़े की सी छोई कर डालै रहन न देत मिठाई। (कबीर)

छोकरा : सं० पु० बालक, लड़का (स्त्री० छोकरी) छोरा, छोरी।

छोकड़ापन : सं० पु० १. लड़कपन, २. छिछोरापन, ३. नादानी।

छोटा : वि० छोटा, कनिष्ठ <छोट्टय दे० ना०। उ० मेरी छोटी सी लाला—
(भा०२।४६७)

छोरा : सं० पु० १. एक नाव को दूसरी नाव के साथ बांधकर ले जाने का कार्य। २. लड़का, छोरा।

छोल : सं० स्त्री० १. कटाई, छीलने की क्रिया। उ० यहा आई करे जहि छोलो (भा०२।१५६)। २. कार्य करने का स्थान। उ० सेवा-समिति की छोलदारी में गया। (झूठा० १।४३१)

छोंड़ी : सं० स्त्री० दही मथने की मथानी।

जंगेला : सं० पु० एक वृक्ष जिसे 'रूही' कहते है।

जंघारा : सं० पु० राजपूतों की एक जाति जो झगड़ालू मानी जाती है।

जंड : सं० पु० एक जंगली पेड़ जिसकी फलियों का अचार भी बनाया जाता है। साँगर।

जंगरा : सं० पु० उर्द मूँगादि के वे डंठल जो दाना निकालने के बाद शेष रह जाते है।

जक्की : सं० स्त्री० बुलबुल की एक जाति। यह आकार में बुलबुल-सी छोटी होती है। गरमी में यह हिमालय पर चली जाती हैं।

जगी : सं० स्त्री० मोर की जाति का एक पक्षी जो शिमले के आस-पास के पहाड़ों में मिलता है। यह प्रायः दो हाथ लंबा होता है। नर के सिर पर लाल कलंगी और मादा के सिर पर गुलाबी रंग की गाँठें होती है। इसकी आवाज बकरी के बच्चे की तरह होती है। जवाहिर।

जट : सं० पु० एक प्रकार का गोदना जो झाड़ी के आकार का होता है।

जटना : क्रि० स० ठगना, जैसे तुमने मुझसे १० रुपये जट लिए है।

जटाव : सं० स्त्री० काली मिट्टी जिससे कुम्हार बड़े आदि बनाते है। कुम्हरौटी।

जड़ैया : सं० स्त्री० जाड़े या मलेरिया से होने वाला बुखार। वह ज्वर जो जाड़ा देकर आता हो। उ० मेरी को जड़ैया ने धर दवाया। (मैला० १३)

जनगी : सं० स्त्री० मछली।

जनथोरी : सं० स्त्री० कुकुड़ वेल, वेंदाल।

जनेरा : सं० पु० १. एक बाजरा जिसके पौधे बड़े होते हैं और बालें भी लगती हैं। २. दो हाथ ऊँचा पौधा जिसके फूल सफेद, गुलाबी, पीले और लाल होते हैं।
(ब्र० श०)

जबदी : सं० स्त्री० एक प्रकार का धान जो रूहेलखंड में होता है। बन्द। जकड़ी हुई। जबदी मनोवृत्ति।

जमरूद : सं० पु० एक छोटा लंबोतरा फल।

जमुकना : क्रि० अ० पास-पास होना, सटना। उ० जब जमक्यो कछु पृथु तनय तब तरंग तहं छोड़ी। भयो पुरंदर अलख उर सक्यो न सन्मुख दौड़ि॥
(रघुराज)

जर : सं० पु० एक तरह का समुद्री सेवार, कचरा। (लश०)

जरकटी : सं० पु० एक शिकारी पक्षी। उ० जुर्रा बाज वाँसे कुही बहरी लगर लोने टोने जरकटी त्यो शचान सान पार है—(रघुराज)

जरज : सं० पु० एक कंद जिसकी तरकारी बनाई जाती है। यह दो प्रकार का होता

है। एक की जड़ गाजर व मूली की तरह और दूसरे की जड़ शलजम की तरह होती है।

जरल : सं० स्त्री० एक बारहमासी घास जो मध्य प्रदेश और बुंदेलखण्ड में बहुत होती है। सेवाती।

जरस : सं० पु० एक प्रकार की समुद्र की धारा। (लश०)

जरोल : सं० पु० एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इमारत, जहाज और तोपों के पहिये बनाने के काम आती है।

जलपाई : सं० स्त्री० रुद्राक्ष की जाति का एक पेड़। इसका फल जंगली जैतून कहाता है। इसके कच्चे फलों की तरकारी और अचार बनता है।

जवाह : सं० पु० १. आँख का एक रोग जिसमें पलक के भीतर की ओर किनारे पर बाल जम जाते हैं। प्रवाल, परवल। २. बैलों की आँख का रोग जिसमें उसकी आँख के नीचे मांस बढ़ जाता है।

जसूंद : सं० पु० एक वृक्ष जिसके रेशे से रस्से आदि बनते हैं।

जहदा : सं० पु० दलदल, बहुत कीचड़। उ० जग जहदा में रचिया झूठे कुल की लाज। तन छीजै कुल बिनसि है रटै न नाम जहाज। (कबीर)

जाँग : सं० पु० घोड़ों की एक जाति। उ० जरदा जिरही जाँग सुनौची ऊदे खंजन। कर रकबा है कवल गिलगिली गुलगुल रंजन। (सूदन)

जाँगड़ा : सं० पु० राजाओं का यश गाने वाला। भाट, बंदी। जाँगरा। उ० करें जाँगरे आलाप बिरद कलाप भूप प्रताप। अतिशय मिजाजी चढ़े बाजी करत अरि उर ताप। (रघुराज)

जाँगर : सं० पु० १. खाली डंठल जिसमें से अन्न झाड़ लिया गया हो। उ० तुलसी त्रिलोक की समृद्धि सौज संपदा अकेली चाकि राखी रासि जाँगर जहान मो। (तुलसी)। २. बल, शक्ति (अवधी)

जाँगी : सं० पु० नगाड़ा। (डिंगल)

जाँघा : सं० पु० १. हल (पूरब), २. कुएँ के ऊपर गड़ारी रखने का खंभा। ३. लकड़ी व लोहे का वह धुरा जिसमें गड़ारी पहनाई हुई होती है।

जाँघिल : सं० पु० १. खाकी रंग की एक चिड़िया जिसकी गरदन लम्बी होती है। इसका मांस स्वादिष्ट होता है। २. एक बालिश्त लम्बी छोटी चिड़िया जिसकी छाती और पीठ सफेद, पर काले, चोंच और सिर पीला, पैर खाकी और दुम गुलाबी रंग की होती है।

जाँट : सं० पु० एक प्रकार का पेड़ जिसे 'रिया' भी कहते हैं।

जाँद : सं० पु० एक पेड़ का नाम।

जाएल : सं० पु० दो बार जोता हुआ खेत।

जाखन : सं० स्त्री० पहिये के आकार का गोल चक्कर जो कुओं की नींव में दिया जाता है। जमवट, नेवार।

जाग : सं० पु० वह कबूतर जो बिल्कुल काले रंग का हो।

जगरू : सं० पु० १. भूसा आदि मिला हुआ वह खराब अन्न जो दंवाई के बाद अच्छा अन्न निकाल लेने पर बच जाता है। २. भूसा।

जाजरी : सं० पु० बहेलिया, चिड़ीमार।

जाट : सं० पु० १. एक प्रसिद्ध जाति जो पंजाब-दिल्ली-मेरठ आदि में मिलती है। इसमें विधवा विवाह और सगाई प्रथा प्रचलित है। ये शरीर के पुष्ट परन्तु

वृद्धि के कुंद माने जाते हैं। कहा०जाट रे जाट तेरे सिर पर खाट। २. एक प्रकार का रंगीन व चलता गाना। जाठ।

जावर : सं० पु० घीए के महीन टुकड़ों के साथ पका हुआ चावल।

जामगी : सं० पु० बन्दूक व तोप का पलीता। जामगिरी। उ० जोत जामगिन में जगी लागे नपत दिखान। रन असमान समानभो रन समान असमान॥ (लाल)

जाय : सं० स्त्री० चने और उरद की भूनकर पकाई दाल।

जारी : सं० पु० झरबेरी का पौधा।

जाली : सं० स्त्री० एक प्रकार का फंदा जो किसी वस्तु का बना हुआ हो। (पु० जाला)।

जालीदार : वि० जिसमें जाली बनी या पड़ी हो। जलिगा ओख खंडिया—कीर्तिलता।

जासू : सं० पु० वे पान जो उस अफीम में मिलाने के लिए काटे जाते हैं जिससे मदक बनता है।

जिगुरन : सं० पु० एक प्रकार का चोटीदार चकोर जो हिमालय में गढ़वाल से हजारा तक मिलता है। जघी, सिगमोनाल, जेवर।

जियारी : सं० स्त्री० १. जीवन, जिंदगी। उ० उनको लै मान कियो याही में अमान भयो, दयो जो पै जाइ तौही तौ जियारी है। (प्रिया०) २. जीविका—उ० लकरीन बीनि करि जीविका नवीन करें धरै हरि रूप हिये, ताही सौ जियारी यै। (प्रिया०) ३. जीवट जियरा, हृदय की दृढ़ता, साहस।

जिल्ली : सं० पु० एक प्रकार का बाँस जो असम में होता है इसका प्रयोग घर की छाजन के लिए किया जाता है।

जिलहोर : सं० पु० एक प्रकार का धान जो अगहन में काटा जाता है। इसे जलहोर भी कहते हैं। (अगहनी धान)।

जीजी : सं० स्त्री० बहन (पु० जीजा-बहन का पति)। उ० कीजै कहा जीजी जू सुमित्र पर पाँय कहे। (क० २१४)

जीलि : सं०स्त्री०एक लता का नाम। इसके रेशे रस्सी बनाने के काम आते है। इसके रेशे को टोगुस कहते है।

जुंदर : सं० पु० बंदर का बच्चा (कलंदर)

जुथौली : सं० स्त्री० एक छोटी चिड़िया जिसकी छाती और गरदन का कुछ अंश सफेद और बाकी भूरा होता है।

जुमना : सं० पु० खेत में खाद देने का एक ढंग जिसके अनुसार कटी हुई झाड़ियाँ और पेड़ पौधों को खेत में बिछाकर जला देते हैं और बची हुई राख को मिट्टी में मिला देते हैं।

जूँदन : सं० पु० (स्त्री० जूँदनी) बंदर (मदारी)

जू : अव्य० एक निरर्थक शब्द जो बैलों या भैंसों को खड़ा करने के लिए बोला जाता है।

जून : सं० पु० १. ऊँट का घुटना। २.समय, जैसे दोनों जून पकाया है।

जूना : सं० पु० १. एक पौधा जो बागों में शोभा के लिए लगाया जाता है। २. बर्तन माँजने के लिए घास, रस्सी या नारियल जटा से निर्मित वस्तु।

जेंगरा : सं० पु० १. लवारा—एक वर्ष से अधिक, दो या ढाई वर्ष का गाय का बच्चा (ब्र० श०)। २. उर्द मूँगादि का डंठल जो दाना निकालने के बाद रह जाता है।

जेंगरी : सं० स्त्री० गाय के गर्भ से उत्पन्न बच्चा। (ब्र० श०)

जेंवना : क्रि० स० खाना, भोजन करना।

भूतकाल खाया। उ० जो इच्छा मन कीन्ह सो जेंवा। (जा० ५७।७)

जेर : सं० स्त्री० आँवल, वह झिल्ली जिसमें गर्भगत बालक रहता है।

जेर : सं० पु० एक पेड़ जो सुन्दर वन में अधिकता से होता है। इसकी लकड़ी से मेज, कुर्सी और अलमारी आदि बनती हैं।

जेरी : सं० स्त्री० १. वह लाठी जो चरवाहे कंटीली झाड़ियाँ हटाने या दबाने के लिए सदा अपने पास रखते हैं। उ०—उतहि सखा कर जेरी लीन्हें गारी देहि सकुच तोरी की। (सूर०) २. खेती का एक औजार जो फरुई के आकार का काठ का होता है। इसका व्यवहार अन्न दावने के समय पुआल हटाने में होता है। ३. फलों का बना मिष्टान्न, जेली।

जेवर : सं० पु० एक प्रकार का महोख पक्षी। जबी, सिघमौनाल।

जोगिनियाँ : सं०स्त्री० १. लाल रंग की एक प्रकार की ज्वार। २. एक प्रकार का आम। ३. एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

जोड़ा संदेश : सं० पु० एक प्रकार की मिठाई जो छेने से बनती है।

जोती : सं० स्त्री० १. घोड़े की लगाम, रास। २. दीपक की बत्ती, ३. पतली रस्सी, ४. जोती जमीन।

जोरिल्ला : सं० पु० एक प्रकार का गंधबिलाव।

जोवारी : सं०स्त्री०१. एक प्रकार की मैना जिसका रंग चमकीला होता है। यह कई प्रकार की बोलियाँ बोल सकती है। इसके अंडे बिना चित्ती के और नीले रंग के होते हैं। २. जौड़री, ज्वार।

जोह : क्रि० स० देखना, (दृश का धात्वादेश जोह) उ० मूछि परे जावत जो जोहे (जा० १९०।७)

जोहड़ : सं० पु० कच्चा तालाब, जोहर।

जोहना : क्रि० स० देखना। उ० सब दिन रात मुँह जोहते रहते हैं। (भ०नि० ४) <अप०जोई—सा दिसि जोइ म रोइ।

जौंची : सं० स्त्री० गेहूँ व जौ की फसल का एक रोग जिससे बाल काली पड़ जाती है और दाने नहीं पड़ते।

जौलाय : वि० बारह (दलाल)

जौहड़ : सं० पु० तालाब, उ० कस्बे के बाहर जौहड़ में अत्यन्त दुर्गन्ध भरा पानी इकट्ठा हो रहा था। (गि० दी०२०७)

झंखाड़ : सं० पु० उस्ताद, नेता, कर्मठ, महान। बड़े-बड़े काँग्रेसी और सोशलिस्ट पार्टी के झंखाड़ लीडर लोग हैं। (परती० ३८०)

झंगरा : सं० पु० एक प्रकार का बाँस का जालीदार गोल झाँप जिसे बोरा भी कहते हैं।

झंगा : सं० पु० छोटे बच्चों के पहनने का ढीला कपड़ा। उ० नवनील कलेवर पीत झंगा झलकें पुलकें नृप गोद लिये। (क०१।२)

झंझट : सं० पु० परेशानी, बखेड़ा। उ० इस झंझट से क्या काम (प्र० ग्र०१४६)

झंझी : सं० स्त्री० १. फूटी कौड़ी, २. दलाली का धन, झज्झी (दलालों की बोली)।

झंझोड़ना : क्रि० स० हिलाना, झटके से गिराना, सचेत करना। उ० रत्ना ने वंशी को जोर से झंझोड़ा और पुकारा बाय। (सा० ल० म० ६)

झंप : सं० पु० घोड़ों के गले का एक आभूषण। उ० तैसे चंवर बनाए औ घाले गलझंप। (जायसी)

झँवकार : वि० कृष्ण वर्ण का। उ० गैड गयंद जरे भए कारे औवन मिरिग रोझ-झँवकारे। (जायसी)

झँवाई : वि० जली हुई, पुरानी। उ० झँवाई हुई कुबड़ी ईट ने उसे पूरी तरह दवाए रखा। (वावा० २२)

झक : वि० क्रि० १. परेशान होना। उ० इनका वक-वक झक-झक करना (प्र० ग्र० ६०७) सं० पु० झक—वात।

झकड़ी : सं० स्त्री० दोहनी, दूध दुहने का पात्र।

झकझकौआ : सं० पु० वृक्ष, झाड़दार पेड़। उ० अच्छे झकझकौवा पर कुल का भी पक्ष करना नहीं सीखे। (प्र० ग्र० १५५)

झकेर : सं० पु० वृक्ष विशेष। उ० झखेर और साँहुड़ के पेड़ों से भरे हुए जंगल— (मैला० १०७)

झकोला : सं० पु० १. धोखा, झटका, खटका। उ० सज्जन को फिर झकोला लगा। (वूंद० १७२) २. झूल की एक पेंग।

झक्की : सं० पु० जिद्दी, हठी।

झगर : सं० पु० एक प्रकार की चिड़िया। उ० तूती लाल कर करे सारस झगर तोते तीतर तुरमती वटेर गहियत है। —रघुनाथ।

झगरा : सं० पु० झगड़ा, कलह। उ० नित उठके झगरो होत (भा० २।१२६)

झगा : सं० पु० ढीला कुरता (वच्चों का) उ० झगा पगा अध पाग पिछौरी ढाढ़िन को पहिरायौ—(सूर०)

झगुला : सं० पु० करतेनुमा कपड़ा जिसे छोटे वच्चे पहनते है। (ब्र० ग०) पीत झिगुलिया तन सोहै। (सूर)

झटका : क्रि० वि० धक्का, चोट, जवरदस्ती लेने की एक क्रिया। उ० और उसने झटका दिया। (टे० मे० रा० ७३)

झाँगरी : सं० स्त्री० एक वाद्य, मृदंग। उ० लोग संवेल झाँगरी शहनाई और नफीरी लेकर इकट्ठे हो गए। (सा० ल० म० १५२)

झांकी : सं० स्त्री० १- सुसज्जित पालकी जिस पर मूर्ति आदि सजाते हैं, २. चुपके से देखने की क्रिया। उ० जव वीमार पड़ी तो झाँकी मारकर भी देखने के लिए नहीं आते थे। (मैला० १७६)

झाँई : सं० स्त्री० प्रतिविम्व, छाया, प्रभाव, रोव। उ० जमींदारी झाँई मत दीजिए। (परती० २३०)

झल्लाना : क्रि० अ० क्रोध करना, चिड़-चिड़ाना, तेजवात करना। उ० माणिक ने सुना तो झल्ला उठा। (सा० ल० म० १७६)

झनझना : सं० पु० एक कीड़ा जो तमाखू की नशों में छेदकर देता है इसे चनचना भी कहते हैं।

झनझोरा : सं० पु० एक प्रकार का पेड़

झनवाँ सं० पु० एक प्रकार का धान।

झपना : क्रि० अ० छिपना, दवना, झुकना <झम्प प्रा०। उ० आँखें झपते-झपते वन्द हो गईं। (टे० मे० रा० १)

झवझवी : सं० स्त्री० कान में पहनने का एक प्रकार का तिकोना पत्ता (गहना) झवा—गुच्छेदार वस्तु जो वाजूवन्द में लटकती है।

झवघरी : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास जो गेहूँ को हानि पहुँचाती है।

झवरा : सं० पु० वड़े-वड़े केशों वाला मनुष्य, वह कुत्ता या विल्ली जिसके शरीर पर वहुत वाल हों। उ० देखने में भोला-भाला, झवरा, कितना प्याराकुत्ता है। (परती० ८७)

झमाक : क्रि० वि० शीघ्रता वाचक शब्द, जल्दी, तड़ाक। उ० वह झमाक से गली के सन्नाटे के गहरे पानी में कूद पड़ी। (आधा० २३६)

झमेला : सं० पु० झगड़ा फिसाद, झंझट। उ० झंझट झमेलों में उलझे रहे। (प्रे० स०२।४८६)

झरहिल : सं० स्त्री० एक प्रकार की चिड़िया।

झरा : सं० पु० एक प्रकार का धान जो पानी भरे हुए खेतों में पैदा होता है।

झरोखा : सं० पु० मकान की गवाक्षनुमा खिड़की। उ०छज्जे छातन गौरव झरोखन (भा०२।७०५)

झर्रा : सं० पु० १. बया पक्षी, २. एक प्रकार की छोटी चिड़िया।

झर्राटा : सं० पु० शीघ्रतावाचक शब्द, जल्दी करने की क्रिया। उ० पानी तो बड़े झर्राटे से गिरा था। (राग दर०३४९)

झर्राहट : अनु० कपड़े आदि फाड़ने की आवाज। उ० कपड़ा फाड़ने की झर्राहट हुई। (झूठा० २।४१)

झरैया : सं० पु० बया नामक पक्षी।

झलकना : क्रि०अ० चमकना, <झलक्क—अलकै मुख पै झलकै (भा० २।४८)

झल्ला : सं० पु० १. खाँचा, बड़ा टोकरा, २. वर्षा, वृष्टि, ३. बौछार, ४. वे दाने जो पके हुए तमाखू के पत्तों पर पड़ जाते हैं।

झाँकना : क्रि० स० देखना, ओट से देखना जैसे—सब यहीं से झाँकते हैं।

झाँकर झाँखर : सं० पु०बबूल की काँटेदार सूखी शाखाएँ (ब्र० श०) झाँखर जहाँ सौ छाड़हु पंथा। (जा०१३७।६)

झाँका : सं० पु० १. जालीदार खाँच, २. झरँरौ। उ० सभा माँझ द्रुपदी राखी पति पानिपगुण है जाको। बसन ओट करि कोट बिसंभर परन न पायो झाँका।

झाँगला : वि० ढीला ढाला (कपड़ा) उ० पहिर झाँगले पटा पाग सिरे टेढ़ी बाँधे। घर में तेल न लोन प्रीत चेरी सों साधे। (गिरधर)

झाड़ा : सं० पु० टट्टी निबटान, पाखाना। उ० मैं झाड़ा फिर कर आता हूँ। (बल०८२)

झाँझ : सं० पु० झाँझ कांस्य निर्मित वाद्य उ० औ तेहि गोहन झाँझ मजीरा। (जा० ५२७।६)

झाँझन : सं० पु० खप्पच, बाँस की लकड़ी किसी लकड़ी का फटा हुआ हिस्सा, चैल। उ० बाँस के झाँझनों की पतली दीवारें एक कमरे को दूसरे कमरे— (बल० ८९)

झाँझरी : सं० स्त्री० १. झाँझ नामक बाजा, झाल। उ० बजै झाँझरी शंख नगारे गए प्रेत सब देव अगारे। -रघुराज २. झाँझन नामक पैर का गहना। उ० झाँझरिया झनकैगी खरी तरकैगी तनी तन कौ तन तोरे। (देव)

झाँट : सं० स्त्री० १. गुप्तेन्द्रिय के बाल २. झाँटा-झाँट। (बँगला)

झाँपड़ : सं० पु० थप्पड़, चाँटा चपेटा। उ० उसी लपेट में एक करारा झाँपड़ खाकर 'कोई बात नहीं' 'कोई बात नहीं' कहते हुए। (राग दर ३२५)

झाँपना : क्रि० स० ढाँकना। उ० नागन्ह झाँपि लीन्ह अरधानी। (जा० ६१।२)

झाँपी : सं० स्त्री० १. धोबिन चिड़िया। खंजन पक्षी, २. छिनाल, प्रश्चली।

झाँपौ : सं० पु० किसी भी वस्तु का

झाँपो : सं० पु० किसी भी वस्तु का ढक्कन या इसी प्रकार की ढाकने की वस्तु।

झाँय-झाँय : अनु० वृथा का शब्द, झगड़ा, तू-तड़ाक, तू-तू मैं-मैं। उ० दोनों में झाँय-झाँय हो गई। (बूँद० ४३३)

झाँवर : सं० स्त्री० वह नीची भूमि जिसमें वर्षा में जल भर जाता है और जिसमें मोटा अन्न जमता है। डावर।

झाँवर : सं० पु० पत्तियों या कपड़े के फुन्दनों से बना व्यजन, पंखा, बीजना। उ० फुस्सू मियाँ झाँवर कर रहे थे। (आधा० २४६)

झाँसी : सं० पु० १. झब्बा, गुच्छा। उ० सुंदर दसन चिबुक अति सुंदर-सुंदर हृदय विराजत दाम। सुंदर भुजा पीत-पट सुंदर-सुंदर कनक मेखला झाम॥ (सूर०) २. एक प्रकार की बड़ी कुदाल जिससे कुएँ की मिट्टी निकालते हैं। ३. घुड़की, डाँट, डपट। ४. धोखा, छल, कपट।

झाड़ : सं० पु० वृक्ष, पेड़।

झाड़ना : क्रि० स० साफ करना। उ० मकड़ी की तरह झाड़ डालेंगे। (प्र० ग्र० २३४)

झाड़बाजी : स० पु० डाँट। उ० न्यायी हाकिम के यहाँ झाड़बाजी। (प्र० ग्र० २२७)

झाड़ी : सं० स्त्री० फैली शाखाओं वाला पौधा।

झाड़ू : सं० स्त्री० साफ करने की वस्तु, बोहारी, सोनी। उ० पंखा खींचते और झाड़ू देते देख। (प्र० ग्र० २३५)

झाबा : सं० पु० एक प्रकार की बड़ी झाल जो अरहर की लकड़ियों से बनता है।

झाल : सं० पु० १. रट्ठे का बड़ा खाँचा। (ब्र० श०) २. झालने की क्रिया या भाव।

झालना : क्रि० स० १. धातु की बनी हुई वस्तुओं में टाँका देकर जोड़ लगाना। २. पीने की चीजों को बोतल आदि में भरकर ठंडा करने के लिए बरफ या शोरे में रखना।

झालर : सं० पु० १. एक प्रकार का पकवान। उ० झालर माँड़े आए पोई देखत उजर पाग जस छोई। (जायसी) २. किसी कपड़े आदि में लगी लटकन झल्लर। उ० पीत पट झालर लगी— (भा० २।११७)

झाला : सं० पु० १. तमाखू के सूखे डंठल या पत्ता (दिनमान) २. एक वाद्य, झाँझ। (झूठा० १।१६६)

झिगन : सं० पु० १. एक प्रकार का पेड़ जिसकी पत्ती से लाल रंग बनता है। २. सारस्वत ब्राह्मणों की एक जाति।

झिगनी : सं० स्त्री० क्षुद्र कीट विशेष, खद्योत, जुगनू।

झिझोटी : सं० स्त्री० सम्पूर्ण जाति की एक रागिनी जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह दिन के चौथे पहर में गाई जाती है। उ० वह उन्हें ऊटपटाँग पहाड़ी झिझोटिया सिखाता रहता था। (झूठा० १।११७)

झिझकना : क्रि० अ० डरना, संकोच करना, भयभीत होना। उ० खतरे से यह झिझक, संघर्ष के प्रति यह उदासीनता। (टे० मे० रा० २६२)

झिरी : सं० स्त्री० दरार, छेद, विदीर्ण, टूटी-फूटी, फाँक। उ० खाँसी सुनाई दी और किवाड़ की झिरी खुल गई। (बूँद० २६४)

झिलमा : सं० पु० एक प्रकार का धान जो उत्तर-प्रदेश में होता है।

झिल्लन : सं० स्त्री० दरी बुनने के करघे की वह कड़ी लकड़ी जिसमें वँ का वाँस लगा रहता है। गुरिया।

झिल्ली : सं० स्त्री० झींगुर जो रात्रि में प्रायः बोलता है। उ० राह बतावत झिल्ली (भा० स० २।११२)

झींकना : क्रि० स० १. फेंकना, पटकना, २. नाक भौं चढ़ाना।

झींका : सं० पु० उतना अन्न जितना एक बार पीसने के लिए चक्की में डाला जाता है।

झींगट : सं० पु० पतवार थामने वाला मल्लाह, कर्णधार। (लश०)

झींगन : सं० पु० मझोले आकार का वृक्ष, इससे निकला गोंद छींटों की छपाई व औपधि काम आता है।

झींगुर : सं० पु० एक उछट्टी मारने वाला सफेद कीड़ा जो प्रायः घरों में रहता है। (व्र० श०)

झींझो : सं० पु० १. एक रस्म जिसमें आश्विन शुक्ल चतुर्दशी को मिट्टी की एक कच्ची हाँड़ी में वहुत से छेद करके वीच में एक दीया वालकर रखते हैं। इसे कुमारी कन्याएँ हाथ में लेकर अपने सम्वन्धियों के घर जाती हैं। २. मिट्टी की वह कच्ची-हाँड़ी जिसमें छेद करके इस काम के लिए दीया रखते हैं।

झींसी : सं० स्त्री० हल्की वारिश।

झीत : सं० पु० जहाज के पाल का वरन (लश०)

झुंड : सं० पु० समूह, गिरोह, स्तूप, ठट्ठ। उ० कंगालों का झुंड उस दिन जीवित रहने की चिन्ता को लेकर निकलता है। (टे० मे० रा० ५८)

झुंवझुवी : सं० स्त्री० एक प्रकार का गहना जो देहाती स्त्रियाँ कान में पहनती हैं।

झुँगरा : सं० पु० साँवाँ नामक अन्न।

झुँझलाहट : सं० स्त्री०, खिन्नता, क्रोध को दवाने का भाव। उ० उनका मौन उनकी झुँझलाहट का द्योतक था। (टे० मे० रा० ५)

झुकरे : क्रि० स० झुँझलाना, खीझे हुए। उ० रुंडन के मुंड झूमि-झूमि झुकरे से नाचें (क० ६।३१)

झुखना : क्रि० स० सोचना, याद करना। (जा० ७५।१)

झुटपुटा : सं० पु० प्रातः काल के पहले का समय। उजास फूटने की वेला। उ० संध्या का झुटपुटा-सा हो गया था। (झूठा० २।१००)

झुनझुना : सं० पु० एक वाजा जिसे छोटे वच्चे वजाते हैं। उ० रवड़ की गुड़िया और झुनझुना रख दिया। (झूठा० १।११)

झुमका : सं० पु० कान का आभूषण, झूमर, ऐरन। उ० सोने का झुमका और चाँदी की चूड़ी वनवाकर दी थी। (परती० ३४७)

झुमना : सं० पु० वह वैल जो अपने खूँटे पर वँधा हुआ अपने पिछले पैर उठा-उठा कर झूमा करे। यह एक कुलक्षण है।

झुमरा : सं० पु० लुहारों का एक प्रकार का घन या वहुत भारी हथौड़ा जिसका व्यवहार खान में से लोहा निकालने में होता है।

झुमरी : सं० स्त्री० १. काठ की मुंगरी, २. गच पीटने का औजार, पिटना।

झुरकुटिया : सं० पु० एक प्रकार का पक्का लोहा जिसे खेड़ी कहते हैं।

झुरमुट : सं० पु० काँटेदार पेड़, घना पेड़ों

का समूह, झूआ, बीहड़। उ० वनी हरी झुरमुटों में से बड़े-बड़े...निकल आया। (बाबा० ६)

झुलनिया : सं० स्त्री० कर्णभूषण। उ० खेलत में झुकि झूले झुलनिया। (भा० २।३८५)

झुलनीबोर : सं० पु० धान की बाल (कहारों की भाषा)।

झुलवा : सं० पु० एक प्रकार की कपास जो बहराइच, बलिया, गाजीपुर, गोंडा आदि में उत्पन्न होती है। यह अच्छी जाति की है पर कम निकलती है। यह जेठ में तैयार होती है। जेठवा।

झुहिरना : क्रि० अ० लदना, लादा जाना। उ० रतन पदारथ नग जो बखाने। घोरन मुंह देइ झुहिराने (जायसी)।

झूठ : सं० पु० वह कथन जो वास्तविक स्थिति से विपरीत हो, सच का उलटा (जायसी) उ० झूठेहु सत्य जाहि बिनु जाने (भा० १।११२।१)

झूठा : वि० < झुठ्ठ उ० पतित झूठो कवि हरिचंद (भा० २।२७०)

झूमरा : सं० पु० १. घन की भाँति लोहे का ठोस मोटा औजार जिसमें लकड़ी का लट्ठा ठुका रहता है। (ब्र० श०) २. कान में पहना जाने वाला आभूषण।

झूमरी : सं० स्त्री० शालक राग के पाँच भेदों में से एक।

झूरा : वि० सूखा, शुष्क। उ० काठहु चाहि अधिक सो झूरा (जा० १४४।६)

झूसा : सं० पु० एक प्रकार की बरसाती घास जो उत्तरी भारत के मैदानों में अधिकता से होती है और जिसे घोड़े तथा बैल आदि बड़े चाव से खाते हैं। गुलगुला पलंजी, बड़ा मुरमुरा।

झूसा : वि० सूखा जैसे खेतों में झूसा पड़ गया।

झेला : सं० पु० यह चावल पतला और लम्बा होता है। (ब्र० श०)

झोंझ : सं० पु० १. खोंता, घोंसला। २. कुछ पक्षियों के गले की थैली या लटकता हुआ मांस। ३. खुजली, सुरसुराहट, चुल।

झोंपड़ा : सं० पु० लकड़ी और फूस से बना छोटा घर।

झोंपा : सं० पु० झुग्गे। उ० झूलहिं रतन पाट के झोंपा (जा० ११७।६)

झोटा : सं० पु० भैंस का बच्चा, पड़रा, कट्टा। स्त्री० झोटी-अर्ध महिषी उ० दूध पीवण ने जोसी झोटी दिराऊरे। (मीरा)

झोथर : सं० पु० मोटे सूत का बना हुआ लच्छा। उ० कहाँ रेशम के लच्छे कहाँ झौवा भर झोथर (प्र० ग्र० २४२)

झोरना : क्रि० स० आनन्द लेने वाली क्रिया।

झोरा : सं० पु० गुच्छा, झब्बा।

झोल : सं० पु० १. मादा चिड़िया जब अंडा देने वाली होती है तब उसे झोल कहते है (ब्र० श०) २. मछली या मांस का शोरबा। ३. ढीलापन। उ० बुद्धि पर पड़े हुए झोल को झाड़ते हुए कहा—(परती० १८०)

झोला : सं० पु० १. थैला, २. चीटे की शक्ल का एक पनिहा कीड़ा जो मछलियों के बच्चों को खाता है। ३. अत्यंत बर्फीली हवा का झोंका जिसके चलने से गेहूँ की बाल सूख जाती है। इस शब्द का प्रयोग कारनेगीज ने 'कचहरी-टेकनर्कलिटीज' में किया है। उ० कोई

कह लाग पवन कर झोला ।
(जा० ४५२।२)

झौंटा : सं० पु० केशपाश, वालों का समूह, वेणी। उ० 'अभी तेरा झौंटा उखाड़ दूँगी' । (झूठा० २।१६५)

झौंटा-झुटव्वल : सं० पु० मारपीट, झगड़ा, केशाकेशी, वालों को पकड़ कर लड़ना । झौंटा-झुटव्वल शुरु हो गई ।
(आधा० २५५)

झौकर : सं० पु० कवूतर से कुछ वड़ा, रंग सफेद, लाल चोंच और काले पंजे वाला पक्षी । (व्र० श०)

झौनी : सं० स्त्री० टोकरी, दौरी ।

झौवा : सं० पु० पला या डला । झौआ । उ० कहाँ रेशम के लच्छे कहाँ झौवा भर झोथर (प्र० ग्र० २४२) । उ० पाँच रुपये में झौवा भर आशीर्वाद खरीदकर।
(वूँद० २८८)

टंका : सं० पु० एक प्रकार का गन्ना या ईख ।

टंकुली : सं० स्त्री० चपाटसिरीस, पत्ती झाड़ने वाला एक पेड़ जो हिमालय की तराई में होता है ।

टंगा : सं० पु० कुल्हाड़ीनुमा औजार जो लकड़ी चीरने के काम आता है ।

टंघार : सं० पु० वहाव, प्रवाह, वूँद । उ० आँखों से वहते आँसूओं के टंघार गाल और छाती पर से सूखते ।
(वल०२)

टंटा : सं० पु० वखेड़ा, झगड़ा, कलह । उ० हम क्षत्री हैं, तो टंटा वखेड़ा में पड़े रहते हैं । (प्र० ग्र० १८८)

टँगा : सं० पु० मूँज ।

टँडुलिया : सं० स्त्री० वन चौलाई जो कुछ काँटेदार होती है । यह साग और दवा के काम आती है ।

टकटकी : वि० क्रि० निर्निमेष देखना उ० टकटकी क्या भीत के उरेहे चित्र सी भात है । (भ० नि० २४)

टकसरा : सं० पु० एक प्रकार का वाँस जिससे विविध सजावट के सामान वनते हैं ।

टकूचना : क्रि० स० खाना । उ० कम खाओ इतना क्यों टकूचते हो (पश्चिम)

टकोरना : क्रि० स० खोदना, खचेड़ना, वजाना, किसी वस्तु से आवाज करना । उ० पंडित जी छड़ी फर्श पर टकोरते हुए वोल उठे । (झूठा० १।४४)

टखना : सं० पु० घुटना, टंघना । उ० छू न सकने के लिये टखनों से ऊँची थी ।
(झूठा० १।३७३)

टगरगोड़ा : सं० पु० लड़कों का एक खेल जिसमें कुछ कौड़ियाँ चित्त करके जमा देते हैं फिर एक कौड़ी से उन्हें मारते हैं ।

टघरना : क्रि० स० १. पिघलना, घी मोमादि । २. हृदय का द्रवीभूत होना (करुणा) टघराना—पिघलाना ।

टटड़ी : सं० स्त्री० खोपड़ी, ठठरी ।

टटका : वि० ताजा । स्त्री० टटकी—ताजी । उ० मितु अभिराम प्रेमघन, स्याम पीर हरि टटकी रे साँवलिया ।
(प्रे० स० १।५०२)

टटाना : क्रि० अ० सूख जाना, टढ़ियाना । शरीर का दर्द ।

टटोलना : क्रि० स० खोजना, ढूँढ़ना, पता लगाना । उ० चुनांचे मैंने हाथ डालकर उस अठन्नी को टटोला । (आधा० २९)

टट्टी : सं० स्त्री० १. शौच, पाखाना, २. टट्टी करने का स्थान, पाखाना । ३. आड़, वृत्ति, रोक ।

टट्टू : सं० स्त्री० टटुई घोड़े और गधे

से उत्पन्न चौपाया पशु जो बहुत बलवान होता है। यह काफी वजन ढो सकता है। उ० खुशामदी टट्टू कह देते हैं। (प्र० ग्र० २६८)

टपटप : सं० पु० बूंदों की आवाज। उ० बूंद बजे टपटप मारग कोई नहीं आता जाता। (भा० २।४८९)

टपरा : सं० पु० छोटे-छोटे खेतों का विभाग, टप्पा।

टपोर : सं० पु० आँखों का ऊपर वाला गड्ढा। (व्र० श०)

टप्पा : सं० पु० १. नियत दूरी, मुकर्रर फासला। २. दो स्थानों के बीच में पड़ने वाला स्थान या मैदान। जैसे इन दोनों गाँवों के बीच में बड़ा भारी बालू का टप्पा पड़ता है। ३. छोटा भू विभाग, जमीन का छोटा हिस्सा। परगने का हिस्सा। ४. अन्तर, बीच, फर्क। उ० पीपर सूना फूल विन, फल विना सूना राय। एका एकी मानुषा टप्पा दिया आय। (कबीर) ५. दूर-दूर की भद्दी सिलाई। ६. पालकी ले जाने वाले कहारों की टिकान जहाँ कहार बदले जाते हैं। पालकी वालों की चौकी या डाक। ७. डाकखाना, पोस्ट आफिस। ८. पाल के जोर से चलने वाला बेड़ा। ९. एक प्रकार का चलता गाना जो पंजाब से चला है। उ० टप्पा मैना गाती क्या रसभरी गिरगिरी लेती, (प्रे० स० ४०६)। १०. एक प्रकार का ठेका जो तिलवाड़ा ताल पर बजाया जाता है। ११. एक प्रकार का हुक या काँटा।

टब : सं० पु० जलाने का एक प्रकार का लैंप जो छत या किसी दूसरे स्थान पर लटकाया जाता है।

टब्बर : सं० पु० परिवार, स्त्री, बच्चे। उ० उसके तो पेक्के (पितृ) टब्बर का पता लोहगढ़ कैम्प में मिल गया था। (झूठा० २।१०७)

टमटी : सं० स्त्री० एक प्रकार का बरतन। उ० गण्टा अरु आधार धर्त्त के बहुत खिलौना। परिया, टमटी अतरदान रूपे कै मौना (सूदन)

टरकनी : सं० स्त्री० ईख या गन्ने की दूसरी बार की सिंचाई।

टरगी : सं० पु० एक प्रकार की घास जो चारे के काम आती है, इसे भैंसें बड़े चाव से खाती हैं। इसे १२-१३ वर्ष तक सुखाकर रखा जा सकता है। घोड़ों के लिए यह पुष्ट और लाभदायक होती है। पलवा, पलवन।

टरना : सं० पु० तेली के कोल्हू में ढेंका और कतरी से बंधी रस्सी।

टलहा : वि० (स्त्री० टलही) खोटा, खराब, दूषित। जैसे टलहा रुपया, टलही चाँदी।

टल्ला : वि० क्रि० पैर से मारना, जैसे मैंने टल्ला मार दिया।

टल्ली : सं० स्त्री० १. एक प्रकार का बाँस, २. घण्टी की टुनटुनी। उ० तेरी डाची दे गले विच टल्लियाँ। (झूठा० १।३६५)

टसक : सं० स्त्री० रह-रहकर उठने वाली पीड़ा, कसक, टीस, चमक।

टसकना : क्रि० अ० हटना। उ० टसकाये न टसकते थे। (प्र०ग्र० २७१)

टसुआ : सं० पु० आँसू, अश्रु (पंजाबी)

टहल : सं० स्त्री० सेवा। उ० टहलहु करत जाता। (भा० २।१४६)

टहलुआ : सं० पु० नौकर, दास, सेवा करने वाला मजदूर। उ० उस यात्रा में

टहलुआ के तौर पर तेरा बाप भी—
(बाबा० ८१)

टह्री : सं० पु० रोब, प्रभाव। उ० येन केन प्रकारेण अपनी टह्री जमा के—
(प्र०ग्र० १६२)

टहुआटारी : सं० स्त्री० इधर की उधर लगाना, चुगलखोरी।

टहोका : सं० पु० हाथ या पैर से दिया गया धक्का या झटका। मुहा० टहोका देना। उ० मैंने इनकी ठण्डी साँस की फाँस का टहोका खाकर झुंझला कर कहा—(इंशाअल्ला खाँ)।

टाँकली : सं० स्त्री० पाल लपेटने की घिरनी या गराड़ी। (लश०)

टाँग : सं० पु० पैर। उ० ब्रजभाषा की टाँग न तोड़ के अपने प्रांत की बोली।
(प्र० ग्र० २३८)

टाँगना : क्रि० स० लटकाना, किसी वस्तु को ऊपर रखना। उ० जिनमें कुछ जान थी उन्हें बाहर निकालकर उलटा टांग दिया। (सा० ल० म० ६)

टाँगा : सं० पु० एक प्रकार की गाड़ी जिसका ढाँचा इतना ढीला होता है कि वह पीछे की ओर कुछ झुका या लटका रहता है। इसमें सवारी प्रायः पीछे की ओर ही मुँह करके बैठती है। उसमें घोड़े या बैल दोनों जोते जाते हैं।

टाँगुन : सं० स्त्री० बाजरे या कंगनी की तरह का एक अनाज जिसकी फसल सावन भादों में पककर तैयार हो जाती है। इसके दाने महीन पीले रंग के होते हैं। गरीब लोग इसका भात बनाकर खाते हैं।

टाँट : सं० स्त्री० खोपड़ी, कपाल।

टाँठी : वि० ताजी। उ० ताहि प्रकार न टाँठी (प० ग्र० १९८)

टाँड़ : सं० स्त्री० १. कंकड़ मिली मिट्टी, २. मकान या किसी स्थान की छत। ३. लकड़ी या किसी वस्तु का ढेर।

टाँड़ा : सं० पु० एक प्रकार का हरा कीड़ा जो गन्ने आदि की जड़ों में लगकर फसल को हानि पहुँचाता है। बिक्री के सामान। उ० टाँड़ा लादि चला बनिजारा।

टाँड़ी : सं० स्त्री० टिड्डी। उ० उमड़ि रारि तुरकन त्यों माँडी। छूटे तीर उड़त ज्यों टाँड़ी।—लाल

टाट : सं० पु० सुतली या बोरी आदि से बना आसन।

टाटक : वि० ताजा। उ० घिउ टाटक महँ साँधि सँरावा। (जा० ५४७।६)

टाड : सं० पु० भुजाओं पर पहना जाने वाला भूषण। उ० बाहन्द बाहू टाड सलोनी। (जा० २९९।५)

टाड़ा : सं० पु० घी या तेल तथा स्निग्ध पदार्थ रखने का बरतन, घड़ा या कनस्तरी। उ० टाड़ा भर घी। ओढ़ना-बिछौना का मोटा। (बल० ४१)

टाडर : सं०स्त्री० एक चिड़िया का नाम।

टाढ़ : सं० पु० बर्फीली पहाड़ियों से चलने वाली हवा (दिनमान) शीत के लिए गुजराती में टाड़ कहते हैं।

टाप : अनु० आवाज, घोड़े के पैरों की आवाज, घोड़े के कदम का एक मान। उ० टाप न बूड़ बेग अधिकाई (तुलसी)

टापड़ : सं० पु० ऊसर, मैदान।

टापर : सं० पु० चद्दर, ओढ़ने का मोटा कपड़ा।

टापना : क्रि० अ० ठगे रहना, देखते रहना, मुँह बाना। उ० गिरधारीलाल टापते रहे। (झूठा० १।२०७)

टापा : सं० स्त्री० मछली रखने की एक टोकरी।

टावक : टावक टोइयाँ(मुहावरा)अनजान ढंग की क्रिया या अन्वेषण।

टावू : सं० पु० रस्सी की वनी हुई कटोरे के आकार की जाली जिसे वैलों के मुँह पर इसलिए चढ़ा देते हैं जिसमें वे काम करते समय इधर-उधर न चर सकें। जावा।

टारना : क्रि० स० हटाना, टालना। उ० भक्तन का भय टारि—(भा० २।९६)

टाल : सं० स्त्री० एक प्रकार का घंटा जो गाय, वैल, हाथी आदि के गले में वांधा जाता है।

टालटूल : सं० पु० वहाना। उ० छापने से टाल-टूल करने लगे (प्रे० स० ४१८)

टालना : क्रि० स० हिलाना, इधर उधर गति देना। उ० टारहिं पूँछ पसारहिं जीहा। कुंजर डरहिं कि गुंजर लीहा। (जायसी)

टाली : सं० स्त्री० १. गाय, वैल, आदि के गले में वांधने की घंटी। २. जवान गाय या वछियर जो तीन वर्ष से कम की हो और वहुत चंचल हो। उ०—पाई पाई है भैया कुंज वृंद में टाली। अवके अपनी हटकि चरावहु जैहै वृंद हटकी छाली। (सूर०) ३. एक प्रकार का वाजा ४. अठन्नी, आधा रुपया, धेली। (दलाली)

टाल्ही : सं० पु० एक प्रकार का शीशम जिसके पेड़ पंजाव में होते हैं। इसकी लकड़ी इमारती होती है। गाड़ी और खेती के सामान भी इससे वनते हैं।

टिंडी : सं० स्त्री० १. हल को पकड़ कर दवाने वाली मुठिया। २. जाँता घुमाने का खूँटा। ३. एक गोल स्वादिष्ट तरकारी।

टिक : सं० पु० टिक्कर, लिट्ट, ठोंकना, पूआ।

टिकई : सं० स्त्री० टीके वाली गाय। वह गाय जिसके माथे में सफेद टीका हो।

टिकटिकी : सं० स्त्री० १. आठ-नौ अंगुल लम्वी एक चिड़िया जिसका रंग भूरा और पैर कुछ लाली लिए होते हैं। जलाशय के किनारे की झाड़ियों में यह अण्डा देती है। २. छिपकली (वंगला)

टिकिया : सं० स्त्री० १. गोल और चिपटा छोटा टुकड़ा। चक्राकार छोटी मोटी वस्तु जैसे दवा की टिकिया। २. कोयले की वुकनी को किसी लसीली चीज में सानकर वनाया हुआ चिपटा गोल टुकड़ा जिससे चिलम पर आग सुलगाते हैं। ३. एक प्रकार की चिपटी गोल मिठाई जो मोयनदार मैदे की छोटी लोई को घी में तलने और चासनी में डुवोने से वनती है। ४. वरतन के साँचे का ऊपरी भाग जिसका सिरा वाहर निकला रहता है। ५. छोटी मोटी रोटी। वाटी लिट्टी।

टिक्कड़ : सं० स्त्री० रोटी, सूखी मोटी रोटी। उ० जौ-चने का टिक्कड़ खुशी-खुशी तो कोई खाएगा नहीं। (वावा० ५०)

टिक्का : सं० पु० १. मूँगफली के पौवे का एक रोग २. गुरद्वारे के गद्दी का उत्तराधिकारी।

टिक्की : सं० स्त्री० १. काली सरसों, २. विन्दी, ३. टिकिया, ४. चोटी। (वंगला)

टिघलना : क्रि० अ० उ० गरमी भी उसे टिघला नहीं सकती। (भ० नि० ४३)

टिच्चन : वि० ठीक, अच्छा, चंगा, भला। उ० आपका स्वास्थ्य तो अव विल्कुल

टिच्चन जान पड़ता है।

(राग दर० ४२४)

टिटकारा : सं० पु० भेड़ों को बुलाने की आवाज। उ० जिसने टिटकारा भर दी उसी की इच्छानुसार चलती हैं।

(प्र० ग्र० ४७४)

टिटकारी : सं० स्त्री० वह आवाज जिसे ताँगा चलाने वाले करते हैं। उ० टिटकारी भरी और ताँगा हवा से वातें करने लगा। (गि० दी० ३६)

टिड्डा : सं० पु० एक जन्तु जो खेती को हानि पहुँचाता है तथा जो झुण्ड के साथ रहता है।

टिपुर : सं० पु० १. गुमान, अभिमान, गरूर। २. वहुत अधिक आचार-विचार पाखंड, आडम्वर।

टिप्पस : सं० स्त्री० युक्ति, अभिप्राय, साधन का ढंग। मुहा० टिप्पस विठाना।

टिवरी : सं० स्त्री० पहाड़ों की छोटी चोटी।

टिमटिमाना : क्रि० स० मन्द, धुंधला प्रकाश। उ० वैदिक धर्म दीपक की ज्योति-सा कहीं फिर भी टिमटिमाता रहा (भ० नि० २१६८)

टिमाक : सं० स्त्री० वनाव, सिंगार ठसका।

टिरिया : सं० पु० वह देशी वैल जो छोटा रह जाय। (ब्र० श०)

टिर्र : सं० पु० घमंड, ऐंठ। उ० कुलीनता की टिर्र विल्कुल छार में मिल गई।

(भ० नि० २११३)

टिलवा : सं० पु० १. लकड़ी का वह टुकड़ा जो छोटा गंठीला और टेढ़ा हो, गंठीला और टेढ़ा मेढ़ा कुंदा। २. नाटा या ठेंगना आदमी। ३. चापलूस आदमी।

टिलिया : सं० स्त्री० १. छोटी मुर्गी, २. मुर्गी का वच्चा।

टिलेहू : सं० पु० एक प्रकार का नेवला जिसके शरीर से दुर्गन्ध निकलती है। इसका सिर सूअर जैसा और दुम वहुत छोटी होती है। यह तलवों के वल चलता और अपने थूथन से जमीन की मिट्टी खोदता है।

टिलौरिया : सं० स्त्री० मुर्गी का वच्चा।

टिल्ली : सं० स्त्री० चुटकी, ताली, मजाक। उ० लकड़ी या चदरिया खींच कर टिल्लो वजाने लगे। (वूंद० १०)

टींड़ा : सं० पु० जाँता घुमाने का खूँटा।

टीक : सं० स्त्री० चोटी, शिखा, चुटिया, जड़। मेंहगू की टीक सहदेव के हाथ में है। (मैला० ११६)

टीकुर : सं० पु० १. ऊँची पृथ्वी। नदी से वाहर की ऊँची और रेतीली भूमि। २. जंगल या वन। कड़ी जमीन।

टीटा : सं० पु० स्त्रियों की गुप्तेन्द्रिय के वाहर निकला हुआ मांस। टना।

टीमटाम : सं० स्त्री० १. वनाव, सिंगार, सजावट। २. ठाट वाट, तड़क, भड़क।

टीस : सं० स्त्री० चुभती हुई पीड़ा, कसक चसक, हूल।

टुंगना : क्रि० स० १. चौपायों का टहनी के सिरे की पत्तियों को दाँत से काटना, कुतरना। २. कुतर कर चवाना।

टुइयाँ : क्रि०सं० स्त्री० १. छोटी जाति का सूआ या तोता। सुग्गी। इसकी चोंच पीली और गरदन वेंगनी रंग की होती है।

टुइयाँ : वि० ठेंगना, नाटा, वौना।

टुघलाना : क्रि० अ० १. चुभलाना, मुंह में रखकर धीरे-धीरे कूँचना। २. जुगाली करना।

टुटुका : सं० स्त्री० एक वाजा जिस पर

चमड़ा मढ़ा होता है।

टुटुहा : सं० पु० एक चिड़िया का नाम।

टुनका : सं० पु० बार-बार मूत्रस्राव होने और उसके साथ धातु गिरने का रोग।

टुनकी : सं० स्त्री० एक परदार कीड़ा जो धान को हानि पहुँचाता है।

टुनटुना : सं० पु० मैंदे का बना हुआ एक नमकीन पकवान। यह मैंदे की चिपटी लम्बी बत्तियों को घी में तलकर बनाया जाता है।

टुन्ना : सं० पु० वह नाल जिसमें फल लगते हैं और लटकते हैं जैसे कद्दू का टुन्ना। किसी चीज़ पर मध्य या उँगली अँगूठे से खींचकर हल्का आघात करने की क्रिया।

टुपकना : क्रि० अ० कहना, अचानक बोलना। उ० महिपाल बात टुपक कर चुप हो गया। (बूंद० १०२)

टुम्मा : सं० पु० रुपये पाने की एक गैर मामूली रसीद।

टुर्रा : सं० पु० १. टुकड़ा, डली, दाना, रवा, कण। २. मोटे अनाज का दाना, ज्वार बाजरे आदि का दाना।

टुलड़ा : सं० पु० एक प्रकार का बांस जो पूर्वी बंगाल और असम में होता है।

टूअर : सं० पु० अनाथ, जिसका बाप मर गया हो। उ० बाप के मरने से कोई टूअर नहीं होता। (मैला० ३६)

टूक्यो : सं० पु० भालू (डिंगल)

टूसा : सं० पु० १. मंदार का फल, डोड़ा। २. रेशा, फुचड़ा, सूत। ३. पाकड़ का फूल। ४. कलिका, पल्लव, कोंपल। उ० पुजारी का खसी एक बार मेरे टूसों को चबा गया। (बाबा० २४)

टूसा : सं० पु० टुकड़ा, खंड।

टेंकी : सं० स्त्री० १. क्षुद्र राग का एक भेद। २. एक प्रकार का नृत्य।

टेंगर : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली जो टेंगरा की ही तरह की पर उससे बहुत बड़ी अर्थात् दो ढाई हाथ तक लम्बी होती है।

टेंगरा : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली जो डेढ़ बालिश्त लम्बी तथा सफेद या कालापन लिये बादामी होती है। इसके मुँह के किनारे लम्बी मूंछ होती है। इसके शरीर में तीन कांटे होते हैं। यह मुँह से गुनगुनाहट जैसा एक प्रकार का शब्द निकालती है। उ० संघ सुगन्ध छरै जल बाढ़े, टेंगन भुवे टोय सब काढ़े।
(जायसी)

टेंघुना : सं० पु० घुटना। घुटने का शब्द विपर्यय।

टेंट : सं० स्त्री० धोती की वह मंडलाकार ऐंठन जो कमर पर पड़ती है और जिसमें लोग कभी-कभी रुपया पैसा भी रखते हैं। मुर्री। उ० टेंटनि ऊपर फेंटे कसी है। (भा० २।३०२)

टेंटई : सं० स्त्री० वेश्या। उ० धनिन को टेंटई की लत है। (प्र० ग्र० २८६)

टेंटर : सं० पु० आँख का एक रोग जिसमें सफेदी या जाली पड़ जाती है। उ० बाईं आँख टेंटर पड़कर सफेद हो गई।
(झूठा० ११४४८)

टेंटुवा : सं० पु० १. गला, घेंटू, घीची (प्र० ग्र० १८८) २. अंगूठा।

टेई : क्रि० वि० तेज की हुई पैनी। उ० कपट छुरी उर पाहन टेई।
(भा० २।२२।१)

टेक : सं० स्त्री० आड़, सहारा, उ० दीन-बंधु की टेक (भा० ३७), (जा० २।६)

टेकुरा : सं० पु० पान।

टेनी : सं० स्त्री० छोटी उँगली।

टेमन : सं० पु० एक प्रकार का साँप।

टेमा : सं० पु० कटे हुए चारे की छोटी अँटिया।

टेर : सं० स्त्री० १. आवाज़। उ० टेर सुनी गिरधारी। २. खोज, पता। उ० इसकी बीमारी का तो टेर पता ही नहीं चलता है (मैला० ११४)

टेरवा : सं० पु० हुक्के की वह नली जिस पर चिलम रखी जाती है।

टेरा : सं० पु० १. ढेरा, अंकोल का पेड़। २. पेड़ों का धड़, वृक्ष स्तम्भ-जैसे केले का टेरा। ३. शाखा।

टेरी : सं० स्त्री० १. टहनी, पतली शाखा २. एक पौधा जिसकी कलियाँ रंगने और चमड़ा सिझाने के काम आती हैं। खेरी, कुन्ती। ३. बक्कम की फली।

टेरो : सं० स्त्री० सरसों का एक भेद, उलटी।

टेली : सं० पु० मझले आकार का एक पेड़ जिसकी लकड़ी लाल तथा मजबूत होती है तथा चारपाई, औजारों के दस्ते आदि बनाने के काम आती है।

टेव : सं० स्त्री० आदत। उ० लेकिन दीना है कि टेव नहीं छोड़ता।

(क० पु० २७६)

टेहला : सं० पु० विवाह के व्यवहार, व्याह की रीतिरस्म।

टैन : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास जो चमड़ा सिझाने के काम आती है।

टैना : सं० पु० घास का पुतला या डंडे पर रखी हुई काली हाँड़ी आदि जिन्हें खेतों में पक्षियों को डराने के लिए रखते हैं।

टैंठी : वि० चंचल। उ० पैठत प्रान खरी अनखीली सुनाक चढ़ाएई डोलत टैंठी।

(घनानंद)

टैनी : सं० स्त्री० भेड़ों का झुंड (गड़रिया)

टैयाँ : सं० स्त्री० एक प्रकार की छोटी कौड़ी जिसकी पीठ साधारण कौड़ी से कुछ चिपटी होती है और उस पर दो चार उभरे हुए दाने से होते हैं चिती।

टोंगू : सं० पु० फैलने वाली एक झाड़ी जिसकी छाल के रेशों से रस्सी बनाई जाती है। जिती, जक।

टोंट : सं० पु० चौंच। उ० विना इनकी आज्ञा चिड़िया जल में टोंट नहीं बोर सकती। (भ० नि० २।१२)

टोंटा : सं० पु० हाथ टूटा हुआ व्यक्ति।

टोआ : सं० पु० गड्ढा (पंजाब)

टोइयाँ : सं० स्त्री० छोटी जाति का सूआ जिसकी चोंच पीली होती है और कंठ से लेकर चोंच तक सारा भाग बैंगनी होता है। तोती।

टोई : सं० स्त्री० पोर, एक गाँठ से दूसरी गाँठ तक का भाग।

टोक : सं० पु० रुकावट, बाधा, किसी को जाते हुए कहकर रोकने की क्रिया। उ० बिना रोक टोक कह सकते हैं।

(प्र० ग्र० १९४)

टोकरा : सं० पु० बाँस की चिरी हुई लकड़ियों खप्पचों, अरहर तथा झाऊ की टहनियों से बना गोल या गहरा छाबड़ा, डला, झावा, खाँचा।

टोकवा : सं० पु० उतपाती लड़का, नटखट लड़का।

टोकसी: सं० स्त्री० नरियरी, नारियल की आधी खोपड़ी।

टोका : सं० पु० एक कीड़ा जो उर्द की फसल को हानि पहुँचाता है। किसी चीज़ का सिरा।

टोकारा : सं० पु० धक्का, टकोर, स्पर्श। उ० जैकिसुन के दाहिने गाल पर टोकारा दिया। (बाबा० ११)

टोटा : सं० पु० हानि, नुकसान । उ० साफ करो बन्दूके टोटा टोआ ढाल सुधारो । (प्रे० स० ५५२)

टोडर : सं० पु० एक प्रकार का लम्वा हार । उ० नव गिरही टोडर पहिरावी (जा० ३६२।५)

टोना : सं० पु० १. एक शिकारी चिड़िया । उ० जुर्रावाज वाँसे कुही वहरी लगर लौन टौने जरकटी त्यों सचान सानवारे है । (रघुराज) २, टोना-टायर, जादू । उ० कछु पढ़ि कियौ टोना लागी । (भा० २।७७३)

टोपन : सं० पु० टोकरा ।

टोपा : सं० पु० १. सिर पर पहनने का टोपीनुमा वस्त्र जिसे बच्चे पहनते हैं । २. टोकरा ।

टोपी : सं० स्त्री० सिर पर पहनने का कपड़ा ।

टोया : सं० पु० गड्ढा (पंजावी)

टोर : सं० स्त्री० १. कटारी, कटार । उ० तुम सोन जोर चोर भूपन के भोर रूप काकरी को चोर काऊ मारौ हैं न टोर के । अनुमान । २. शोरे की मिट्टी का वह पानी जो साधारण नमक की कलमों को छानकर निकाल लेने पर बच जाता है ।

टोरा : सं० पु० जुलाहों का सूत तौलने की तराजू ।

टोल : स० पु० १. समूह, उ० ग्रामीण जन चले टोल टोल । (भा० २।६८८) २. किक मारने की क्रिया, पैर से गेंद आदि मैं मारना । ३. मोहल्ला, चाली । उ० टोल-पड़ोस में कोई खराव वात जरूर हुई है । (वल० ८१) । स्त्री० टोली उ० कायस्थ टोली को गाँव की अन्य जाति के लोग मालिक टोला कहते है । (मैला० १६)

टोला : सं० पु० १. बड़ी कौड़ी, कौड़ा, टाघा । २. गुल्ली पर डंडे की चोट । ३. उँगली को मोड़कर पीछे निकली हुई हड्डी से मारने की क्रिया, ठूंग । ४. पत्थर या ईंट का टुकड़ा, रोड़ा । ५. वैत आदि के आघात का पड़ा हुआ चिन्ह जो कभी लाल और कभी कुछ नीलापन लिए होता है ।

टोवा : सं० पु० गलही पर बैठने वाला वह माझी जो पानी की गहराई जाँचता है ।

टोवा : क्रि० स० टटोलने, खोजने की क्रिया । उ० जोवन रतन कहाँ मुई टोवा (जा० ३६२।२)

टोहना : क्रि० स० १. खोजना, २. टटोलना, छूना ।

टोहिया : सं० पु० १. जासूस, २. खोजने वाला ।

टोरना : क्रि० स० १. भली बुरी बात की जाँच करना । २. किसी व्यक्ति या बात की थाह लेना, पता लगाना ।

ठंठार : वि० खाली रीता, छूँछा । उ० जसु कछु दीजै धरन कहाँ आपन लेहु सँभार । तस सिंगार सव लीन्हेसि मोहि ठँठार । (जायसी)

ठंठी : सं० स्त्री० वह अन्न जो दाना पीटने के बाद बाल में लगा रहता है ।

ठंडी : वि० शीतल । उ० यह ठंडी पौन निसके अंग को छूके आती है । (भा० २।६२६)

ठक : सं० पु० चंडूबाजों की सलाई या सूजा जिस पर अफीम का किवाम लगा कर सेकते हैं ।

ठटया : सं० पु० एक प्रकार का जंगली जानवर।

ठट्ठर : सं० पु० सूखा, अस्थि पंजर, दुबला। २. सूखी लकड़ियों आदि का ढेर।

ठठरी : सं० स्त्री० कंकाल। उ० वह ठठरी किसी रस्सी में टंगी थी। (क० पु० १२६)

ठठा : क्रि० वि० सजे हुए। ठाठ ठठे हुए फैशन परस्ती के पीछे परेशान। (भ० नि० ८६)

ठठेरा : सं० पु० १. ज्वार बाजरे का डंठल। २. लोहे का काम करने वाला।

ठठोली : सं० स्त्री० मजाक, हँसी। उ० बतरात कोउ कोउ करत किलकि ठठोलियाँ। (प्रे० स० १२३)

ठठ्ठ : सं० स्त्री० भीड़, समूह। उ० इस वक्त ठट्ठ के ठट्ठ जम रहे हैं भीड़ के। (बूँद० ४२)

ठठ्ठा : सं० पु० १. साज़, उ० पातसाह ठठ्ठा के ये दीवान होत है (भा० २।२५४) २. मजाक, जैसे हिमालय पर चढ़ना ठठ्ठा नहीं है।

ठड्ढे : सं० पु० स्तूप, ढेर। उ० कलों के ठड्ढे खड़ाकर उसे जाँचते (प्रे०स० २।६)

ठनकना : क्रि० स० बजना, चेत होना। उ० पिताजी की आवाज सुनकर चेतन का माथा ठनका। (गि० दी० १००)।

ठनठनाहट : सं० पु० आवाज (किसी धातु की) उ० थोड़े मूल्य की धातु में अधिक ठनठनाहट होती है। (प्र० ग्र० १६६)

ठपका : सं० पु० धक्का, ठोकर, ठेस। उ० यह तन काला कुंभ है लिया फिरै था साथ। ठपका लगया फूटि गया कछू न आया हाथ। (कबीर)

ठप्प : क्रि० वि० रुकना, काम बन्द पड़ना शीघ्रतावाचक शब्द। उ० गणित की कापी पुरी के हाथ से खींचकर ठप्प से मूँद दी। (झूठा० १।३१)

ठप्पा : सं० पु० मोहर।

ठमकना : क्रि० अ० रुकना, आश्चर्य या अचम्भे में रुकना, कौतूहल होना। उ० मेरे पास आकर वह ठमक गया। (बाबा० ६१)

ठर्रा : सं० पु० १. देशी शराब उ० एक ही साँस में देशी ठर्रे का अद्धा चढ़ाया। (बाबा० ७०) २. अच्छी तरह से न भुना अन्न, चना आदि।

ठर्री : सं० स्त्री० १. बिना अंकुर उठा हुआ धान का बीज जो छितरा कर बोया जाता है। २. बिना अंकुर उठे हुए धान की बोवाई।

ठल्ल : सं० स्त्री० वह गाय जो गाभिन न होती हो। (ब्र० श०)

ठसाठस : वि० खूब, अत्यधिक, मनुष्यों की भीड़। उ० श्रद्धानन्द पार्क ठसाठस भरा था। (टे० मे० रा० १५६)

ठस्स : सं० स्त्री० १. बेसमझ, मूर्ख २. घमंड का भाव, अहंकार। उ० वह बड़े ठस्से से आयी। (आधा० १०५)

ठस्सा : सं० पु० १. नक्काशी बनाने की एक छोटी रुखानी। २. गर्वपूर्ण चेष्टा, ३. घमंड, अहंकार, ४. ठाटबाट, शान, ५. मुद्रा, अंदाज।

ठहाका : सं० स्त्री० हँसी, अट्टहास, जोर से खिलखिलाने की ध्वनि। उ० छके हुए अफसरों का ठहाका दूसरे ही किस्म का होता है। (राग दर० ६०)

ठाँठर : सं० स्त्री० दुबली-पतली गाय, या बैल। (ब्र० श०)

ठाँव : सं० पु० स्थान, उ० ठाँव माँहि दीजौ धूप लगै मोहि भारी (भा०२।६२)

ठाका : सं० पु० लड़का रोकने के समय

दिया जाने वाला उपहार, सगाई के समय दिया गया लड़के की भेंट। उ० मुहल्ले में जाकर लड़के को ठाके के ग्यारह रुपये दे आई है। (झूठा० १।२०)

ठाट-वाट : सं० पु० शान शौकत। उ० होत राजसी ठाट-वाट संग जसन मनोहर। (प्रे० स० ३।३३)

ठाटी : सं० स्त्री० हाथी या घोड़ा की पीठ पर कसी हुई ठाटी। उ० गजरथ रेंग चले गज ठाटी। (जा० ३६२।२)

ठाठर : सं० पु० १. अस्थिपंजर, उ० ठाठर टूट टूट सिर तासू (जा०६३७।३) २. नदी में वह स्थान जहाँ अधिक गहराई के कारण वाँस या लग्गी न लगे। (मल्लाह)

ठाड़ा : सं० पु० खेत की जोताई जिसमें एक वल जोतकर फिर दूसरे वल जोतते हैं।

ठादर : सं० पु० रार, झगड़ा, मुठभेड़। उ० देव आपनौ नहीं संभारत करत इंद सों ठादर। (सूर०)

ठाल : सं० स्त्री० १. व्यवसाय या काम धंधे का अभाव, जीविका का अभाव, वेकारी, वेरोजगारी। २. खालीवक्त, फुरसत।

ठाला : वि० खाली रिक्त, ठल्ल उ० मटुकिन की करि के ठाला ठुलिया। (भा० २।१६४)

ठाली : वि० स्त्री० खाली, निठल्ला, वेकाम। उ० ऐसी को ठाली वैठी है तो सों मूड़ चरावै। (सूर०)

ठासा : सं० पु० लुहारों का एक औजार जिससे तंग जगह में लोहे की कोर निकालते और उभारते हैं।

ठस्सा : सं० पु० खाते या पीते समय भोजन या पानी का गले में फँसना।

ठिकरी : सं० स्त्री० ठिक्करिया, कंकड़ या किसी मिट्टी के वरतन का टुकड़ा। उ० रास्ते की ठिकरी समानवेकदर कर डाला। (भ० नि० १२७)

ठिकरौर : सं० स्त्री० वह भूमि जहाँ खपड़े ठीकरे आदि वहुत पड़े हों।

ठिकाना : सं० पु० स्थान, जगह। उ० दूजो कौन ठिकानो (भा० २।१३४)

ठिगना : वि० छोटा, बौना, वामन। उ० ठिगना ठूँठा कुवड़ा वौना ढाँचा लिये विधाता को कोसता रहा। (बाबा० ५१)

ठिठकना : क्रि० अ० सिकुड़ना, आश्चर्ययुक्त होना, अचम्भे में रहना। उ० आगे वाला आदमी ठिठक कर खड़ा हो गया। (टे० मे० रा० ३०२)

ठिठुरना : क्रि० अ० ठंड से सिकुड़ना, मठुरना, काँपना। उ० हाथ पैर ठिठुर गये। (टे० मे० रा०२९६)

ठिलुआ : वि० निठल्ला, वेकाम। उ० वहुत से ठिलुए अपना मन वहलाने के लिए औरों की पंचायत ले वैठते हैं। (श्रीनिवासदास)

ठिल्ला : सं० पु० घड़ा, पानी भरने का मिट्टी का वरतन, गगरी।

ठीक : वि० अच्छा, भली तरह। उ० (क) नाथ नीके कै जानि ठीक जल जियकी। (तुलसी) (ख) मिलि ठीक दुपहरी मुरति अमृत रस घोलै। (भा० २।४६०)

ठीका : वि० १. उचित २. यथार्थ। उ० करि विचारु मन दीन्ही ठीका। (भा०२।२६६)

ठीठी : सं० स्त्री० हँसी। उ० कोऊ अन्हात पै हाहा ठीठी होत रहत चहुँ— (प्रे० स० ४१)

ठुँगना : क्रि० स० खाने की क्रिया, चुगना,

धीरे-धीरे खाना जैसे चना आदि खाना। उ० कुछ नमकीन या मीठा ठुंगने की आदत थी। (झूठा० १।११)

ठुकाई : सं० स्त्री० मार, पिटाई, जैसे पंडित जी ने राम की ठुकाई की।

ठुड्डी : सं० स्त्री० ठोड़ी, चिवुक, दाढ़ी। उ० जैकिसुन की ठुड्डी छूकर कहा— (बाबा० १०)

ठुनकना : क्रि० अ० गुस्सा होना, रूठना, किसी वस्तु के लिए जिद्द करना। (आधा० २३५)

ठुमका : सं० पु० (स्त्री० ठुमकी) छोटी डील का, नाटा, ठेंगना। उ० जाति चली व्रज ठाकुर पै ठुमका ठुमकी ठुमकी ठकुराइन। (पद्माकर)

ठुमकारना : क्रि० स० १. उँगली से डोरी खींचकर झटका देना, थपका देना। २. ठिठक, रुकावट, ३. छोटी, खरी, पूरी।

ठुमरी : सं० स्त्री० १. छोटा सा गीत, दो बोलों का गीत, वह गीत जो केवल एक स्थान और एक ही अंतरे में समाप्त हो। यौ०-सिर परदा ठुमरी —एक ठुमरी जो अडाताल पर बजाई जाती है। उ० छोटा धौरा सुढंग नाचता बाकी ठुमरी गाता था। (प्रे० स० ४०६) २. उड़ती खबर, अफवाह।

ठुरियाना : क्रि० अ० ठिठुर जाना, सिकुड़ जाना, शीत से अकड़ जाना।

ठुर्री : सं० स्त्री० वह भुना हुआ दाना जो भुनने पर न खिले।

ठूँठ : सं० पु० सूखा पेड़, निरस, असुन्दर, खराब। उ० ठिगना ठूँठा कुबड़ा, बौना ढाँचा लिये विधाता को कोसता रहा। (बाबा० २१)

ठूठी : सं० पु० राज-जामुन नामक वृक्ष।

ठूड़ाड़ी : सं० पु० एक सर्प जिसकी पीठ पर छोटे-छोटे बाल और मुँह पर दाढ़ी होती है। (ब्र०श०)

ठूनू : सं० पु० पटवों की वह टेढ़ी कील जिस पर वे गहने अंटका कर उन्हें गूंथते हैं।

ठूसना : क्रि० स० १. कसकर भरना, २. घुसेड़ना, ३. खूब पेट भर खाना।

ठेंगना : वि० छोटा, नाटा। (सौ अजान० ७७)

ठेंगा : सं० पु० अँगूठा, सिगट्ट, चिढ़ाने के लिए अँगूठा दिखाने की क्रिया, कुदका। उ० मैंने फैसला किया कि चोट लगे तो ठेंगे से लगे। (आधा० २१)

ठेंठड़ : सं० स्त्री० रुई, तूल कपास या कपड़े का बना फोहा। उ० और कान में ठेंठड़ खोंस के बहुआ चली गई। (बूंद० २२)

ठेंठी : सं० स्त्री० १. पुराना हल, २. कान की मैल का लच्छा, ३. कान के छेद में लगाई हुई रुई आदि की डाट, ४. शीशी बोतल आदि की डाट।

ठेक्वाबाँस : सं० पु० एक प्रकार का बाँस जो छाजन तथा चटाई के काम आता है देवबाँस।

ठेका : सं० पु० जिम्मा। उ० ठेका या व्रज को तेरे माथ कौन दयो। (भा० २।३६६)

ठेकाई : सं० स्त्री० कपड़ों की छपाई में काले हाशिये की छपाई।

ठेगड़ी : सं० पु० कुत्ता (डिंगल)

ठेठ : वि० १. निपटा, निरा, बिल्कुल। २. खालिस, जिसमें मिलावट न हो जैसे ठेठ हिंदी। ३. शुद्ध, निर्मल उ० मैं उपकारी ठेठ का सत गुरु दिया सुहाग। (कबीर) ४. ।ारंभ, शुरू। उ० मैं ठेठ

से देखता आता हूँ कि आप मुझको देख कर जलते है। (श्रीनिवासदास)

ठेप : सं० स्त्री० सोने चाँदी का इतना बड़ा टुकड़ा जो अंटी में आ सके।(सुनार)

ठेल-पेल : सं० स्त्री० भीड़भाड़, जैसे मेले में बड़ी ठेल-पेल थी।

ठेल : सं० पु० जिस गाड़ी में सामान ढोया जाय। उ० सरदार अपना ठेला लेकर बाहर गये हुये थे। (बूंद० ८)

ठेस : सं० स्त्री० चोट, मानसिक आघात। उ० महालक्ष्मी के दिल को ठेस-सी लगी। (टे० मे० रा० १६१)

ठेही : सं० स्त्री० मारी हुई ईख।

ठेंकर : सं० पु० नीबू का सा एक खट्टा फल जिसे हल्दी के साथ उबालकर हलका पीला रंग बनाते है।

ठोंठा : सं० पु० एक कीड़ा जो ज्वार बाजरा और ईख को हानि पहुँचाता है।

ठोकचा : सं० पु० आम की गुठली के ऊपर का कड़ा छिलका।

ठोकर : सं० स्त्री० धक्का, ठिक्करिया, उ० ठोकर खाकर गिर पड़े। (प्र० ग्र० १८४)

ठोकरी : सं० स्त्री० वह गाय जिसे बच्चा दिए कई महीने हो चुके हों।

ठोकवा : सं० पु० मीठा मिले हुए आटे की मोटी पूरी, गुना। जो ठोंक-ठोंक कर बनाया जाय। खपरैल को भी कहते हैं।

ठोका : सं०पु० स्त्रियों के हाथ का एक गहना जो चूड़ियों के साथ पहना जाता है। एक प्रकार की पछेली।

ठोड़ी : सं० स्त्री० चिबुक, ठुड्डी। उ० भोंह धनुक तिल काजर ठोड़ी। (जा०४६६।६)

ठोर : सं० पु० १. एक प्रकार की मिठाई या पकवान जो मैदे की मोयनदार बढ़ाई हुई लोई को घी में तलने तथा चाशनी में पकाने से बनता है। २. चोंच। उ० ते ओइ मच्छ ठोर गहि लेहीं। (जा०१४८।५)

ठोला : स० पु० १. रेशम फेरने वालों का एक औजार जो लकड़ी की चौकोर छोटी पटरी के रूप में होता है। २. मनुष्य, आदमी (स्त्री० ठोली)

ठोस : सं० स्त्री० १. कुढ़न, डाह। उ० इक हरि के दर्शन बिनु मरियत अरु कुब्जा के ठोसनि (सूर०)२. कठिन, शुद्ध, कड़ी, वजनी, भारी।

ठोसा : स० पु० अँगूठा, हाथ का ठेंगा। मुहा० ठोसा दिखाना, इनकार करना।

ठौर : सं० पु० स्थान। टेढ़ाई की सब ठौर इज्जत है (प्र० ग्र० ५७)

ठ्यापा : वि० उपद्रवी, शरारती, उतपाती।

डंकी : सं० स्त्री० १. कुश्ती का एक पेच २. मलखंभ की एक कसरत, ३. दाल या साग चलाने का एक चमचा।

डंख : सं० पु० पलाश, ढाक।

डंग : स० पु० अधपका छुहारा।

डंगम : सं० पु० एक पेड़ जो दार्जिलिंग के आसपास तथा खसिया की पहाड़ियों में अधिक मिलता है। इसकी लकड़ी भीतर से भूरी बहुत कड़ी और मजबूत निकलती है।

डंगर : सं० पु० चौपाया जैसे गाय, भैंस आदि।

डंगारा : सं० पु० शहद की मक्खियों का समूह; या शहद की मक्खी जो बड़ी होती है।

डंगरी : सं० स्त्री० एक प्रकार का मोटा बेंत जो पूर्वी हिमालय सिक्किम भूटान से लेकर चटगांव तक होता है। इसमें

से छड़ियाँ व डंडे निकलते हैं। टोकरे बनाने के काम में भी यह आता है।

डंगवारा : सं० पु० चौपाये आदि की वह सहायता जिसे किसान एक दूसरे को देते हैं। जिता।

डंगोरी : सं० स्त्री० एक पेड़ जिसकी लकड़ी मजबूत और चमकदार होती है। सजावट के सामान अच्छे बनते हैं।

डंडल : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली जो पानी के ऊपर अपनी आँखें निकाल कर तैरती है इसकी लंबाई १८ इंच होती है।

डंड़हरा : सं० स्त्री० एक छोटी मछली जो तीन इंच की होती है।

डंडहरी : सं० स्त्री० एक मछली जो असम, बंगाल, उड़ीसा और दक्षिण भारत की नदियों में पायी जाती है।

डँवरुआ : सं० पु० बात का एक रोग जिसमें शरीर के जोड़ जकड़ जाते हैं और उनमें दर्द होता है। गठिया। उ० अहंकार अति दुखद डँवरुआ। दंभ कपट मद मान नहरुआ। (तुलसी)

डउ : वि० डीलडौल वाला, वयस्क।

डकरा : सं० पु० काली मिट्टी जो ताल की चंदिया में पानी सूख जाने पर निकलती है और जिसमें दरारें फटी होती हैं।

डकार : सं० स्त्री० भोजन के बाद आने वाली हिचकी, जो पेट भर जाने का द्योतक होती है। मुहा० डकार जाना, जैसे तुमने मेरे रुपये डकार लिए।

डकूरा : सं० पु० बवंडर, चक्रवात।

डकौत : सं० पु० भड्डर, सामुद्रिक ज्योतिष आदि का ढोंग रचने वाला।

डगर : सं० पु० मार्ग, रास्ता। उ० कुत्ता डगरे डगर कहायो। (भा० २।२७८)

डगरा : सं० पु० बाँस की पतली फट्टियों का निर्मित छिछला बरतन। छिछला डला, डालरा, छावड़ा।

डग्गर : सं० पु० कुत्ते या भेड़िये की तरह का एक माँसाहारी पशु।

डग्गा : सं० पु० लम्बी टाँगों वाला दुबला घोड़ा।

डट : सं० पु० निशान, चिह्न।

डड़ही : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली।

डढौर : सं० पु० पशुओं के पैरों में बाँधी जाने वाली रस्सी। (ब्र० श०)

डपट : सं० स्त्री० तेज चाल, घोड़े की तेज चाल, सरपट चाल।

डपटना : क्रि० स० डाँटना, फटकार देना।

डप्पू : वि० बहुत बड़ा, बहुत मोटा।

डफ : सं० पु० वाद्य विशेष। उ० नामहि ले ले डफ अरु बेनु बजाय। (भा० २।३९९)

डबडबाना : क्रि० अ० आँखों में पानी आना, दुःख से आर्त होना। उ० पूरी की आँखें डबडबा गई थीं।

(झूठा० १।११५)

डबरा : सं० पु० पोखर, छोटी तलैया, गड़ही। उ० न इनार है, न पोखर है, न डबरा न चभच्चा। (बल० ४६)

डबला : सं० पु० मिट्टी का पोरवा, कुल्हड़, चुक्कड़।

डबिरना : क्रि० स० खेत में से भेड़ों को निकाल लाना। (गड़रियों की बोली)

डब्बा : सं० पु० १. ढक्कनदार छोटा गहरा बरतन जिसमें चीजें सुरक्षा की दृष्टि से रखी जाती हैं। २. रेलगाड़ी का डब्बा।

डब्बी : सं० स्त्री० पीतल या टीन की छोटी और गहरी वस्तु जिसमें विविध प्रकार की वस्तुएँ रखी जा सकती हैं।

डभकना : क्रि० अ० डवडवाकर वहना। वदन पियर जल डभकहि नैना। (जा० २११।४)

डभका : सं० पु० भुना हुआ मटर या चना जो फूटा न हो।

डभकौरी : सं० स्त्री० उर्द की पीठी की बरी जो विना तले हुए कढ़ी में डाल दी जाती है। डुभकी। डुंभुकौरी। उ० पगौरा राइता पकौरी। डभकौरी मुंगछी सुठि सौरी। (जायसी)

डस : सं० स्त्री० १. एक प्रकार की शराव, रम। २. तराजू की डोरी जिसमें पलड़े वँधे रहते हैं, जोती। ३. कपड़े के थान का छोर जिसमें ताने और वाने के पूरे तागे नहीं वुने रहते।

डहक : वि० छह की संख्या। (दलाली)

डहकना : क्रि० अ० छितराना, छिटकना, फैलना। उ० चंदन कपूर जलधौत कलधौत धाम उज्जल जुसहाई डहडही डहकत है। (देव)

डहकना : क्रि० स० १. छलकाना, धोखा देना, ठगना, जटना। उ० डहकि-डहकि परचेहु सव काहू। अति असंक मन सदा उछाहू। (तुलसी) २. किसी वस्तु को देने के लिए दिखाकर न देना। ललचाकर न देना। उ० खेलत खात परस्पर डहकत छीनत कहत करत रुगदैया। (तुलसी)

डहकलाय : वि० सोलह की संख्या। (दलाली)

डहकाना : क्रि० स० खोना, गँवाना, नष्ट करना। उ० वाद-विवाद यज्ञ व्रत साधै, कतहूँ जास जन्म डहकावै। (जायसी)

डहकाना : क्रि० अ० धोखे में आना, वंचित होना, जैसे इस सौदे में तुम डहका गए। (क) इनके कहे कौन डहकावै ऐसी कौन अजानी। (सूर) (ख) डहके ते डहकाइबो भलो जो करिय विचार। (तुलसी)

डहडही : वि० सुन्दर, हरी, ताजी। उ० हाथों की डहडही चूरियाये कूंच-कूंच कर चूर करती। (प्रे० स० २।१८६)

डाँकना : क्रि० अ० लाँघना। उ० उमर में वह ५० से ऊपर डाँक गई थी। (सौ अजान०)

डाँगर : सं० पु० (प्रा० ढोंगर, घूमने वाला पशु) १. चौपाया, ढोर, गाय, भैंस आदि। उ० फिर चमरौटी के पूरव खेत में डाँगर खलियाता। (अलग०वै०२३४) २. मरा हुआ चौपाया (पूरव) मुहा० डाँगर घसीटना, अशुचि कर्म करना। ३. एक नीच जाति का नाम। ४. पैर वाले कुएँ के किनारे लगी हुई एक भारी और मोटी लकड़ी (ब्र०श०)। ५. खेत की मेंड़। (क० पु० ८३) वि० १. दुवला-पतला, जिसकी हड्डी-हड्डी निकली हो। २. मूर्ख, जड़, गावदी।

डाँट : सं० स्त्री० फटकार, कान्सिटेवल की डाँट से मुंह से तमाखू गिर पड़ी। (प्र० ग्र० ४४६)

डाँड़ : सं० पु० पाखे की छोटी दिवाल, ओटा। (ब्र० श०), (दे० ना० १।६१)

डाँडा शहेल : सं० पु० एक प्रकार का साँप जो वंगाल में होता है।

डाँबू : सं० पु० एक प्रकार का नरकट जो दलदल में पैदा होता है।

डाँसपाहिड़ : सं० पु० संगीत की रुद्र ताल के ग्यारह भेदों में से एक, जिसमें पाँच आघात के वाद एक खाली होता है।

डाँसर : सं०पु० इमली का वीज, चियाँ।

डाकर : सं०पु० तालों की वह मिट्टी जो पानी सूख जाने पर चिटखकर कड़ी हो जाती है।

डागुर : सं० पु० जाटों की एक जाति।

उ० डागुर पछाँदरे धरि मरोर, वहु जट्ट ठट्ट वड़े सजोर। (सूदन)

डाड : सं०पु० जवरदस्त, हठी, दुष्ट, गुंडा। उ० डाडों से वाह (वास्ता) पड़ गया होगा। (झूठा० २।१४०)

डाभ : सं० पु० नारियल (कच्चा)।

डाभेचा : सं०पु० खेत में खड़ा किया हुआ मचान जिस पर से खेत की रखवाली की जाती है। मैंड़ा, मांचा।

डामर : सं०पु० १. साल वृक्ष का गोंद, राल। २. एक प्रकार का गोंद या कहरुआ जो पश्चिमी घाट के पहाड़ों पर होने वाले एक पेड़ से निकलता है और सफेद डामर कहलाता है। ३. कहरुआ की तरह का एक प्रकार का लसीला राल या गोंद जो छोटी मधुमक्खियों के छत्ते से निकलता है। ४. वह छोटी मधुमक्खी जो इस प्रकार का राल वनाती हैं। ५. सड़क आदि पर डाला जाने वाला काला लसीला पदार्थ जिसे कोलतार कहते हैं।

डाल : सं० स्त्री० १. शाखा, टहनी। २. पिटारा। लौ पूरि भरि डाल अछूती। (जा० ५८६।३)

डाली : सं०स्त्री० १. शाखा। २. हाकिमों को दी जाने वाली घूस या उपहार।

डावड़ा : सं०पु० पिठवन।

डावर : सं०पु० लड़का, पुत्र। उ० दशरथ को डावरो साँवरो व्याहे जनक कुमारी। (तुलसी)

डाहुक : सं०पु० एक पक्षी जो टिटिहरी के आकार का होता है और जलाशयों के निकट रहता है। (विद्यापति)

डिंगर : सं०पु० वह काठ जो नटखट चौपायों के गले में वाँध दिया जाता है। ठिंगुरा। उ० कविरा माला काठ की पहिरी मुंगद डलाय। सुमिरन की सुध है नहीं ज्यों डिंगर वाँधी गाय। (कवीर)

डिंड़सी : सं० स्त्री० टिंडा, तरकारी विशेष। उ० तोरई चिंचिडा डिंड़सी तरे—(जा० ५४८।४)

डिंगसा : सं० पु० एक प्रकार का पेड़ जिससे वहुत वढ़िया गोंद या राल निकलती है। तारपीन का तेल भी इससे निकलता है।

डिकरना : क्रि०अ० चिल्लाना, पुकारना, कराहना। उ० जैसे ही नेपाली सिपाही ने उसकी कलाई पकड़ी, वह जोर-जोर से डिकरने लगी। (मैला० ३०१)

डिकामाली : सं० पु० एक पेड़ जिसका गोंद मृगी रोगी को दिया जाता है। इसके लगाने से घाव जल्दी सूख जाता है और उस पर मक्खियाँ नहीं बैठतीं।

डिगवा : सं०पु० एक चिड़िया का नाम।

डिग्गा : सं० पु० वाद्य विशेष, इसे प्रायः संथाली वजाते हैं। उ० लेकिन मानर और डिग्गा की आवाज कभी मन्द नहीं हुई। (मैला० १०६)

डिग्गी : सं० स्त्री० हिम्मत, साहस, जिगरा।

डिड़ई : सं०पु० एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

डिड़वा : सं०पु० डिड़ई नामक धान जो अगहन में तैयार होता है।

डिढोरा : सं०पु० सूचना, किसी व्यक्ति से डिढोरा पिटाना, सूचना देने की क्रिया।

डिढ्या : सं० स्त्री० अत्यन्त लालच, लालसा, कामना, तृष्णा। उ० संग्रह करने की लालसा प्रवल हुई तो जोरी से, चोरी से, छल से, खुशामद से कमाने की डिढ्या पड़ेगी और खाने खर्चने के नाम से जान निकल जाएगी। (श्रीनिवासदास)

डिभ : सं०पु० पास, समीप, जैसे, मेरे डिभ

आजा।

डिभगना : क्रि० स० मोहित करना, छलना, डहकना। उ० माया के डिभगे सब राजा। उत्तम मध्यम बाजन बाजा। (तुलसी)

डिभरी : सं० स्त्री० छोटी डिब्बी जिसमें तेल भरकर प्रकाश करते हैं।

डिला : सं०पु० एक प्रकार की घास जो गीली भूमि में उत्पन्न होती है। मोथा।

डिहरी : सं० स्त्री० गाँठों का एक मान जिसके अनुसार कालीनों (गलीचों) का दाम लगाया जाता है।

डींग : सं० स्त्री० लम्बी-चौड़ी बात, बढ़चढ़कर कही हुई बात, शेखी, उ० आए हुए नायक की डींग सुनिए—(प्रे० स० ४३८) मुहा० डींग मारना, शेखी बघारना।

डीक : सं० स्त्री० झिल्ली या फाँकी जो आँख पर पड़ जाती है। जाला-मोतिया-बिंद।

डीकी : सं०स्त्री० सींक की बड़ी डलिया। (ब्र०श०)

डीबुआ : सं०पु० पैसा। उ० बबुआ न आवा, मोर भैयन न पावा याक तुपक को लावा गाँठि डीबुआ न छावा है। (सूदन)

डील : सं०पु० १. प्राणियों के शरीर की ऊँचाई, विस्तार, कद या उठान। यौ० डील-डौल। २. देह की लंबाई, ढाँचा। उ० कायस्थ क्षत्री नहीं पर डील-डौल। (प्र०ग्र० १५५) उ० जेते डील तेते हाथी ते तई खवास साथी कंचन के कुंडल किरीट पुंज छायी है। (हृदयराम)

डीला : सं०पु० एक प्रकार का नरकट जो प्रायः पश्चिमोत्तर भारत में पाया जाता है।

डीह : सं०पु० स्थान, जमीन, भूमि। उ० बहुत हुआ तो दो-चार धुर की डीह, दो-एक मड़ैया। (बल० ५३)

डुंगा : सं०पु० १. रेतीला टीला (ब्र०श०)। २. गहरा, जैसे यहाँ पानी बड़ा डुंगा है।

डुगरना : क्रि० अ० लुढ़कना, ढरकना। उ० तभी तो डुगरते-डुगरते गली में आ गई। (अलग० वै० २५६)

डुड़का : सं० पु० धान के पौधों का एक रोग।

डुडला : सं० पु० एक प्रकार का वृक्ष, दूदला।

डुमई : सं० स्त्री० एक प्रकार का चावल जो कछार में होता है।

डूंगा : सं० पु० संगीत की २४ शोभाओं में से एक।

डूंगी : वि० गहरी, नीची। उ० डूंगी गली के सामने एक टाँगा रास्ता रोके खड़ा था। (झूठा० १।२४१)

डूंज : सं०स्त्री० आँधी,तेज हवा।(डिंगल)

डूक : सं० स्त्री० पशुओं के फेफड़ों की एक बीमारी।

डूकना : क्रि० अ० घुसना, ढुकना।

डूकना : क्रि० स० चूकना, त्रुटि करना।

डूमरी : सं० स्त्री० प्याज, पलांडु। (गुजराती)

डेंढा : सं० पु० एक पनिहा साँप।

डेक : सं० पु० महानिंब, बकायन।

डेढ़िया : सं० पु० एक बहुत ऊँचा पेड़ जिसकी लकड़ी मकानों में लगाने तथा चाय के संदूक और खेती के सामान (हल, पाटा आदि) बनाने के काम आती है। यह पेड़ पुआले की जाति का है।

डेबरी : सं० स्त्री० खेत का वह कोना जो जोतने में छूट जाता है। कोंतर।

डेरा : सं० पु० एक छोटा जंगली पेड़ जिसकी लकड़ी सजावट के सामान बनाने के काम आती है। इसकी छाल और जड़ साँप काटने पर पिलाई जाती है। घरौली।

डेल : सं० पु० १. मिट्टी या पत्थर का डेला, ढीम।२. वह डला जिसमें बहेलिये पक्षी आदि बंद करके रखते हैं। उ० कित नैहर पुनि आउब कित ससुरे यह खेल। आपु आपु कहाँ होइहि परब पंखि जस डेल। (जायसी) ३.कटहल की तरह का एक बड़ा पेड़ जिसके बीजों का तेल दवा और जलाने के काम आता है।

डैगना : सं० पु० काठ का लंबा टुकड़ा जो नटखट चौपायों के गले में इसलिए बाँध दिया जाता है जिससे वे भाग न सकें। ठेंगर, लंगर।

डैना : सं० पु० पक्षियों के पर जिनसे वे उड़ते हैं।

डैल : सं० पु० वह कपड़ा जब रंग दिया जाता है। (ब्र०श०)

डोंका : सं० पु० पानी का एक जीव, जिसे निम्नकोटि के लोग खाते हैं। उ० खरगोश, कछुआ और डोंका—सब कुछ खाता था। (बाबा० ६६)

डोंगर : सं० पु० पहाड़, डुंगर, डूंगर, छोटी पहाड़ी।

डोंड़ा : सं० पु० १. बड़ी इलायची। २. टोंटा, कारतूस। उ० भरि बंदूक अठारह छोड़े। इतने उदिय होय तब डोंड़े। (हनुमान)। ३. किसी वस्तु का छिलका, जैसे अफीम का डोंड़ा।

डोई : सं० स्त्री० लकड़ी का चम्मच। (ब्र०श०)

डोक : सं० पु० छुहारा जो पककर पीला हो जाए। पकी खजूर।

डोकर : सं० पु० (स्त्री० डोकरी) बुड्ढा, बुड्ढी, डोकरा, डुकरिया। १. बूढ़ा आदमी, अशक्त। २. पिता, बाप।

डोड़हा : सं० पु० पानी का साँप, ढोढ़ा, पनिया साँप। उ० 'डोड़हा रहा।' वह बोले, ओमे जहर ना होता।(आधा०४९)

डोड़ी : सं० स्त्री० एक लता जो औषध के काम आती है। वैद्यकानुसार यह मधुर, शीतल, नेत्रों को हितकारी, त्रिदोषनाशक और वीर्यवर्द्धक मानी जाती है। जीवंति।

डोभरी : सं० स्त्री० ताजा महुआ।

डोभा : सं० पु० एक प्रकार का सर्प।

डोम : सं० पु० एक श्वपच जाति, मुर्दा जलाने का कर लेने वाला।

डोमसाल : सं० पु० मझोले आकार का वृक्ष जिसे गीदड़रुख भी कहते हैं।

डोरही : सं० स्त्री० बड़ी कटाई, बड़ी भटकटैया।

डोरा : सं० पु० १. रूई, सन, रेशम आदि का धागा, तागा। २. धारी, लकीर, जैसे कपड़ा हरा है, बीच-बीच में लाल डोरे हैं। ३. आँखों की बहुत महीन लाल नसें। ४. तलवार की धार। ५. तपे घी की धार जो दाल आदि में ऊपर से डालते समय बँध जाती है। ६. एक प्रकार की करछी जिसकी डाँड़ी खड़े बल लगी होती है और जिससे घी आदि निकालते हैं। ७. स्नेहसूत्र, लगन, प्रेमबंधन। ८. अनुसंधान सूत्र, सुराग। उ० जुवति जोन्ह में मिलि गई नेकु न देति लखाय। सौंधे के डोरे लगी अली चली संग जाय। (बिहारी) ९. काजल या सुरमे की रेखा।

१०. नृत्य में कंठ की गति, नाचने में गरदन हिलाने का भाव।

डोरी : सं० स्त्री० पतली रस्सी जिससे पानी आदि भरा जाता है। उ० बँधे प्रेम की डोरी। (भा० २।४६६)

डोल : सं० पु० १. एक प्रकार की काली मिट्टी जो बहुत उपजाऊ होती है। २. खेतों में मिट्टी की छोटी दीवाल। ३. जाल, मछलियों को पकड़ने का पाश। उ० हम लोग जाल को डोल कहते हैं। (सा० ल० म० २८)

डोल-डाल : सं० पु० १. चलना-फिरना। २. दिसा या पाखाना के लिए जाना। उ० हम डोल-डाल से हो आएँ। (मैला० ३५)

डोलू : सं० स्त्री० १. रेंवद चीनी। इसका पेड़ कांगड़ा, नेपाल, सिक्किम आदि स्थानों में होता है। इसकी जड़ पीली-सी होती है। पदमचल, चुकरी। २. एक प्रकार का बाँस जो पूर्वी बंगाल, असम, भूटान तथा वर्मा में होता है इसके चोंगे, टोकरे और पान रखने के डले आदि बनाए जाते हैं।

डोंरा : सं० पु० एक घास जो खेतों में पैदा होती है। इसमें साँवा की तरह दाने लगते है जो खाने में कड़ुवे होते हैं।

डोआ : सं० पु० काठ का चमचा, काठ की डाँड़ी की बड़ी करछी। उ० लकड़ी डोआ करछली सरस काजु अनुहारि। सुप्रभु संग्रहहि परिहरहि सेवक सखा विचारि। (तुलसी)

डोर : सं० स्त्री० डोल, डोल, खेत की मेंड़। उ० खेतों के बीच की डोर ढह गई थी। (क० पु० ८३)

डोल : सं० पु० १. किसी रचना का प्रारंभिक रूप, ढाँचा, डोल, ढड्ढा। मुहा० डोल डालना—ढाँचा खड़ा करना। २. बनावट का ढंग, रचना, प्रकार, ढव। जैसे—इसी डोल का गिलास मेरे लिए बना दो। ३. तरह, प्रकार, भाँति, किस्म। ४. अभिप्राय, साधन की युक्ति, उपाय, तदवीर। ५. रंगढंग, लक्षण, आयोजन। उ० और कोई डोल न हो तो सेर दो सेर दूध पीकर पड़े रहते (गि० दी० ८६)। ६. बंदोवस्त में जमा का तकदमा, तखमीना। ७. खेतों की मेंड़। डोल।

डोल ढाक : सं० पु० पंगरा नामक वृक्ष जिसकी लकड़ी के तख्ते बनते हैं।

डोंवर : सं० पु० एक चिड़िया जिसके पर, छाती और पीठ सफेद तथा दुम काली और चोंच लाल होती है।

ढंग : सं० पु० १. क्रिया, प्रणाली, पद्धति, शैली, रीति, ढव और तरीका। जैसे—जिस ढंग से तुम काम करते हो वह बहुत अच्छा है। २. प्रकार, भाँति, तरह, किस्म। ३. रचना, बनावट, गठन, ढाँचा। ४. अभिप्राय, साधन का मार्ग, उपाय, तदवीर, डोल। उ० वाही के जैए बसाय लौ बालम। हैं तुम्हें नीको बतावति हौ ढंग। (देव) ५. चाल-ढाल, आचरण, व्यवहार। ६. धोखा देने की युक्ति, बहाना, पाखंड। यौ० रंग-ढंग अच्छा नहीं लगता। ७. लक्षण, आभास, आसार। ८. दशा, अवस्था, स्थिति। उ० नैनन को ढंग सो अनंग पिचकारिन तें, गातन को रंग पीरे पातम तें जानवी। (पद्माकर)

ढँकना : क्रि० स० आवृत्त करना, आवरण देना। (भा० २।११३)

ढंढमंढ : वि० बेकार, अनुपयुक्त, खराब। उ० और इधर पन्द्रह-बीस साल से

ढंढमंढ पड़ी थी। (बल० २१)

ढँढोरना : क्रि० स० खोजना। उ० तह लगि हेरौ समुंद ढँढोरी। (जा० १४६।७)

ढक पेड़रु : सं० पु० एक चिड़िया का नाम।

ढकोसला : सं० पु० आडम्बर, दिखावट। उ० सब पंडितों का ढकोसला है। (प्र० ग्र० ३३३)

ढक्की : सं० स्त्री० पहाड़ की ढाल जिससे होकर लोग चढ़ते-उतरते हैं। (पंजाब)

ढड्ढा : वि० आवश्यकता से अधिक बड़ा और बेढंगा।

ढपलू : वि० कमजोर, फुसफुसा, भेंसा, पोला। उ० दो-चार ढपलू रईस और अफसर लोग। (वृंद० ३८४)

ढपोलसंग : सं० पु० बेकार, मूर्ख, भोंदू।

ढप्पू : वि० बहुत बड़ा।

ढब : सं० पु० तरीका, विधि। उ० सुबह कुछ ढब से चेतन के साथ इस बात की चर्चा करेंगे। (गि०दी०२५१)

ढबुआ : सं० पु० १. खेतों के मचान के ऊपर का छप्पर। २. पैसा।

ढमलाना : क्रि० स० लुढ़काना।

ढरका : सं० पु० १. आँख का एक रोग जिसमें आँख से आँसू बहा करता है। २. सिर पर कलम की तरह छीली हुई बाँस की नली जिससे चौपायों के गले में दवा उतारते हैं। ३. बाँस की नली से चौपायों के गले में दवा उतारने की क्रिया।

ढरहरी : सं० स्त्री० पकौड़ी। उ० रायभोग लिए भात पसाई। मूँग ढरहरी हींग लगाई। (जायसी)

ढर्रा : सं० पु० नियम, परम्परा, स्वभाव। उ० जीवन में उस..ा जो ढर्रा था। (झूठा० १।३६५)

ढवरी : सं० स्त्री० धुन, ढोरी, लौ, लगन, रट। उ० सूरदास गोपी बड़ भागी हरिदरसन की ढवरी लागी। (सूर०)

ढाँक : सं० पु० कुश्ती के एक दावँ का नाम।

ढाँख : सं० पु० ढाक का वृक्ष, ढाक का जंगल। उ० जिउलै उड़ा ताकि बन ढाँखा। (जा० ६६।२)

ढाँग : वि० ढालूदार, ढालू।

ढाँचा : सं० पु० १. किसी वस्तु की प्रारंभिक अवस्था का रूप। ठाट, ठट्ठर। जैसे, अभी तो इस पालकी का ढाँचा खड़ा हुआ है। २. भिन्न-भिन्न रूपों से परस्पर जोड़े हुए लकड़ी आदि के बल्ले या छड़ जिन पर कोई वस्तु जमाई या जड़ी जा सके। ३. पंजर, ठठरी। ४. चार लकड़ियों का बना हुआ वह खड़ा चौखटा जिसमें जुलाहे नचनी लटकाते हैं। ५. रचना, प्रकार, गढ़न, बनावट। ६. प्रकार, भाँति, तरह।

ढाँपना : क्रि० स० ढकना। उ० बोलो भी तो मुँह को हाथ से ढाँप लिया करो। (भ० नि० १००)

ढाक : सं० पु० जंगल में होने वाला एक बड़ा वृक्ष।

ढाकापाटन : सं० पु० एक प्रकार का फूलदार महीन कपड़ा।

ढाढ़स : सं० स्त्री० सन्तोष, धैर्य, शान्ति, तृप्ति। उ० यह देखकर उसे ढाढ़स हुई। (वृंद० ९८)

ढाढ़ी : सं० पु० (स्त्री० ढाढ़िन) एक प्रकार के नीच गवैये जो जन्मोत्सव के अवसर पर लोगों के यहाँ जाकर बधाई आदि के गीत गाते हैं। उ० ढाढ़ी और ढाढ़िन गावैं हरि के ठाड़े बजावैं हरसि

असास देत मस्तक नवाइ के। (सूर०)

ढाबा : सं० पु० १. ओलती। २. जाल। ३. परछत्ती। ४. रोटी की दुकान, वह दुकान जहाँ लोग दाम देकर भोजन करते है। उ० रोटी की महक अनुभव हुई और ढाबा दिखाई दे गया। (झूठा० २।१०)

ढामना : सं० पु० एक प्रकार का सर्प।

ढाल : सं० पु० तलवार आदि के वार को रोकने का यंत्र, जो गैंडे या कछुए की खाल से तैयार होता है।

ढालना : क्रि० स० १. गिराना। २. डुलाना। उ० गवन गयंद ढाल जनु बाँही। (जा० ४६३।३)

ढावली : सं० पु० कबूतरों के रहने का स्थान जो लकड़ी आदि का बना होता है। उ० कबूतरों की ढावली की भाँति सिकुड़-सिकुड़ाय के रहेंगे। (भ०नि०६५)

ढासना : क्रि० अ० सहारा लेना, टेक लगाना, ठेकना। उ० तकिये पर ढासना लगाते हुए महिपाल ने अकड़कर कहा— (वूंद० १०५)

ढाहना : क्रि० स० गिराना। उ० ढाहे गढ़ बहु करि जय टेकन। (भा०२।८०३)

ढिकचन : सं० पु० गन्ने का एक भेद।

ढिग : सं० पु० पास, समीप। उ० (क) अनुज सहित मिलि ढिग वैठारी (भा० ५।४६।२)। (ख) तुम्हारे ढिग सों (भा० २।६४)।

ढिच्चर : सं० पु० ढीला-ढाला, अस्त-व्यस्त, उ० ढिच्चर-ढिच्चर होने लगे। (प्र० ग्र० ५८५)

ढिपुनी : सं० स्त्री० १. फल या पत्ते के साथ लगा हुआ टहनी का पतला नरम भाग। २. किसी वस्तु के सिरे पर दाने की तरह उभरा हुआ भाग। ३. कुच का अग्र भाग। वोंड़ी।

ढिबरी : सं० स्त्री० छोटी डिब्बी, टीन का छोटा डिब्बा जिसमें तेल डालकर जलाने के काम लिया जाता है। उ० ढिबरी की रोशनी में सहदेव मिसिर फुलिया की आँखों की नई भाषा को पढ़ता है। (मैला० १७९)

ढिल्ला : सं० पु० एक धान जो आकार में बड़ा तथा स्वादिष्ट होता है। (व्र०श०)

ढीट : सं० स्त्री० रेखा, लकीर, डंडीर। उ० ढीट मेट देऊँ फिर ढीट ही मिलाय लेऊँ ह्वै है बात सोई भगवंत जू को भावती। (हनुमान)

ढीड़ : सं० स्त्री० गन्दगी, मैला, कीचड़। उ० आँखों के कोने में ढीड़ चिपक रहे थे। (सा० ल० म० २६८)

ढीम : सं० पु० १. पत्थर का बड़ा टुकड़ा, पत्थर का ढोका। उ० सिला ढीम ढाहे इलाबीर बाहें घड़ा घड्ड सद्दै भड़ा भड्ड ह्वै है।(सूदन) २. मिट्टी की पिंडी।

ढीमड़ो : सं० पु० कूप, कुआँ (डिंगल)।

ढीमा : सं० पु० ढेला, ईंट-पत्थर आदि का टुकड़ा, ढोका।

ढीलना : क्रि० स० प्रसंग करना, संभोग करना। (बाजारू)

ढीला : क्रि० वि० शिथिल, छिछला, आराम। उ०वीणा का सारा शरीर पुलक से ढीला पड़ गया। (टे० मे० रा० २६७)

ढुंढी : सं० पु० १. बाँह, बाहु, मुसक। मुहा० ढुंढिया चढ़ाना—मुसकें बाँधना। उ० उसने झट उसकी पगड़ी उतार ढुंढिया चढ़ाय मूँछ डाढ़ी और सिर मूँड़ रथ के पीछे बाँध लिया। (लल्लू०) २. भुने हुए अन्न का बँधा हुआ लड्डू। (पूरबी)

ढुआ : सं० पु० ढेर, समूह, मलवे का ढेर। उ० एक ढुआ-सा था। (आधा० २७२)

ढुकना : क्रि० अ० घुसना, प्रवेश करना। २. झुक पड़ना, टूट पड़ना। ३. किसी बात को सुनने या देखने के लिए आड़ में लुकना, घात में छिपना। उ० (क) ढुकी रही जहँ-तहँ सब गोरी (ख) जउ न होत चारा कह आसा। कित चिरिहार ढुकत लेई लासा। (जायसी)

ढुच्च : सं० पु० घूंसा, मुक्का।

ढुरकाना : क्रि० स० लुढ़काना, गिराना। उ० गोला परहिं कोल्हु ढुरकावहि। (जा० ५२३।५)

ढुलुआ : सं० स्त्री० खजूर की बनी हुई चीनी।

ढुवारा : सं० पु० घुन नामक कीड़ा।

ढूंढ़ी : सं०स्त्री० १. किसी चीज का गोल पिंड या लौंदा। २. भुने हुए आटे आदि का बड़ा गोल लड्डू जो प्रायः देहाती लोग खाते हैं।

ढूकना : क्रि० अ० प्रवेश करना, आना। उ० हस्ती घोर आइ जो ढूका।

ढूका : सं० पु० डंठल घास आदि के बोझ का एक मान जो दश पूले का होता है। (जा० ६३३।७)

ढूढ़ना : क्रि० स० खोजना। (प्रे० स० २।५२)

ढूढिया : सं० पु० श्वेताम्बर जैनों का एक भेद। इस सम्प्रदाय के लोग मूर्ति नहीं पूजते और भोजन और स्नान छोड़कर सदा मुंह पर पट्टी बांधे रहते हैं।

ढूला : सं० पु० छत या दीवाल बनाते समय उपला या किसी वस्तु की बनाई हुई अस्थायी टेक। (व्र० श०)

ढूसर : सं० पु० वनियों की एक जाति।

ढूसा : सं० पु० कुश्ती का एक पेच जिसमें ऊपर आया हुआ पहलवान नीचे वाले की गरदन पर हाथ मारकर उसे चित्त करता है।

ढूह : सं० पु० फसल का ढेर। उ० मैं छवरे की दाईं ओर वाले ढूह के नीचे बैठ गया। (अलग० वै० ४०४)

ढेंकली : सं०पु० (ढेंका—दे० ना०४।१७) खेतों में पानी देने की वह प्रक्रिया जिसमें लम्बी लकड़ी या बल्ली की सहायता से पानी निकाला जाता है। ढेंकुली।

ढेंकी : सं० स्त्री० १. पानी भरने का यन्त्र विशेष, ढेंकली। २. धान कूटने का उपकरण। उ० वहाँ कई ढेंकियाँ खड़ी की गई होंगी। (बावा० २०)

ढेंटी : सं० पु० धव का पेड़।

ढेंढ़वा : सं० पु० १. काले मुंह का बंदर, लंगूर। २. एक पनिहा सांप।

ढेंढ़ : सं० पु० १. कौवा। २. एक नीच जाति जो मरे जानवरों का मांस खाती है। ३. एक नीच जाति, उ० मांस खाय ते ढेंढ सब मद पीवैं सो नीच—कबीर। ४. मूर्ख, मूढ़, जड़।

ढेंढर : वि० दोष, त्रुटि, गलती। उ० महावीर सामी कसम कोई अपना ढेंढर नहीं देखता। (अलग० वै० ६२६)

ढेंप : सं० स्त्री० १. पत्ते व फल का वह भाग जो टहनी से लगा रहता है। २. किसी वस्तु की दाने की तरह उभरी हुई नोक, ठोंठ। ३. कुचाग्र।

ढेड : सं० पु० पानी की लहर, तरंग, हिलोर।

ढेवरी : सं० स्त्री० एक प्रकार का वृक्ष जिसे चौरी, भामरी और रूही भी कहते हैं।

ढेवुक : सं० पु० ढेवुआ, पैसा। उ० यथा ढेवुक मुद्रा जग मांही। हैं सब एक

पदिक सम नाहीं। (विश्राम)

ढेबुवा : सं० पु० पैसा, ताम्रमुद्रा।

ढेर : सं० पु० १. नीचे-ऊपर रखी हुई बहुत-सी वस्तुओं का समूह जो कुछ ऊपर उठा हुआ हो। राशि, अटाला, अंबार, टाल। मुहा० ढेर करना, ढेर रखना, ढेर हो जाना। २. ध्वस्त होना, गिर पड़ जाना।

ढेर : वि० बहुत अधिक ज्यादा।

ढेरना : सं० पु० सूत या रस्सी बटने की फिरकी। क्रि० लपेटना, चरखी द्वारा रस्सी को ऐंठना। (ब्र० श०)

ढेरा : सं० पु० १. सुतली बटने की फिरकी। २. मोट के मुंह पर का लकड़ी या लोहे का घेरा जो मोट का मुंह खुला रखने के लिए लगा रहता है। ३. अकोल का पेड़ (वैद्यक)। ४. जिसकी आँखों की पुतलियां बराबर न रहती हों, भेंगा, अंबरतक्कू।

ढेराढोंक : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली।

ढेंचा : सं० पु० १. चकवंड की तरह का एक पेड़ जिसकी छाल से रस्सियां बनाई जाती हैं। जयंती। २. पान के भीटे पर की छाजन के लिए सन या पटवे का डंठल।

ढोंका : सं० पु० १. पत्थर या और किसी कड़ी वस्तु का बड़ा अनगढ़ टुकड़ा (सौ अजान० ८५)। २.वह बाँस जो कोल्हू में जाट के सिरे से लेकर कोल्हू तक बंधा रहता है। ३. दो ढोली पान, चार सौ पान। (तमोली)

ढोंग : सं० पु० दिखावा, ढकोसला, बनावटी, कृत्रिम। उ० जिसे आप शिष्टता कहते हैं, वह ढोंग है।
(टे० मे० रा० १४३)

ढोई : सं० स्त्री० निर्माण-कार्य, मरम्मत। उ० राजा केरि लागि रहे ढोई।
(जा० ५२६।१)

ढोक : स० स्त्री० १. प्रणाम करने की क्रिया। २. एक प्रकार की मछली जो १२ इंच लम्बी होती है। ढेरी, ढोंक।

ढोटा : सं० पु० लड़का। उ० ढोटा ऐड़ो ही ऐड़ो डोले। (भा० २।५७)

ढोटाना : सं० पु० ढिटौना, नजर न लगने के लिए बच्चों के मुंह पर बना काला चिह्न। (प्रे० स० ५९६)

ढोढ़ा : सं० पु० १. पशु रोग जिसमें वे पतला गोबर करते हैं। २. सर्प, पनिहा साँप। उ० उससे एक ढोढ़ा साँप गर्दन निकालकर फों-फों करने लगा।
(मैला० ५३)

ढोर : सं० पु० पशु, चौपाया। उ० ढोर लौटने लगे थे। (क० पु० २७२)

ढोरना : क्रि० स० डुलाना। उ० चरन पलोटत ढोरत बिजन चौर।
(भा०२।५९९)

ढोरा : सं० पु० एक कीड़ा जो चने में लग जाता है।

ढोल : सं०पु० एक वाद्य विशेष। उ० ढोल के भीतर पोल निकलती जाएगी।
(भ०नि० ७२)

ढोलक : सं० पु० एक ताल वाद्य जिसे घरों में स्त्रियां बजाती हैं। (ब्र० श०)

ढोला : सं० पु० १. बिना पैर का रेंगने वाला छोटा सफेद कीड़ा। २. वह ढूह या छोटा चबूतरा जो गाँवों की सीमा सूचित करने के लिए बना रहता है। यौ० ढोलाबंदी—सीमाबंदी। ३. गोल मेहराब बनाने का डाट, लदाव। ४. पिंड, शरीर, देह। उ० जो लगि ढोला तो लगि बोला तो लगि घन व्यवहार—कबीर।

५. पति, प्यारा, प्रीतम। ६. एक प्रकार का गीत। ७. मूर्ख, जड़।

ढोली : सं०स्त्री० २०० पानों की गड्डी। उ० ढोलिन-ढोलिन पान बिकाना, भीटन के मैंदाना। (कबीर)

ढोवा : सं० पु० धावा, हमला। उ० भा ढोवा गढ़ लीन्ह गरेरी। (जा० ५२४।२)

ढौकना : क्रि० स० पीना (अशिष्ट), ढकोसना।

तंगा : सं० पु० १. एक प्रकार का पेड़। २. पहले का अधन्ना या डबल पैसा।

तंदुआ : सं० पु० एक बारहमासी घास जो ऊसर जमीन में ही जमती है और चारे के काम आती है।

तंदूरी : सं० पु० १. एक प्रकार का रेशम जो मालदा से आता है। इसका रंग पीला होता है। २. एक रोटी जो तंदूर पर सेकी जाती है।

तइक : सं० पु० चमार (सुनारों की बोली)।

तकड़ी : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास जो रेतीली जमीन में बारह महीने खूब पैदा होती है। इसे घोड़े बहुत खाते हैं। चरमरा, हैन।

तकरमल्ही : सं० स्त्री० भेड़ों के ऊपर से ऊन काटने की हँसिया। (गढ़वाल)

तकोली : सं० पु० शीशम की जाति का एक बड़ा वृक्ष। पस्सी।

तगर : सं० पु० एक प्रकार की शहद की मक्खी।

तगसा : सं० पु० वह लकड़ी जिससे पहाड़ी प्रान्तों में ऊन को कातने से पहले साफ करने के लिए पीटते हैं।

तगा : सं० पु० एक जाति जो रुहेलखंड में होती है। ये जनेऊ पहनते और अपने को ब्राह्मण बताते हैं।

तगार तगारी : सं० स्त्री० १. ओखली गाड़ने का गड्ढा। २. हलवाइयों का मिठाई बनाने का मिट्टी का बड़ा बरतन। ३. चूना, गारा इत्यादि ढोने का तसला।

तगासर : सं० पु० एक सर्प जिसका फन नहीं होता।

तड़ंग : वि० मजबूत, हट्टा-कट्टा, तगड़ा, स्वस्थ पुरुष या स्त्री। उ० दो-दो तड़ंग जवान लड़कियाँ थीं। (झूठा० २।४४२)

तड़का : सं० पु० १. सवेरा, प्रातःकाल, उ० मनमोहन सुबह तड़के ही घूमने चला गया था। २. छौंक बघार।
(टे० मे०रा० ३१६)

तड़ाड़ा : सं० पु० आवाज, तुल-तुल की ध्वनि, तेज नल चलने का शब्द। उ० रोने की आवाज, नल का तड़ाड़ा, बाल्टी की खनक। (बूंद० २३)

तड़ापड़ : क्रि० वि० शीघ्र, जल्दी, त्वरा। उ० हम्माद मियाँ अन्दर दाखिल होते वे तड़ापड़ उर्दू बोलने लगतीं।
(आधा० २६३)

ततरी : सं० स्त्री० एक प्रकार का फल-दार पेड़।

तनक : सं० स्त्री० एक रागिनी का नाम जिसे कोई-कोई मेघ राग की रागिनी मानते हैं।

तनवाल : सं० पु० वैश्यों की एक जाति।

तनसल : सं० पु० स्फटिक, बिल्लौर।

तनैला : सं० पु० एक किस्म का छोटा पेड़ जिसके फूल खुशबूदार और सफेद होते हैं।

तपचाक : सं० पु० एक तरह का तुर्की घोड़ा।

तपाक : क्रि० वि० शीघ्रता। उ० लोगों से बड़ा तपाक से मिला।
(गि० दी० १२२)

तपोड़ी : सं० स्त्री० काठ का एक प्रकार का बरतन। (लश०)

तबर : सं० पु० मस्तूल के सबसे ऊपरी भाग में लगाई जाने वाली पाल जिसका व्यवहार बहुत हलकी हवा चलने के समय होता है।

तमरंग : सं० पु० एक प्रकार का नीबू जिसे तुरंज कहते हैं।

तमाई : सं० स्त्री० खेत जोतने के पूर्व उसमें की घास आदि साफ करना।

तमान : सं० पु० एक घेरदार पैजामा जिसकी मोहरी नीचे से तंग होती है।

तरंडा : सं० पु० बंसी की डोरी में काँटे से हाथ डेढ़ हाथ ऊपर काठ का एक छोटा टुकड़ा। (ब्र० श०)

तरकि : सं० स्त्री० क्रोध या गुस्से में होने वाली उत्तेजना। उ० मोपै तरकि तरकि उठे—(भा० २।१५८)

तरकुला : सं० पु० तरकी, कान में पहनने का गहना (स्त्री० तरकुली)। उ० लछिमन संग बर्भ कमल कदंब कहूँ देखी सिय कामिनी तरकुली कनक की— (हनुमान)

तरगुलिया : सं० पु० अक्षत रखने का एक छिछला बरतन।

तरचरवी : सं० स्त्री० एक पौधे का नाम जो सजावट के लिए बगीचों में लगाया जाता है।

तरना : सं० पु० व्यापारी जहाज का वह अफसर जो यात्रा में व्यापार संबंधी कार्यों का निरीक्षण करता है।

तरनाग : सं० पु० एक चिड़िया का नाम।

तरवन : सं० पु० १. कान में पहनने का गहना, तरकी। २. कर्णफूल।

तरा : सं० पु० पटुआ, पटसन।

तरामीरा : सं० पु० सरसों की तरह का एक पौधा जिसके बीजों से तेल निकलता है। दुआ।

तरारा : सं० पु० १. उछाल, छलाँग, कुलाँच। मुहा० तरारा भरना—जल्दी जल्दी काम करना, तरारा मारना—डींग हाँकना। २. पानी की धार जो बराबर किसी वस्तु पर गिरे।

तरुआ : सं० पु० उबाले हुए धान का चावल। भुँजिया चावल।

तरुणी : सं० स्त्री० १. घीकुंवार, ग्वारपाठा। २. दंती, जमालगोटा। ३. चीड़ा नामक गंध द्रव्य। ४. कूजा का फूल, मोतिया। ५. मेघराग की रागिनी।

तरेर : सं० पु० ऐंठ। उ० मोंछा तरेर-तरेर हम बड़े कुलीन और' इज्जतदार बनते हैं। (भ० नि० २६)

तरौंडा : सं० पु० फसल का उतना अनाज जितना हलवाहे आदि मजदूरों को देने के लिए निकाल दिया जाता है।

तर्रा : सं० पु० चाबुक का फीता या डोरी जो छड़ी में बँधी रहती है।

तर्री : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास जिसे भैंस बड़े प्रेम से खाती है। यह प्रत्येक ऋतु में मिलती है।

तलकी : सं० स्त्री० एक पेड़ जिसकी लकड़ी खेती के सामान बनाने तथा मकानों में लगाने के काम में आती है।

तलपट : वि० नाश, खाद, चौपट, तलपट करना, नाश करना।

तलफना : क्रि० अ० तड़फना, बेचैनी अनुभव करना। उ० तलफै छै थारे बिन प्यारी। (भा० २।४५)

तलमलाहट : सं० स्त्री० व्याकुलता, तलफाने का भाव, बेचैनी प्रा० ∠तड-मड क्षुभित।

तलित : वि० प्रा० ∠तलिय ∠तला हुआ

घी या चिकने के साथ भुना हुआ।

तल्लुआ : सं० पु० गाढ़े के ऐसा एक कपड़ा।

तसगर : सं० पु० जुलाहों के ताने में नौलक्खी के पास की दो लकड़ियों में से एक।

तहरी : सं० स्त्री० १. पेठे की वरी और चावल की खिचड़ी। २. मटर की खिचड़ी। ३. कालीन बुनने वालों की ढरकी।

तांडेल : सं० पु० व्यवस्थापक, मछली पकड़ने वाली नाव का मुखिया, अधिकारी। उ० 'तांडेल' का नाम लेते ही उसके मुंह पर हुकूमत की चमक आ गई। (सा० ल० म० ३८)

तांबेल : सं० पु० कछुआ, कच्छप।

ताकला : सं० पु० एक सर्प जिसकी देह पतली और रंग गुलाबी होता है और जो लगभग एक हाथ लम्बा तथा बिना फन का होता है। (ब्र० श०)

ताकोली : सं० स्त्री० एक पौधे का नाम।

तागड़ : सं० स्त्री० जहाजों पर चढ़ने की तख्तों की बनी हुई एक प्रकार की सीढ़ी जो पानी से लेकर जहाज के ऊपर तक चली जाती है।

तागा : सं० पु० धागा, सूत्र, शिला। (हि० श० सा०)

ताड़ना : क्रि० स० समझना। उ० प्यारी शायद यह ताड़ गई थी। (क० पु०४०)

ताड़ी : सं० स्त्री० १. ऊंट पर इस्तेमाल होने वाली त्रिभुजाकार बनी वस्तु (ब्र० श०)। २. एक मादक पदार्थ। ३. ध्यान, समाधि।

तानो : सं० पु० जमीन का टुकड़ा जिसमें कई खेत हों। चक।

ताबड़तोड़ : वि० शीघ्र। उ० ताबड़-तोड़ चीलम पर चीलम चढ़ाकर गाँजे— (अलग० वै० १३१)

तामड़ी : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली। मछली का नाम। (सा० ल० म० ८०)

तामझाम : सं० पु० सामान, सब तरह की वस्तु, बेतरतीब सामान। उ० जोड़ा हुआ सब ताम-झाम नष्ट हो गया। (झूठा० १।३०४)

तामना : क्रि० स० खेत जोतने के पूर्व खेत की घास उखाड़ना।

तार चरबी : सं० पु० मोमचीना का पेड़। इसके फल में तीन बीजकोश होते हैं और जिसमें एक प्रकार का चिकना पदार्थ भरा हुआ रहता है। इस पदार्थ से मोबत्तियाँ बनाई जाती हैं।

तारी : सं० स्त्री० १. एक प्रकार की चिड़िया। २. निद्रा, समाधि, ध्यान।

ताली : सं० स्त्री० पैर की बिचली उँगली का पोर या ऊपरी भाग।

तासला : सं० स्त्री० वह रस्सी जिसे भालुओं को नचाने के समय कलंदर उनके गले में डाले रहते हैं।

तिउरा : सं० पु० (स्त्री० अल्प तिउरी) खेसारी नाम का कदन्न। केसारी। एक झालदार कड़ुआ जंगली पौधा, जिसके बीज से तेल निकलता है।

तिगना : क्रि० स० देखना, नजर डालना, भाँपना। (दलाली)

तिचिया : सं० पु० जहाज पर के वे आदमी जो आकाश में नक्षत्रों को देखते हैं। (लश०)

तिड़ीविड़ी : वि० तितर-बितर, छितराया हुआ।

तितरात : सं० स्त्री० एक पौधा जिसकी जड़ औषध के काम आती है।

तितली : सं० स्त्री० १. एक उड़ने वाला सुन्दर कीड़ा या पतिंगा जो प्राय: फूलों के पराग और रस आदि पर निर्भर करता है। इसके छह पैर होते हैं और मुंह पर दो सूड़ियां होती हैं। २. एक घास जो गेहूँ आदि के खेतों में उगती है। इसका पौधा सवा हाथ तक होता है। इसकी पत्तियाँ और बीज दवा के काम आते है।

तितुला : सं० पु० गाड़ी के पहिये का आरा।

तिदारी : स० पु० जल के किनारे रहने वाली बत्तख की तरह की एक चिड़िया जो बहुत तेज उड़ती है और जमीन पर सूखी घास का घोंसला बनाती है।

तिनगरी : सं० स्त्री० एक पकवान। उ० पेठा पाक जलेबी पेरा। गोंद पाग तिनगरी गिंदौरा। (जायसी)

तिनतिरिया : सं० पु० मनुवा कपास।

तिनवा : सं० पु० एक प्रकार का बांस जो बरमा में बहुत होता है। यह इमारतों में लगता तथा चटाइयाँ बनाने के काम आता है।

तिन्नी : सं० स्त्री० नीवी, फुफुंदी।

तिपारी : सं० स्त्री० एक प्रकार का छोटा झाड़ या पौधा जो बरसात में स्वयं ही इधर-उधर हो जाता है। इसकी पत्तियाँ छोटी और नुकीली होती हैं। मकोय, छोटी रसभरी।

तिबाई : सं० स्त्री० आटा माढने या गूंदने का छिछला बड़ा बरतन।

तिवी : सं० स्त्री० खेसारी।

तिरकट गावा : सं० पु० आगे का और सबसे ऊपर सिरे का पाल। ऐसे बहुत से लश्करी शब्द हैं जैसे तिरकटगावी, तिरकट डोल, तिरकट तवर, तिरकट सवर, तिरकट सवाई इत्यादि।

तिरखो : स० स्त्री० सिंध देश में होने वाली एक प्रकार की नाव का नाम।

तिरवट : सं० पु० एक प्रकार का राग जो तराने वा तिल्लाने का एक भेद है।

तिरहा : सं० पु० एक पतिंगा जो धान के फूल को नष्ट कर देता है।

तिरा : सं० पु० एक पौधा जिसके बीजों से तेल निकलता है। एक तेलहन।

तिरिया : सं० पु० एक प्रकार का बांस जो प्राय: नेपाल में होता है। ओला।

तिलंगमा : सं० पु० एक प्रकार का बलूत जो हिमालय पर नेपाल से लेकर पंजाब तक होता है। इसकी लकड़ी इमारती होती है।

तिलरवा : सं० पु० एक चिड़िया का नाम।

तिलड़ा : सं० पु० पत्थर गढ़ने वालों की एक छेनी जिससे टेढ़ी लकीर या नक्काशी बनाई जाती है।

तिलफरा : सं० पु० एक प्रकार का छोटा सुंदर सदाबहार वृक्ष जो हिमालय में ५-६ हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ गहरे हरे रंग की और चमकीली होती हैं।

तिलवड़ा : सं० पु० चौपायों का एक रोग जिसमें गले के भीतर के मांस के बढ जाने से वे कुछ खा पी नहीं सकते।

तिलवर : सं० पु० एक प्रकार का पक्षी।

तिलमापट्टी : सं० स्त्री० एक कपास जो दक्षिण में होती है।

तिलरा : स० पु० कसेरो के काम आने वाली एक छेनी जिससे वे टेढ़ी लकीर बनाते हैं।

मिट्टी जमा होने के कारण बन जाता है। ३. रस्सी आदि का टुकड़ा। ४. एक बार का नाच, नाच का एक टुकड़ा। ५. हल की लंबी लकड़ी जिसके आगे जूआ लगा रहता है। हरिस। ६. मिश्री की तरह की बहुत साफ की हुई चीनी जिसके 'ओला' बनाते हैं। कंद। ७. वह लोहा जिसे चकमक पर मारने पर आग निकलती है। ८. तीन वार तक व्याई हुई भैंस। ६. कमी, घाटा, टोटा जैसे तुम्हें क्या तोड़ा पड़ा है।

तोड़ी : सं० स्त्री० एक प्रकार की सरसों।

तोतरंगी : सं० स्त्री० एक प्रकार की चिड़िया।

तोदी : सं० स्त्री० एक प्रकार का ख्याल। (संगीत)

तोपड़ा : सं० पु० १. एक प्रकार का कबूतर। २. एक प्रकार की मक्खी।

तोपास : सं० पु० झाड़ू देने वाला।

तोरई : सं०स्त्री० एक तरकारी। गिलकी, निनुआ।

तोरकी : सं० स्त्री० एक प्रकार की वनस्पति जो भारत के गरम प्रदेशों और लंका में प्रायः घास के साथ होती है। पश्चिमी भारत में अकाल के दिनों में गरीब लोग इसके दानों से रोटी बनाकर खाते हैं।

तोरन : सं० स्त्री० मिट्टी या काठ की बनावटी चिड़िया। (व्र० श०)

तोरिया : सं० स्त्री० १. वह गाय या भैंस जिसका बच्चा मर गया हो और जिसका दूध दुहने के लिए कोई युक्ति करनी पड़ती हो। २. एक प्रकार की सरसों।

तोरी : सं० स्त्री० काली सरसों।

तोल : सं० पु० नाव का डाँड़ा। (लश०)

तोबड़ा : सं० पु० लौकी, कद्दू। उ० इस तोबड़ा से लटके हुए मुँह के— (प्र० ग्र० ५८०)

तोशा : सं० पु० एक गहना जिसे गाँव की स्त्रियाँ बाँह पर पहनती हैं।

तौचा : सं० पु० एक प्रकार का गहना जिसे कहीं-कहीं ग्रामीण स्त्रियाँ सिर पर पहनती हैं।

तौन : सं० स्त्री० वह रस्सी जिससे गाय दुहने के समय उसका बछड़ा उसके अगले पैर से बाँध दिया जाता है।

तौर : सं० स्त्री० मथानी मथने की रस्सी। नेत्री।

तौली : सं० स्त्री० १. एक प्रकार की मिट्टी की छोटी प्याली। २. मिट्टी का चौड़े मुँह का बड़ा बरतन जिसमें अनाज आदि, विशेषतः गुड़ रखते हैं।

थंका : सं० पु० बिल, मुकता।

थकरी : सं० स्त्री० स्त्रियों के बाल झाड़ने की खस की कूँची।

थक्का : सं० पु० चकता, खून या किसी वस्तु की जमावट। जैसे, दीवार पर खून का थक्का लगा हुआ था।

थनकुदी : सं० पु० एक छोटी नीले रंग की चिड़िया जो कीड़े-मकोड़े खाती है। इसका रंग बहुत सुंदर होता है।

थपथपाना : क्रि० स० १. किसी वस्तु को हाथों से ठीक करना। २. बढ़ावा देना। ३. उत्साहित करना।

थपेड़ा : सं० पु० आघात, लहर, थप्पड़, चाँटा। उ० यह उल्टा थपेड़ा कन्या को बहुत दुखदायी सिद्ध हो रहा था। (बूँद ३६८)

थप्पड़ : सं० पु० चाँटा।

थप्पा : सं० पु० एक प्रकार का जहाज़। (लश०)

थरथराना : क्रि० अ० भय आदि से

कांपना।

थरथरिया : सं० पु० वह बुखार जो जाड़ा देकर आता है, जड़ैया। उ० कचहरी से थरथरिया बुखार बोझकर वापस आया मरद मेरा। (परती० १४२)

थरहाई : सं० पु० ऐहसान, निहोरा।

थरूहट : सं० पु० थारुओं की बस्ती।

थलथल : वि० मोटा, भद्दा। उ० काला रंग मोटा थलथल पिलपिल शरीर—
(गि० दी० २६७)

थवन : सं० पु० दुलहन की तीसरी वार अपने पति के घर की यात्रा।

थापरा : सं० पु० छोटी नाव, डोंगी।
(लश०)

थारू : सं० पु० एक जंगली जाति जो नेपाल की तराई में पायी जाती है।

थिथला : वि० हलका, नीचा, छिछला, वेकार। उ० पत्रों का स्तर वहुत थिथला लगता है। (झूठा० २।७८)

थिबाऊ : सं० पु० दाहिने अंग का फड़कना आदि, जिसे ठग लोग अपने लिए अशुभ समझते है। (ठगों की वोली)

थिरकना : क्रि० अ० कांपना, हिलना, डुलना, भयभीत होना। उ० शीला के गाल और होंठ थिरके। (झूठा० १।७८)

थिरथिरा : सं० स्त्री० एक प्रकार की वुलवुल जो जाड़े के दिनों में भारत में दिखाई देती है।

थीकरा : सं० पु० किसी आपत्ति के समय रक्षा या सहायता का दायित्व, जिसे गाँव का प्रत्येक समर्थ व्यक्ति वारी-वारी से ग्रहण करता है।

थुड़थुड़ : सं० पु० घृणासूचक शब्द। उ० सारा जगत सदा थुड़थुड़ करेगा।
(प्र० ग्र० ३३२)

थुथलाना : क्रि० अ० थू-थू करना, घृणा करना, नाक-भौंह सिकोड़ना। उ० एक नौजवान क्रोध में किवाड़ों पर धक्का देकर थुथला उठा। (झूठा० २।१३७)

थुलमा : सं० पु० एक प्रकार का तिब्बती कंबल या कपड़ा।

थुलथुलापन : सं०पु० मोटापा। उ० ज्यों-ज्यों वड़ी होती गई थुलथुलापन लुप्त हो गया। (अलग० वै० ३७८)

थूक : सं० पु० मुख से निकला लिवलिबा पदार्थ। उ० सुई से थूक लगा-लगा के सीया गया है। (प्र० ग्र० ३७४)

थूकना : क्रि०अ० थूकने की क्रिया। मुहा० घृणा करना, निंदा करना, वेइज्जत करना।

थूथन : सं० पु० १. लम्वा निकला हुआ मुंह, जैसे सूअर, घोड़े, ऊँट, वैल आदि का होता है। (स्त्री० थूथनी) २. हाथी के मुंह का एक रोग जिसमें उसके तालू में घाव हो जाता है।

थूथड़ा : सं० पु० मुंह। उ० वह हाथ देता कि थूथड़ा लटक जाता। (क०पु०१६५)

थूथरा : सं० पु० वुरा चेहरा, भद्दा चेहरा। उ० तेरे थूथरे में आग लगे।
(स्त्रियों की गाली)

थूबी : सं० स्त्री० सांप का विष दूर करने के लिए गरम लोहे से काटे हुए स्थान को दागने की युक्ति।

थूहर : सं० पु० एक छोटा पेड़ जिसमें लचीली टहनियां नहीं होती, गाँठों पर से गुल्ली या डंडे के आकार के डंठल निकलते है। इसके कई भेद होते है जैसे-कांटे वाला थूहर, तिधारा थूहर, चौधारा थूहर, नागफनी, खुरासानी थूहर, विलायती थूहर। इसका दूध औषध के काम आता है। सेंहुड़, महावृक्षा, क्षुधा, स्नुक, सिहतुड, नेत्रारि, कृष्णसार।

थेंथर : वि० थका हुआ, सुस्त, हैरान।

थेगली : सं० स्त्री० कपड़े में लगा हुआ पैवंद। उ० ओढ़नी में थेगलियाँ लग रही थीं। (क० पु० ६४)

थेथ्थर : सं० पु० मूर्ख, नासमझ, भोंदू, वेशर्म। उ० साला थेथ्थर है, चमार के हाथ की मार खाकर भी भाइयो-भाइयो करता है। (परती० ४७९)

थेवा : सं० पु० १. अँगूठी का नगीना। २. किसी धातु का वह पत्र जिस पर मुहर खुद जाती है। ३. अँगूठी का वह घर जिसमें नगीना जड़ा जाता है।

थैंचा : सं० पु० खेत में मचान के ऊपर का छप्पर।

थोती : सं० स्त्री० चौपायों के मुँह का अगला भाग, थूथन।

थोथ : सं० स्त्री० १. खोखलापन, निःसारता। २. तोंद।

थोथरा : वि० १. घुन या कीड़े से खाया हुआ, खोखला। २. जिसमें कुछ सार न हो। ३. निकम्मा।

थोथा : वि० (स्त्री० थोथी) १. निःसार, खाली, पोला। मुहा० थोथा चना वाजे घना। २. कुंठित, गुठला, जैसे थोथा तीर। ३. जिस (सर्प) की पूँछ कट गई हो। वंडा। वेदुम का। ४. भद्दा, वेढंगा, निकम्मा, व्यर्थ का, जैसे थोथी वातों में क्या रखा है।

थोथा : सं० पु० वरतन ढालने का मिट्टी का साँचा।

थोथी : सं० स्त्री० १. एक प्रकार की घास। २. निस्सार, रिक्त, खोखली।

थोपना : क्रि० स० थापना, दोष लगाना। जैसे, यह दोष मेरे माथे क्यों थोपते हो।

थोवड़ा : सं० पु० थूथन। जानवरों का निकला हुआ लंबा मुँह।

थोर : सं० पु० १. केले की पेड़ी का वीच का गाभा। २. थूहर का पेड़।

थोरी : सं० स्त्री० १. एक हीन अनार्य जाति। २. अल्प, कम।

दंदा : सं० पु० ताल देने का एक प्रकार का पुराना वाजा।

दगरा : सं० पु० मार्ग, वैलगाड़ियों का चौड़ा रास्ता। ∠ डग्गल (दे०ना० ४।८) घर लौटती गायों के सींगों के वीच से निकल कर दगरों पर लौटती हुई आ गईं। (क० पु० ८)

दचका : सं० पु० धक्का, ठोकर। उ० जोर का दचका खाकर समस्तीपुर गाड़ी के डव्वे खड़े हो गए। (वावा० १३७)

दचना : क्रि० अ० गिरना, पड़ना। उ० गगन ऊड़ाइ गयो ले श्यामहि आइ धरनि पर आय दच्योरी। (सूर०)

दड़ा : सं० पु० सट्टा। इसमें १०० तक नम्वर होते हैं। उ० महाराज के दर से दड़े का नम्वर मिला। (गि० दी० ७६)

दतिया : सं० पु० १. एक प्रकार का पहाड़ी तीतर जो वहुत सुन्दर होता है। इसकी खाल अच्छे दामों पर विकती है। नीलमोर। २. झाँसी के पास एक स्थान का नाम।

ददरा : सं० पु० छानने का कपड़ा, छनना, साफी।

ददोरा : सं० पु० फुन्सी, दाना, गुमड़ी, छाला। उ० तनों की मोटी छालों में ददोरे पड़ गए। (वावा० ७७)

दधियार : सं० पु० जीवंति की जाति की एक लता जिसके पत्ते लम्वे और पान के आकार के होते हैं। इसमें सूर्यमुखी की तरह के फूल लगते हैं। इसका व्यवहार औषध में होता है। अर्कपुष्पी, अंधाहुली।

दनगा : सं० पु० खेत का छोटा टुकड़ा।

दनदनाना : क्रि० अ० चिल्लाना, गुस्सा हो जाना।

दफरा : सं० पु० काठ का टुकड़ा या इसी प्रकार का और कोई पदार्थ जो किसी नाव के दोनों ओर लगा दिया जाता है ताकि दूसरी नाव की टक्कर से कोई क्षति न हो। हौस। (लश०)

दफराना : क्रि० स० १. किसी नाव को दूसरी नाव के साथ टक्कर से बचाना। २. पाल खड़ा करना। (लश०) ३. बचाना, रक्षा करना।

दबकी : सं० स्त्री० सुराही की तरह का मिट्टी का एक बर्तन जिसमें पानी रखकर चरवाहे और खेतिहर खेत पर ले जाया करते है।

दबगर : सं० पु० १. ढाल बनाने वाला। २. चमड़े के कुप्पे बनाने वाला। दबसो।

दबस : सं० पु० जहाज पर की रसद तथा दूसरा सामान। जहाजी गोदाम का माल।

दबसो : सं० पु० १. ढाल बनाने वाला, २. चमड़े के कुप्पे बनाने वाला। दबगर।

दबाबा : सं० पु० युद्ध की सामग्री में लकड़ी का एक प्रकार का बहुत बड़ा सन्दूक जिसमें कुछ आदमियों को बैठाकर गुप्त रूप से सुरंग खोदने अथवा इसी प्रकार का उपद्रव करने के लिए किले में उतार देते थे।

दबिला : सं० पु० खुरपी या खुरचनी के आकार का लकड़ी का बना हुआ हलवाइयों का एक औजार जिससे वे सानते, भूनते, खोवा बनाते, या चासनी आदि फेंटते हैं।

दबूसा : सं० पु० १. जहाज का पिछला भाग। पिच्छल। २. बड़ी नाव का पिछला भाग जहाँ पतवार लगी रहती है। ३. जहाज का कमरा। (लश०)

दबोस : सं० स्त्री० चकमक पत्थर।

दबोसना : क्रि० स० शराब पीना। शायद ढकोसने (पीना) से खराब अर्थ में प्रयुक्त।

दम : सं० पु० दरी बुनने वालों की एक प्रकार की तिकोनी कमाची जिसमें सवा-सवा गज की तीन लकड़ियाँ एक साथ बँधी रहती हैं। ये करघे में पड़ी रहती हैं और उसमें जोती बँधी रहती है जो पैर के अँगूठे में बांध दी जाती है। बुनने के समय इसे पैर से नीचे दबाते हैं।

दमचा : सं० पु० खेत के कोने पर बना वह मचान जिसपर बैठकर किसान खेत की रखवाली करता है।

दमचूल्हा : सं० पु० एक प्रकार का लोहे का बना हुआ गोल चूल्हा जिसके बीच में एक जाली या झरना होता है और जिसके नीचे एक ओर बड़ा छिद्र होता है। इसकी जाली पर कुछ कोयले रख कर उसकी दीवार पर पकाने का बरतन रखते हैं और नीचे के छिद्र से उसमें हवा की जाती है।

दमजोड़ा : सं० पु० तलवार (डिंगल)। दमजोड़ा जीवन-साथी से सम्बन्धित है। वीर लोग तलवार को ही जीवन-साथी मानते रहे हैं।

दमानक : सं० स्त्री० तोपों की बाढ़। उ० देव भूत पितर करम खल काल ग्रह मोहि पर दौरि दमानक-सी ढई है। (तुलसी)

दयाल : सं० पु० एक चिड़िया जो बहुत अच्छा बोलती है।

दरब : सं० पु० १. धातु। २. किनारेदार मोटी चादर।

दरबहरा : सं० पु० एक प्रकार का मद्य जो कुछ वनस्पतियों को सड़ाकर बनाया जाता है।

दरमा : सं० स्त्री० बाँस की वह चटाई जो बंगाल में झोपड़ियों की दीवार बनाने में काम आती है।

दसन : सं० पु० एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो पंजाब सिंध, राजपूताने और मैसूर में पाई जाती है। इसकी छाल चमड़ा सिझाने के काम आती है।

दसारी : सं० स्त्री० एक चिड़िया जो पानी के किनारे रहती है।

दसी : सं० स्त्री० १. कपड़े के छोर पर का सूत। २. कपड़े का पल्ला, थान का आँचल। उ० जाता है जिस जान दे तेरी दसी न जाय। (कबीर) ३. बैलगाड़ी की पटरी। ४. चमड़ा छीलने का औजार, रापी। ५. पता, निशान, चिह्न।

दसेंदू : सं० पु० केंदू, तेंदू का पेड़।

दस्ता : सं० पु० एक प्रकार का बगुला, हरगिला।

दहन : सं० पु० कंजा नामक कँटीली झाड़ी।

दहिगल : सं० पु० कीड़े-मकोड़े खाने वाली आठ अंगुल लंबी एक चिड़िया जिसके परों पर सफेद और काली लकीरें होती हैं। यह रह-रहकर अपनी पूंछ उठाया करती है।

दहेड़ी : सं० स्त्री० मटकी। उ० एक दहेड़ी दही थमाकर उल्लू सीधा किए जा रहा था। (अलग० वै० ६४६)

दाँतिया : सं० पु० रेह का नमक। सोडा, जिसे पीने के तंबाकू को तेज करने के लिए उसमें डालते हैं।

दाज : सं० पु० १. अँधेरी रात। २. अँधेरा।

दाढ़ी : सं० स्त्री० चिबुक, ठोढ़ी। उ० खून की सतर ढुलक कर होंठों और दाढ़ी में चुपड़ गई। (अलग० वै० ३८)

दाबा : सं० पु० आठ-नौ अंगुल लम्बी एक मछली जो सिंध, उत्तरप्रदेश और बंगाल की नदियों में पाई जाती है।

दाबिल : सं० पु० एक बड़ी सफेद चिड़िया जिसकी चोंच दस-बारह अंगुल लम्बी और छोर पर पैसे की तरह गोल और चिपटी होती है।

दाम : सं० स्त्री० १. बराबरी, तुल्यता। २. दाने निकालने के लिए पकी फसल को बैलों से खुँदवाने की प्रक्रिया।

दामन : सं० पु० १. पहाड़ों के नीचे की भूमि, पर्वत। २. बादबान। ३. नाव या जहाज़ के जिस ओर हवा का धक्का लगता हो उसके सामने की दिशा। (लश०)

दामर : सं० स्त्री० १. राल जो दरार भरने के लिए नावों में लगाई जाती है। डामर। २. छोटे कान की भेड़। (गड़रियों की बोली)

दारा : सं० स्त्री० एक प्रकार की भारी मछली जो भारत में समुद्र के किनारे पाई जाती है।

दारी : सं० स्त्री० एक गाली। उ० अब ठहर दारी जो इसी से तेरे हाड़ न कुचवा दूं। (क० पु० ३०)

दावरा : सं० पु० धावरा नामक पेड़।

दासा : सं० पु० १. दीवार से सटाकर उठाया हुआ पुश्ता जो कुछ ऊँचाई तक हो और जिस पर चीज आदि भी रख सकें। २. आँगन के चारों ओर दीवार से सटाकर उठाया हुआ चबूतरा। ३. वह लकड़ी या पत्थर जो दरवाजे के ऊपर दीवार के आरपार रहता है। ४. दीवार की कुर्सी के ऊपर बैठाया हुआ पत्थर।

दिकचन : सं० पु० एक प्रकार का ऊख जिसका गुड़ बहुत अच्छा बनता है।

दिकौड़ी : सं० स्त्री० बर्रे, हड्डा।

दिघौंच : सं० पु० एक प्रकार का पक्षी जिसकी छाती सफेद, डैने काले और कुछ पंख सुनहरे होते हैं।

दिनाइ : सं० पु० दाद, शरीर के किसी अंग पर होने वाला चिकत्ता जिसमें खुजली होती है।

दिनाधा : सं० स्त्री० हाथ भर लम्बी एक मछली जो हिमालय व असम में मिलती है।

दिव : सं० पु० वह परीक्षा जो निर्दोषिता या अपने कथन की सत्यता प्रमाणित करने के लिए कोई दे, जैसे अग्निपरीक्षा आदि। उ० काहे को अपराध लगावति कब कीनी हम चोरी। जैसे, जब चाहो तब तैसे बावन दिवु मैं देहों। (तुलसी)

दिलबल : सं० पु० एक प्रकार का पेड़।

दिल्ला : सं० पु० किवाड़ के पल्ले की लकड़ी में लगा चौखटा जो शोभा के लिए जड़ दिया जाता है। आइना।

दिल्लेदार : वि० दिलहेवाला किवाड़, जिसमें दिल्ला बना हो।

दिवानी : सं० स्त्री० एक प्रकार का पेड़ जिसकी लकड़ी ईंट के रंग-सी लाल होती है और जिस पर भूरी और नारंगी रंग की धारियां पड़ी रहती हैं। इसके मेज, कुरसी आदि सजावट के सामान बनाए जाते हैं।

दिवाली : सं० स्त्री० खराद या सान में लपेटने का वह तस्मा जिसे खींचकर चलाया जाता है। दियाली।

दिविदिवि : सं० पु० एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसकी पत्तियां चमड़ा सिझाने तथा रंगने के काम आती हैं।

दिसावल : सं० पु० वैश्यों की एक जाति।

दिहुला : सं० पु० एक प्रकार का धान जो पूरब के जिलों में बोया जाता है।

दीक : सं० पु० एक प्रकार का तेल जो काटू या हिजली के पेड़ की छाल से निकलता है और जाल में माँजा देने के काम आता है।

दीनारी : सं० पु० लोहारों का ठप्पा।

दुंगरी : सं० स्त्री० एक प्रकार का मोटा कपड़ा।

दुंदका : सं० पु० गन्ना पेरने का कोल्हू।

दुआला : सं० पु० लकड़ी का एक बेलन जिसे सुनहरी छपी हुई छींटों के छापों को बैठाने के लिए फेरते हैं।

दुकना : क्रि० अ० लुकना, छिपना।

दुकुल्ली : सं० स्त्री० एक प्रकार का पुराना बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा होता है।

दुगई : सं० स्त्री० ओसारा, बरामदा। उ० अति अद्भुत थंभन की दुगई गजदंत सुचंदन चित्र भई। (केशव)

दुजड़ी : सं० स्त्री० कटारी। (डिंगल)

दुथरी : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली।

दुदामी : सं० स्त्री० एक प्रकार का सूती कपड़ा जो मालवे में बहुत बनता था। उ० दुदामी के थान मालवा में पहले भी बनते थे मगर शाहजहाँ बादशाह की कदरदानी से बहुत बढ़िया बनने लगे थे। (शाहजहाँनामा)

दुबकना : क्रि० अ० छिपना। उ० चौखट के पास दुबककर बैठने को हुई— (अलग० वै० १७१)

दुरख : सं० पु० (स्त्री० दुरखी) एक प्रकार का पतिंगा जो नील, तम्बाकू, सरसों, गेहूं इत्यादि की फसल को नुकसान पहुंचाता है।

दुरचुम : सं० पु० दरी के ताने के दो दो सूतों को इसलिए एक में बाँधना जिसमें वे उलझ न जाएँ।

दुरुम : सं० पु० एक प्रकार का गेहूँ जिसका दाना पतला और लंबा होता है।

दुरौंधा : सं० पु० दरवाजे के ऊपर की लकड़ी।

दुलकी : सं०स्त्री० एक चाल, घोड़े की तेज चाल। उ० दयाल महाराज ने दुलकी ली तो मेले ही में आकर रुके।

(अलग० वै० ५)

दुलखी : सं० स्त्री० एक पतिगा जो ज्वार, नील, तम्बाकू, सरसों और गेहूँ को नुकसान पहुँचाता है।

दुलीचा : सं० पु० गलीचा, कालीन। दुलेचा।

दुवाज : सं० पु० एक प्रकार का घोड़ा। उ० नुकरा और दुवाज बोरता है छवि दूनी। (सूदन)

दुवाली : सं० स्त्री० रंगे या छपे हुए कपड़ों पर चमक लाने के लिए घोंटने का औजार। घोंटा।

दूआ : सं० पु० एक गहना जो कलाई पर और सब गहनों के पीछे की ओर पहना जाता है। पछेली।

दूगला : सं० पु० एक प्रकार का बड़ा टोकरा या दौरा।

दूगू : सं० पु० एक प्रकार का बकरा जो हिमालय की तराई में मिलता है।

दूदला : सं० पु० एक प्रकार का पेड़ जिसे डुडला भी कहते हैं।

दूधराज : सं० पु० एक प्रकार की भारतीय बुलबुल। शाहबुलबुल।

दूधिया : सं० पु० १. एक प्रकार का सफेद चिकना और चमकीला पत्थर जिसकी गिनती रत्नों में होती है। २. एक प्रकार का घटिया मुलायम पत्थर जिसकी प्यालियाँ बनती हैं। पथरी। ३. एक प्रकार का हलवासोहन जो दूध मिलाने के कारण नरम हो जाता है। ४. लौकी, दूधी (गुजराती)। ५. एक घास जिसमें से एक प्रकार का दूध निकलता है।

दून : सं० पु० दो पहाड़ों के बीच का स्थान तराई, घाटी।

दूनसिरिस : सं० पु० सफेद सिरिस का पेड़ जो बहुत ऊँचा होता है और जल्दी बढ़ जाता है। इसके हीर की लकड़ी भूरी चमकदार और मजबूत होती है। इससे कोल्हू, मूसल, पहिये, चाय के संदूक और खेती के औजार बनाए जाते हैं।

दूरी : सं० स्त्री० खाकी रंग की एक प्रकार की लवा चिड़िया।

दूहिया : सं० पु० एक प्रकार का चूल्हा।

देग : सं० पु० एक प्रकार का बाज पक्षी।

देवकपास : सं० स्त्री० नरमा, मनवा, रामकपास।

देवगढ़ी : सं० स्त्री० एक प्रकार की ईख।

देवघन : सं० पु० एक पेड़ जो बगीचों में लगाया जाता है।

देवडोंगरी : सं० पु० देवदाली लता, बंदाल।

देवरा : सं० पु० एक प्रकार का पटसन जो सुतली बनाने के काम आता है।

देवल : सं० पु० एक प्रकार का चावल। उ० धनिया देवल और अंजाना।

(जायसी)

देवहरिया : सं० स्त्री० एक प्रकार की नाव।

देशांकी : सं० स्त्री० एक रागिनी। हनुमत के मत से जिसका स्वरग्राम यों है—गम पधनीसाग, अथवा गमपधनी सारेग।

दोंकना : क्रि० अ० गुर्राना, डाकना, पुकारने के अर्थ में बंगला में प्रयुक्त।

दोजई : सं० स्त्री० नक्काशों का छेनी के आकार का एक औजार जो गोलाकार

वृत्त बनाने के काम आता है।

दोजख : सं० पु० एक प्रकार का पौधा जिसके फूल सुंदर होते हैं।

दोत्त, दुत्त : सं० पु० मना करने या घृणा करने के अर्थ में प्रयुक्त उ० दोत्त कैसा तुच्छ संबोधन है। (प्र० ग्र० ३४६)

दोदना : सं० पु० छोटा बालक। जैसे, दोदने की तरह क्यों बातें करते हो?

दोदा : सं० पु० एक प्रकार का बड़ा कौवा जिसकी लंबाई डेढ़-दो हाथ होती है। इसका रंग काला तथा चोंच और पैर चमकीले होते हैं। एक बार में इसके पांच अण्डे होते हैं।

दोदिन : सं० पु० रीठे की जाति का एक पेड़ जिसके फलों का व्यवहार साबुन की तरह कपड़े साफ करने में होता है।

दोपरी : सं० स्त्री० एक जंगली पेड़ जिसकी लकड़ी के संदूक आदि बनते हैं।

दोपल : सं० पु० बया पक्षी।

दोरा : सं० पु० हल की मुठिया के पास लगी हुई बांस की वह नाली-जिसमें बोने के लिए बीज डाला जाता है। माला।

दोश : सं० पु० एक प्रकार का लाख जिसका व्यवहार रंग बनाने में होता है।

दोसा : सं०पु० १. एक प्रकार की घास जो पानी में होती है। इसमें एक प्रकार के दाने अधिकता से होते हैं। २. एक चिल्ले की तरह का पदार्थ जो दक्षिण में बनता है। यह दो प्रकार का होता है। सादा दोसा और मसाला दोसा।

दोसाल : सं० पु० बरमा के हाथियों की एक जाति। इस जाति का हाथी कुम-रिया से कुछ छोटा होता है और साधा-रणतः लकड़ियाँ आदि ढोने या सवारी आदि के काम में आता है।

दोसी : सं० पु० दही।

दोहान : सं० पु० नौजवान बैल, बछवा।

दोहिया : सं० पु० एक प्रकार का पौधा।

दोहुर : सं० स्त्री० वह भूमि जिसमें बालू अधिक हो। बलुई जमीन।

दौंगरा : सं० पु० चौमासे के आरंभ में मेह का पहला पानी। (ब्र० श०)

दौजा : सं० पु० मचान, पाड़।

दौरी : सं० स्त्री० एक प्रकार का छबरा, पला।

धंगर : सं० पु० चरवाहा, ग्वाल, अहीर।

धंगा : सं० पु० खांसी, ढांसी।

धंजी : वि० खंड-खंड, टुकड़ा। उ० तन धंजी-धंजी उड़ जाए। (प्र० ग्र० २३९)

धंदर : सं० पु० एक प्रकार का धारीदार कपड़ा।

धंध : सं० पु० गड़बड़ी। उ० धंध देखियत जग सोच परिनाम को। (तुलसी)

धंधक : सं० पु० धंधे का आडम्बर। उ० धींग धरम ध्वज धंधक धोरी। (भा० १।१२।१)

धंधका : सं० पु० (स्त्री० अल्प०) एक प्रकार का ढोल।

धंधा : सं० पु० काम, व्यापार, कर्म, जैसे तुम काम-धंधे से लग जाओ।

धंधार : सं० पु० लकड़ी का लंबा औजार जो भारी पत्थरों व लकड़ियों को उठाने के काम में आता है।

धंधार : वि० एकाकी, अकेला।

धंधारी : सं० स्त्री० १. एकान्त, निर्जनता, अकेलापन। २. सुनसान, सन्नाटा। ३. गोरखधंधा जिसे गोरखपंथी साधु लिए रहते हैं। उ० मेखला सिंगी चक्र धंधारी। (जा० १२६।४)

धंधेरा : सं० पु० राजपूतों की एक जाति।

धई : सं० स्त्री० एक पौधा जिसकी जड़ या कंद को छोटा नागपुर के

जातियों के लोग खाते हैं।

धक : सं० स्त्री० छोटी जूं, लीख से बड़ी जूं।

धकाधक : ध्वन्य० उ० इंजनों की सीटी और उनकी धकाधक ध्वनि से पूरित—
(प्रे० स० २।२३५)

धक्का : सं० पु० आघात, चोट, ठोकर। उ० अपने अधिकार की उपेक्षा पर पिता को एक धक्का-सा लगा।
(टे० मे० रा० ११)

धकापेल : क्रि० वि० अच्छी, लगातार, ठीक। उ० हमारे चाचा की चक्का धकापेल चलती है। (राग दर० २६)

धगुल : सं० पु० हाथ में पहनने का कड़ा।

धचकना : क्रि० अ० दलदल में धँसना।

धच्चा : सं० पु० धचका, धक्का। उ० ऐसा धचका खाया कि चित्त हो गए।
(भ० नि० २।३८)

धजवड़ : सं० स्त्री० तलवार (डिंगल)।

धज्जी : सं० स्त्री० कपड़े आदि का चीर या टुकड़ा, पट्टी। उ० बायें हाथ पर सफेद धज्जी बँधी हुई थी।
(झूठा० १।३४)

धड़ : सं० पु० १. शरीर का स्थूल मध्य भाग जिसके अन्तर्गत छाती, पीठ और पेट होते हैं। सिर और हाथ-पैर को छोड़ कर शरीर का बाकी भाग। २. पेड़ का वह सबसे मोटा कड़ा भाग जो जड़ से कुछ दूर ऊपर तक रहता है। पेड़ी, तना। ३. जल्दी, जैसे तुम धड़ से चले जाओ। उ० धड़ से एक थप्पड़ उसके मुंह पर मारा। (गि० दी० ६५)

धड़क : सं० पु० संदेह, शर्म। उ० बेधड़क कर गुजरेंगे। (भ० नि० २।१७४)

धड़का : सं० पु० खतरा, डर, भय, संदेह। उ० हर व्याहता को इसका धड़का लगा रहता था। (आधा० १८)

धड़ल्ले : वि० खुलेआम, शीघ्र, बहुत, अधिक। उ० इन इलाकों में धड़ल्ले से मिलने लगी थी। (बाबा० ९१)

धड़ाधड़ : क्रि० वि० शीघ्र, जल्दी, ताबड़-तोड़, फटाफट। उ० धड़ाधड़ लोग फौज में भर्ती हो रहे थे। (आधा० १३४)

धड़ाम : क्रि० वि० शीघ्र, जल्दी, गिरने की आवाज। उ० उनके ज्ञान के किवाड़ धड़ाम से खुल गए। (राग दर० २१२)

धड़वा : सं० पु० एक प्रकार की मैना।

धत्तांगड़ : सं० पु० १. बड़े डील का, बेडौल आदमी, मोटा-ताजा आदमी, मुस्टंड। २. *जारज, दोगला।*

धत्त : सं० स्त्री० आदत, तड़ी, महत्ता, खासियत। उ० ब्रिज की धत्त थी और खेलता भी बड़े हिसाब से था।
(झूठा० १।३२६)

धत्ता : सं० पु० बहकाने के लिए प्रयुक्त, जैसे उसने उसे धत्ता (धता) बता दिया।

धनकोटा : सं० पु० एक पौधा जिससे नेपाली कागज बनता है। चमोई, सतबरवा, सतपुरा।

धनदायन : सं० पु० एक पौधा जिसके काढ़े से ऊनी कपड़ों पर माड़ी देते हैं।

धना : सं० स्त्री० एक रागिनी।

धनेस : सं० पु० बगुले के आकार की एक चिड़िया जिसकी गरदन और चोंच लंबी होती है। यह बेर, बरगद आदि के पेड़ों पर रहती है। इससे निकला तेल वात के दर्द के लिए बड़ा उपयोगी होता है।

धन्नी : सं० स्त्री० १. गाय बैल की एक जाति जो पंजाब में नमक वाले पहाड़ों के आस-पास पाई जाती है। २. घोड़े की एक जाति। उ० धन्नी, भाभावली काठिया मारवाड़ मधि देशी। (रघुराज) ३.

बेगार का आदमी।

धबला : सं० पु० १. कटि के नीचे पहनने का कोई ढीला-ढाला पहनावा। ढीला पायजामा। २. स्त्रियों का लहँगा, घाघरा।

धब्बा : सं०पु० १. भद्दा निशान, जैसे कपड़े पर स्याही का धब्बा। २. कलंक, दोष, ऐब। उ० उनकी सभ्यता का धब्बा वहाँ स्त्रियों की स्वतन्त्रता—
(भ० नि० १।२४)

धमसा : सं० पु० धौंसा, नगाड़ा।

धम्म-धम्म : अनु० आवाज, जमीन की धमधमाहट। उ० धम्म-धम्म जीना उतरती नीचे चली गई। (झूठा० १।१४)

धम्मन : सं० पु० एक प्रकार की घास।

धमाचौकड़ी : सं० स्त्री० खेलकूद, उन्मुक्त हँसी का अवसर। उ० भक्ति-भाव पूजा-पाठ और धमाचौकड़ी के दिन भी क्या—(बाबा० ६३)

धरवा : सं० पु० आकाश में किसी एक दिशा से उठता बादल। (ब्र० ग०)

धरिगा : सं० पु० एक प्रकार का चावल।

धरौली : सं० स्त्री० एक छोटा पेड़ जिसकी टहनियाँ लम्बी और पत्तियाँ सींक के दोनों ओर आमने-सामने लगती हैं। इसके बीजों का तेल दवा के काम आता है। छाल और जड़ साँप काटने और बिच्छू के डंक मारने की दवा समझी जाती है। इसकी लकड़ी पर खराद और नक्काशी का काम बहुत अच्छा होता है।

धाँक : सं० पु० भीलों से मिलती-जुलती एक आदिवासी जाति।

धाँगल : सं० पु० १. एक आदिवासी जाति जो विंध्य और कैमोर पहाड़ियों पर रहती है। २. एक जाति जो कुएँ और तालाब खोदने का काम करती है।

धाँधना : क्रि० स० १. बंद करना, भेड़ना। उ० पुनि लकीर पर अंगनि बाँधी। आगि लगाया कोठरि धाँधी। (कबीर) २. बहुत अधिक खा लेना, ठूँसना। ३. बेकार की गप्पें हाँकना।

धाँधली : सं० स्त्री० गोलमाल करना, बेईमानी करना। जैसे इस रियासत में धाँधली मच गई है।

धाकर : सं० पु० १. उपाध्यायों की नीची पदवी, कान्यकुब्ज और सरजूपारी ब्राह्मणों में से वह ब्राह्मण जो इनसे नीचा समझा जाए। २. राजपूतों की एक जाति जो आगरे के आस-पास पाई जाती है। ३. पंजाब का एक धान जो बिना पानी के होता है।

धाकड़ : वि० १. दोगला। २. मजबूत, प्रभावशाली। असभ्य। धाकड़ नाहि बहुत। (कीर्तिलता)

धाखा : सं० पु० पलाश का पेड़।

धाड़ : क्रि० वि० जिस रुदन में आवाज हो। उ० दुलारी धाड़ मारकर रोने लगी थी। (अलग० वै० ३३६)

धाप : सं० पु० १. दूरी की एक नाप जो प्रायः एक मील की और कहीं दो मील की मानी जाती है। २. लम्बा-चौड़ा मैदान। ३. खेत की नाप। ४. घूँसा, चाँटा, थप्पड़, किसी वस्तु के द्वारा मारा जाने वाला आघात।

धापना : क्रि० अ० संतुष्ट होना, तृप्त होना, अघाना, जी भरना। उ० (क) दूतन कह्यो बड़ो यह पापी। इतनो पाप कियो है धापी। (सूर०) (ख) कबिरा औंधी खोपड़ी कबहूँ धापे नाहिं। तीन लोक की सम्पदा कब आवै घर माँहि।
(कबीर)

धाबरी : सं० स्त्री० कबूतरों का दरबा।

धाबा : सं० पु० १. छत के ऊपर का कमरा, अटारी। २. वह स्थान जहाँ ताजा पका खाना बिकता हो।

धाम : सं० पु० फालसे की जाति का एक प्रकार का छोटा वृक्ष।

धामन : सं० स्त्री० १. एक प्रकार की घास जो नर्म और रेतीली भूमि में अधिकता से होती है और पशुओं के लिए बहुत अच्छी समझी जाती है। २. एक प्रकार का सर्प।

धारन : सं० पु० हाथी को खिलाने के लिए तैयार की गई दवा।

धारसा : सं० पु० बिना फन का एक सफेद साँप। (ब्र० श०)

धिमचा : सं० पु० एक प्रकार की इमली।

धीरट : सं० पु० हंस। (डिंगल)

धीरी : सं० स्त्री० आँख की पुतली।

धुंदुल : सं० पु० मझोले कद का एक पेड़ जिसकी लकड़ी से मेज-कुर्सी बनती है। इसके फलों का तेल जलाया व सिर में लगाया जाता है। इसमें एक प्रकार का गोंद भी निकलता है।

धुक : सं० स्त्री० कलाबत्तू बटने की सलाई।

धुकड़ी : सं० स्त्री० छोटी थैली, बटुआ।

धुकधुकी : सं० स्त्री० भय की स्थिति जिसमें हृदय काँपने लगता है।

धुत : वि० मस्त, किसी मद से बेहोश, जैसे वह शराब में धुत पड़ा था।

धुत्ता : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली।

धुनिहाव : सं० पु० हड्डी का दर्द।

धुनेचा : सं० पु० एक प्रकार के सन का पौधा जिसे बंगाल में काली मिर्च की बेलों पर छाया रखने के लिए लगाते हैं।

धुपंगड़ : सं० पु० किसानों द्वारा महरे पर बजाने का एक बाजा जो शेर की दहाड़ जैसी आवाज करता है। (ब्र० श०)

धुबला : सं० पु० लहँगा।

धुरचट : सं० पु० अधिकता, प्रचुरता।

धुरवा : सं० पु० मेघ, बादल।

धुरियाधुरंग : वि० १. वह गाना जो बाजे या साज के साथ न गाया जाए। २. अकेला, जिसके साथ कोई न हो।

धुरियामल्लार : सं० पु० एक प्रकार का मल्लार जो सम्पूर्ण जाति का है और जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

धुर्रा : सं० पु० १. एक चावल जो गोल और सफेद होता है। (ब्र०श०) २. अपढ़, गँवार।

धुव : सं० पु० कोप, क्रोध, गुस्सा। (डिंगल)

धुस्सा : सं०पु० चादरनुमा वस्त्र, दुशाला। उ० राम ज्वाया कीमती धुस्सा ओढ़े हुए थे। (झूठा० ११६७)

धूती : सं० स्त्री० एक चिड़िया। उ० बाँसा बटेर लव और सिचान। धूती अरु चिपन्ना चटक भान। (सूदन)

धूना : सं० पु० १. गुग्गुल की जाति का एक बड़ा पेड़ जो असम तथा खसिया की पहाड़ियों पर बहुत होता है। इसका गोंद धूप की तरह जलाया जाता है और यह वारनिश बनाने के काम आता है। २. साधुओं का वह कुंड जिसमें वे आग जलाकर रखते हैं।

धूनी : सं० स्त्री० साधुओं का अग्निकुंड।

धूम : सं० स्त्री० एक घास जो तालों में होती है।

धूरडाँगर : सं० पु० सींगवाला चौपाया, ढोर।

धूला : सं० पु० टुकड़ा, खंड, कतरा।

धूहा : सं० पु० चिड़ियों को डराने का पुतला, काली हाँडी, आदि।

धेड़ी कौवा : सं० पु० बड़ा काला कौवा, डोमकौवा।

धेर : सं० पु० एक अनार्य जाति जो गाँव से बाहर रहती है और मरे चौपायों का माँस खाती है। राजपूताने में गाय-बैल आदि का चमड़ा निकालकर ये चमारों

के हाथ बेचते है। राजपूताने के घेर सूअर का मांस नही खाते।

घेरा : वि० भेंगा, अंबरतक्कू।

घोंधा : सं० पु० १. बेडौल पिंड। उ० मैं भी मिट्टी का घोंधा ही हूँ। (सरस्वती) २. भद्दा और बेडौल शरीर। मुहा० मिट्टी का घोंधा। १. मूर्ख, नासमझ, निकम्मा, आलसी।

घोकड़ : वि० हट्टा-कट्टा, मोटा-ताजा, मुस्टंडा।

घोखा : सं० पु० प्रवंचन, ठगने की क्रिया। उ० घोखे की टट्टी खड़ा करता है। (प्र०ग्र० ५८३)

घोती : सं० पु० एक प्रकार का बाज जिसकी मादा को वेसरा कहा जाता है।

घोविन : सं० स्त्री० शीशम की जाति का एक बड़ा वृक्ष जिसकी लकड़ी इमारती होती है। इसकी लकड़ी के तख्ते बहुत सहज में चीरे जा सकते हैं।

घोलधक : सं० पु० एक पेड़ का नाम।

घौंसा : सं० पु० एक बाजा। उ० मुहर्रम की ढोल या बारात के आगे धौंसा पिटता हो। (भ० नि० १।७१)

घौल : सं० पु० घूंसा, मुक्का। उ० हामिद की पीठ पर धौल मारकर शावाशी दी। (भूठा० १।२१०)

घौल धप्पड़ : सं० पु० घूंसा, चाँटा, मार-पीट, हाथापाई। उ० जूतीपैं जार और धौल धप्पड़ क्या। (प्रे० स० २।१६०)

नंदिन : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली जो बंगाल और असम में पाई जाती है। यह तीन फुट तक लंबी होती है और काफी भारी होती है।

नएपंज : सं०,पु० पाँच वर्ष की अवस्था का घोड़ा, जवान घोड़ा।

नकंद : सं० पु० एक प्रकार का बढ़िया चावल जो काँगड़े में होता है।

नकटेसर : सं० पु० एक प्रकार का पौधा जो फूलों के लिए लगाया जाता है।

नकदावा : सं० पु० चने या मटर की दाल के साथ पकाई हुई बरी या कुम्हड़ौरी।

नकलनोर : सं० पु० एक प्रकार की चिड़िया। मुनिया।

नक्की : वि० १. ठीक, दुरुस्त। २. पक्का। ३. पूरा। ४. चुकाया, चुकता, साफ।

नखता : सं० पु० एक प्रकार की चिड़िया जो भारत के सिवा और कहीं नहीं होती। यह भिन्न-भिन्न ऋतुओं में भिन्न-भिन्न स्थानों पर रहती है। इसे पाला भी जा सकता है।

नगफंग : वि० नटखट। उ० हो भले नग-फंग परे गढीवै अबए गढिन महरि मुख जोए। (तुलसी)

नगनिका : सं० स्त्री० १. संकीर्ण राग का एक भेद। २. क्रीड़ा नामक वृत्त का एक नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक यगण और एक गुरु होता है। उ० उगे चारो। हरी तारो। करो क्रीड़ा। रखो ब्रीड़ा।

नगरवा : सं० पु० ईख की एक प्रकार की बोवाई। यह काली मिट्टी वाली भूमि में की जाती है। इसमें खेतों को सींचने की आवश्यकता नही होती बल्कि बरसात के बाद जब ईख के अंकुर फूटते है तब जमीन पर पत्तियाँ बिछा देते हैं जिससे उसमें का पानी उड़ न जाए। पलवार।

नटई : सं० स्त्री० १. गला, गरदन। २. गले की घंटी (घाँटी)।

नटखट : वि० शैतान, चुलबुला। उ० निपट अटपटी बातें कहत हँसत नटखट निठुर। (प्रे० स० ८६)

नटना : सं० पु० १. बाँस की बनी छलनी जिससे रस छाना जाता है। २. मछली,

पकड़ने का वह बड़ा टोकरा जिसका पेंदा कटा होता है। टाप।

नटना : क्रि० स० ठगना। उ० उसने हरि के सौ रुपये नट लिए।

नटाई : सं० स्त्री० जुलाहों का वह औजार जिससे किनारों के ताने को ताना जाता है।

नटैया : सं० स्त्री० गरदन, गला। उ० मोहि ले चलिहै भरि बाँधि नटैया। (क० ७।५१)

नड़ोया : सं० स्त्री० अर्थी, शव। उ० नड़ोया भी उन्हीं के दरवाजे से उठा। (झूठा० ११८)

नतगुल्ला : सं० पु० घोंघा।

नतमी : सं० स्त्री० एक प्रकार का वृक्ष जो असम में बहुतायत से होता है। इसकी लकड़ी चिकनी, मजबूत और लाल रंग की होती है और इससे मेज-कुर्सियाँ बनती हैं।

नताउल : सं० पु० एक वृक्ष जिसकी लकड़ी नरम होती है। इसके रेशों से रस्से बनाए जाते हैं। इस पेड़ से निकली जहरीली राल तीर के फल में लगाते हैं।

नंदीजा : सं० स्त्री० अग्निमंथ वृक्ष, अरणी का पेड़।

नदीदी : वि० भूखी, प्यासी। उ० अबतो बीबी आ गई है अब इन नदीदी आँखों से क्या देखते हो। (गि० दी० २५०)

ननिहारी : सं० स्त्री० एक प्रकार की ईंट।

ननोई : सं० पु० एक प्रकार का जंगली धान जो बिना जोते बोए वर्षा में जलाशयों में स्वयं पैदा होता है। पसही, तिन्नी।

नपता : सं० पु० एक पक्षी जिसके डैनों पर काली या लाल चित्तियाँ होती हैं।

नपरका : सं० पु० एक पक्षी जिसकी गरदन और पेट लाल और पैर तथा चोंच पीली होती है।

नयन : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली।

नरई : सं० स्त्री० १. गेहूँ की बाल का डंठल। २. किसी घास का डंठल जो अन्दर से पोला हो। ३. एक घास जो प्रायः जलाशयों के पास होती है।

नरखड़ा : सं० पु० गला।

नरचा : सं० पु० एक प्रकार का पटुआ।

नरनी : सं० स्त्री० एक पौधा।

नरमाबड़ी : सं० स्त्री० वन कपास।

नरवाई : सं० स्त्री० गेहूँ की बाल के डंठल। उ० बालि छाँड़ि कै सूर हमारे अब नरवाई को लूनैं। (सूर०)

नरसल : सं० पु० पानी के सहारे होने वाली एक झाड़दार घास। (ब्र० श०)

नरसिंग : सं० पु० एक विलायती फूल।

नरसेज : सं० पु० तिधारा नामक थूहर जिसमें पत्ते नहीं होते।

नरहर : सं० स्त्री० पैर की वह हड्डी जो पिंडली के ऊपर होती है।

नरहा : सं० पु० एक जंगली वृक्ष।

नरी : सं० पु० एक प्रकार का बगुला।

नरेवी : सं० पु० एक पेड़ जिसकी छाल से खाकी रंग का गोंद निकलता है जो शीघ्र सूख जाता है और चमकीला होता है।

नरोह : सं० स्त्री० १. पिंडली की हड्डी, नली। २. कोल्हू की वह नली जिसमें से रस गिरता है।

नर्दकी : सं० स्त्री० एक प्रकार की कपास। कटील, निभरी, बगई।

नर्दबान : सं० पु० १. काठ की सीढ़ी। २. मार्ग, रास्ता। (लश०)

नर्दा : सं० पु० मैला बहने की नाली।

नर्री : सं० स्त्री० १. एक प्रकार की बारह-मासी घास जो ऊसर जमीन में भी होती

है। २. एक पहाड़ी वाँस जो हिमालय में होता है।

नलकोल : सं० पु० एक प्रकार का वेल।

नलवाँस : सं० पु० हिमालय की तराई में होने वाला एक वाँस, विधुली, देववाँस।

नलिया : सं० पु० वहेलिया।

नलुआ : सं० पु० १. पशुओं का एक रोग जिसमें सूजन हो जाती है। २. वाँस की पोर। वाँस के दो गाँसों के वीच का टुकड़ा।

नवाड़ा : सं० पु० एक प्रकार की नाव। उ० घावों से लोहू की नदी बह निकली जिसमें भुजाएँ मगरमच्छ-सी जनाती थी, वीच-वीच रथ वड़े नवाड़े से वहे जाते थे। (लल्लू)

नवारना : क्रि० अ० १. चलना, हटना। २. यात्रा करना, सफर करना।

नवारा : सं० पु० एक प्रकार की वड़ी नाव।

नवी : सं० स्त्री० वह रस्सी जिससे गाय के पैर में वछड़े का गला वाँधकर दूध दुहते हैं। नोई।

नसरी : सं० स्त्री० १. एक प्रकार की मधुमक्खी। २. इस मधुमक्खी के छत्ते का मोम।

नसी : सं० स्त्री० कुसी की नोंक, हल के फार की नोंक।

नसीहा : सं० पु० मुलायम मिट्टी जोतने के लिए हलका हल।

नहँ : सं० पु० एक प्रकार का वढ़िया चावल जो उत्तर-प्रदेश में होता है।

नहन : सं० पु० पुरवट खीचने की मोटी रस्सी। नार। उ० चहनि नेह की नहनि सों कियो जगत वश राम। (रघुराज)

नहरम : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली जो भारत की सभी नदियों में प्राप्त होती है। पहाडी झरनो में यह अधिकता से होती है।

नहरुआ : सं० पु० एक प्रकार का रोग जो प्रायः कमर के निचले भाग में होता है। पानी के साथ एक विशेष प्रकार के कीडे के शरीर में घुसने के कारण यह होता है। इसमें पहले सूजन होती है और फिर छोटा-सा घाव होता है और घाव से डोरी की तरह यह कीड़ा निकलता है जो प्रायः गजों लम्वा होता है। इस रोग से कभी-कभी पैर वेकाम हो जाते है। नारू, नहरू, नाहरु।

नहला : सं० पु० करनी की तरह का एक औजार जो नक्काशी वनाने के काम में आता है।

नहाँ : सं० पु० १. पहिये के ठीक वीच का सुराख जिसमें धुरी पहनाई जाती है। २. घर के आगे का आँगन।

नहाख : सं० पु० १. ताँत। २. वाज। ३. चाम का टुकड़ा। ४. चरस या पुरवट खीचने का रस्सा। उ० मारसि गाड नहाख लागी। (मा० २।३६।४)

नहूर : सं० स्त्री० एक भेड़ जो तिव्वत में होती है और कभी-कभी नेपाल में भी आ जाती है। वर्फ पडने पर इसके झुंड पर्वत से उतर कर सिंधु नदी तक आ जाते हैं।

नाई : सं० स्त्री० २. नाकुलीकंद। २. अनाज का कुंड। (ब्र० श०)

नाइत : सं० पु० समुद्र मार्ग से व्यापार करने वाला वणिक। उ० नाइत माँझ भँवरि हित गीवा। (जा० १६२।४)

नाउत : सं० पु० सयाना, झाड़-फूंक करने वाला, ओझा।

नाखना : क्रि० स० गिरना, डालना। उ० मत नाखो गुलाल। (भा० २।३७७)

नाडूदाना : सं० पु० बैलों की एक जाति जो मैसूर में होती है। इस जाति के बैल बहुत बड़े नहीं होते पर मेहनती और मजबूत अधिक होते हैं।

नादीदा : सं० पु० भूखा, निर्लज्ज, बेशरम, नीच, स्वार्थी। स्त्री० नादीदी। उ० क्या नादीदा जमाना आ गया है। (झूठा० २।२७२)

नाना : सं० पु० १. माता का पिता, मातामह। उ० सो लंका तब नाना केरी। बसे आप मम पितहि खदेरी। (विश्राम) २. छोटा, नन्हा। (गुजराती)

नानी : सं० स्त्री० १. माँ की माता। मातामही। मुहा० नानी मर जाना, होश ठिकाने आना। उ० हरमोहन की नानी तो थाने वालों को देखते ही मर गई थी। (अयोध्या) २. छोटी, नन्ही। (गुजराती)

नायत : सं० पु० वैद्य (डिंगल)।

नावत : सं० पु० देखिये, 'नाइत'। उ० भए विनु जीव नावत औ ओझा। (जा० १६२।४)

नावरा : सं० पु० दक्षिण में होने वाला एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत साफ चिकनी और मजबूत होती है। इससे मेज-कुर्सी आदि अच्छे बनते हैं।

नाहट : वि० बुरा, नटखट।

नाहर : सं० पु० १. टेसू का फूल। २. व्याघ्र, सिंह।

निकुही : सं० स्त्री० एक चिड़िया।

निखोड़ा : वि० (स्त्री० निखोड़ी) कठोर, निर्दय।

निगाल : सं० पु० १. एक प्रकार का पहाड़ी बाँस जो हिमालय में पैदा होता है। रिंगाल। २. घोड़े की गरदन।

निगाली : सं० स्त्री० १. बाँस की बनी नली। २. हुक्के की नली।

निगुरा : वि० कृतघ्न। उ० ऐसे ये निगुरे— (भा० २।१५६)

निगोड़ा : सं० पु० १. अभागा, निकम्मा, कमीना। (स्त्री० निगोड़ी) उ० छलिन की छोड़ी सो निगोड़ी छोटी जाति-पाँति। (क० ७।१२)

निचोड़ : सं० पु० सार, तत्त्व। उ० सबका निचोड़ यह है कि पुराने सब लोग अहमक थे। (प्र० ग्र० ५०६)

निझाना : क्रि० अ० ताक-झाँक करना।

निटर : वि० जिसमें कुछ दम न हो। जिसका जोर मर गया हो, जो उपजाऊ न रह गया हो। (खेत या जमीन)

निनाया : सं० पु० खटमल।

निनावाँ : सं० पु० जीभ, मसूड़े तथा मुँह के भीतरी भागों में निकलने वाले महीन लाल दाने जिनमें छरछराहट और पीड़ा होती है।

निपट : वि० सरासर, सिर्फ, निरा, विशुद्ध। उ० विवरन भएउ निपट निरपालू। (मा० १।१६१।४)। क्रि० निपटना, निबटना, कार्य से मुक्ति पाना।

निबड़ा : सं० पु० एक प्रकार का बड़ा घड़ा।

निबह : सं० पु० समूह, झुंड। उ० मनहु उडगन निबह आए मिलन तम तजि द्वेषु। (तुलसी)

निमरी : सं० स्त्री० एक प्रकार की कपास जो मध्य भारत में होती है। बरही, वगई।

निरजी : सं० स्त्री० संगतराशों की महीन टाँकी जिससे संगमरमर पर काम किया जाता है।

निरमसोर : सं० पु० एक औषधि या जड़ी जिससे अफीम के विष का प्रभाव दूर हो

जाता है। यह पंजाब में होती है।

निराजी : सं० स्त्री० जुलाहों के करघे की वह लकड़ी जो हत्थे और तरोंछी को मिलाने के लिए दोनों सिरों पर लगी रहती है।

निरोठा : वि० बदसूरत, कुरूप।

निवाड़ : सं० पु० पलंग की मोटे सूत की बनी पट्टी, निवार।

निवाड़ा : सं० पु० १. छोटी नाव। २. नाव की एक क्रीड़ा जिसमें उसे बीच में ले जाकर चक्कर देते है। नावर।

निवार : सं० स्त्री० १. एक प्रकार की मूली जो बहुत मोटी और स्वाद में कुछ मीठी होती है। २. निवाड़।

निसावरा : सं० पु० एक प्रकार का कबूतर।

निस्की : सं० स्त्री० एक प्रकार का रेशम का कीड़ा जिसका रेशम बंगाल के देशी कीड़ों के रेशम की अपेक्षा कुछ कम मुलायम और चमकीला होता है। इसके तीन भेद होते है—मदरासी, सोनामुखी और क्रमि।

निहल : सं० पु० वह जमीन जो नदी के पीछे हट जाने से निकल आई हो। गंगबरार, कछार।

निहुरना : क्रि० अ० झुकना, नवना। उ० (क) यक से पूजा जौन विचारा, यक से निहुरि निमाज गुजारा। (कबीर) (ख) ससि सेखर के सिर ते सुमनों निहुरे ससि लेत कला अपनी। (ब्रह्मा०)

निहोरना : क्रि० स० प्रसन्न करना, मनाना। उ० रामहि कौन निहोर। (तुलसी)

नीकी : वि० अच्छी (∠ णिक्क, सर्वथा मल रहित, णाया १।१) उ० नीकी है यह साँकरी खोरी। (भा० २।६०)

नीज : सं० स्त्री० पानी भरने की रस्सी, लेज।

नीरम : सं० पु० वह बोझ जो जहाज पर केवल उसकी स्थिति ठीक रखने के लिए रहता है। (लश०)

नीलतरा : सं० स्त्री० बौद्ध कथाओं के अनुसार गांधार देश की एक नदी जो उरुवेलारण्य से होकर बहती थी जहाँ जाकर बुद्धदेव ने उरुवेल काश्यप, गया काश्यप और नदी काश्यप नामक तीन भाइयों का अभिमान दूर किया था।

नीली चकरी : सं० स्त्री० एक प्रकार का पौधा।

नीस : सं० पु० सफेद धतूरा।

नीसानी : सं० स्त्री० तेईस मात्राओं का एक छंद जिसमें १३वी और १०वीं मात्रा पर विराम होता है। यह उपमान के नाम से प्रसिद्ध है। उ० भाई सूरजमल से कहना या भाई। हम तुम बेटे साहि के बुझे न लराई।

नुकरी : सं० स्त्री० जलाशयों के पास रहने वाली एक चिड़िया जिसके पैर सफेद और चोंच काली होती है।

नुकाई : सं० स्त्री० खुरपी से निराने का काम।

नुकाना : क्रि० स० अलग करना, छिलका उतारना।

नुखरना : क्रि० अ० भालू का चित लेटना। (कलंदर)

नुखार : सं० स्त्री० छड़ी की मार जो कलंदर भालू के मुँह पर मारते है।

नुजह : सं० पु० संगीत में चौबीस शोभाओं में से एक।

नुनी : सं० स्त्री० छोटी जाति का तूत जो हिमालय पर कश्मीर से लेकर बरमा तक

तथा दक्षिण भारत के पहाड़ों पर होता है।

नूका : सं० पु० २४ मात्राओं का एक छंद जो कज्जल के नाम से प्रसिद्ध है।

नूड़ी : सं०पु०मोटा वुरुश, खरहरा, झाड़ू। उ० मुलायम दूबों की नूड़ी से भैंस की पीठ, पेट, पुट्ठे —(वल० १०)

नूधा : सं० पु० एक प्रकार की तम्वाकू।

नून : सं० पु० १. आल। २. आल की जाति की एक लता जिसमें एक प्रकार का लाल रंग निकलता है।

नूरा : सं० पु० वह कुश्ती जो आपस में मिलकर लड़ी जाए अर्थात् जिसमें जोड़ एक दूसरे के विरोधी न हों। (पहलवान)

नूरी : सं० स्त्री० एक चिड़िया।

नेकरी : सं० स्त्री० समुद्र की लहर का थपेड़ा जिससे जहाज किसी ओर को वढ़ता है। हाँक। (लश०)

नेगड़ी : सं० स्त्री० स्त्रियों की एक गाली नंगी, लुच्ची। उ० मुँह सँभालकर वात कर नेगड़ी। (मैला० ६३)

नेग : सं० पु० १. विवाह आदि शुभ अवसरों पर संवंधियों, आश्रितों आदि को कुछ दिए जाने का नियम। देने-पाने का हक या दस्तूर। जैसे नेग में उनको वहुत कुछ मिला। २. वँधा हुआ पुरस्कार, इनाम, वख्शीश। मुहा० नेग लगना १. पुरष्कार देना। २. सार्थक होना, सफल होना।

नेचवा : सं० पु० पलंग का पाया।

नेत : सं० पु० एक प्रकार की रेशमी चादर उ० पालंग पाँवकि आछे पारा। नेत विछाव चलै जो वाटा। (जायसी)

नेरती : सं० स्त्री० गरमी में लपट लिए चलने वाली हवा। (दिनमान)

नेरवाती : सं० स्त्री० नीले रंग की एक पहाड़ी भेड़ जो भूटान से लद्दाख तक पाई जाती है। इसके ऊन से कंवल आदि वनते हैं।

नेवग : सं० पु० नेग। (डिंगल)

नेवजी : सं० स्त्री० एक फूल का नाम।

नेवरा : सं० पु० लाल कपड़े की झारी की खोली।

नेवा : वि० चुप, मौन।

नेवार : सं० पु० नेपाल में वसने वाली एक आदिम जाति।

नेसकुन : सं० पु० वंदरों का जोड़ा खाना। (कलंदर)

नेहरुआ : सं० पु० कमर में होने वाला एक रोग। उ० दंभ कपट मदपान नेहरुआ। (मा० ७।१२१।१८)

नैक : वि० थोड़ा। उ० नैक वाहर वालों से मिल लेने दिया कर। (क० पु० २७३)

नैंटी : सं० स्त्री० दुद्धी नामक घास या जड़ी। दूधिया घास।

नोकना : क्रि० स० ललचना। उ० उत ही स्याम एकटक प्यारी छवि अंग-अंग अवलोकत। रीझि रहे उत हरि इत राधा अरस परस दोऊ नोकत। (सूर०)

नोनहरा : सं० पु० पैसा। (गंधर्वों की वोली)

नोना चमारी : सं० स्त्री०एक प्रसिद्ध जादूगरनी जिसकी दोहाई अव तक मंत्रों में दी जाती है। ऐसा माना जाता है कि यह कामरूप देश की थी।

नोल : सं० पु० चिड़िया की चोंच।

नोलिया : सं० पु० एक चावल विशेष। (व्र० श०)

नौजी : सं० स्त्री० लीची।

नौल : सं० पु० जहाज पर माल लादने का भाड़ा।

नौलखी : सं० स्त्री० ताने को दवाने के

लिए एक लकड़ी जिसमें इधर-उधर वजनी पत्थर बँधे रहते हैं। (जुलाहा)

नौलासी : वि० नर्म, मुलायम, कोमल।

नौहरा : सं० पु० किसान के पशु जहाँ बँधते हैं वह स्थान। (व्र० श०)

पंग : सं० पु० १. एक पेड़ जो असम की ओर सिलहट, कछार आदि में होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और मकानों में लगती है। लकड़ी से एक प्रकार का रंग भी निकलता है। २. एक प्रकार का नमक जो लिवरपूल से आता है।

पंगई : सं० स्त्री० नाव खेने का छोटा डाँड़ा जिसका एक जोड़ा लेकर एक ही आदमी नाव चला सकता है। हाथ हलेसा, चमगा, वैठा, चप्पु।

पंगायत : सं० पु० पायताना, गोड़वारी।

पंचो : सं० पु० गुल्ली-डंडे के खेल में डंडे से गुल्ली को मारकर दूर फेंकने का एक ढंग। इसमें गुल्ली को बाएँ हाथ से उछाल कर दाहिने हाथ से मारते हैं।

पंजीरी : सं० स्त्री० दक्षिण का एक पौधा जो औषध के काम आता है। जुकाम या सर्दी में इसकी पत्तियों और डंठलों का काढ़ा दिया जाता है। इंदुवर्णी।

पंधलाना : क्रि० स० फुसलाना, बहलाना।

पँगरा : सं० पु० मझोले आकार का एक प्रकार का कँटीला वृक्ष जो प्राय: सारे भारत में पाया जाता है। इसकी लकड़ी मुलायम होती है और तलवार की म्यान व तख्ते वनाने के काम आती है। ढौल-ढाक, ढाक, मदार।

पँचवान : सं० पु० राजपूतों की एक जाति उ० पत्ती औ पँचवान वघेले। अगर यार चौहान चंदेले। (जायसी)

पँडुर : सं० पु० पानी में रहने वाला साँप। डेढहा। उ० ऐसे हरि सों जगत लरतु है। पँडुर कतहूँ गरुड़ धरतु है। (कबीर)

पँवर : सं० पु० सामान, सामग्री। उ० भसम गंग लोचन अहि डमरू पंचतत्व सूचक अस भौंरू। हर के वस पाँचउ यह पँवरू जिनसे, पिंड उरेह। (देवस्वामी)

पँवारी : सं० स्त्री० लोहारों का वह औजार जिससे लोहे में छेद किया जाता है।

पइता : सं० पु० एक छंद जिसे 'पाईता' भी कहते हैं। इसमें एक मगण एक भगण और एक सगण होता है जैसे—ताके दोनों कुल गनिए। श्री दोनों लोचन मनिए। जेते भारी गुण गनियो। सोहै लागे श्रुति सुनियो।

पइला : सं० पु० अनाज मापने का एक वरतन जिसमें पाँच सेर अनाज आता है।

पकसालू : सं० पु० एक प्रकार का वाँस जो पूर्व और उत्तर वंगाल, असम, चटगाँव तथा वरमा में होता है। पानी भरने के लिए इसके चोंगे वनते हैं। यह छाता वनाने के काम में भी आता है।

पकौड़ी : सं० स्त्री० एक नमकीन पकवान जिसे वेसन से तैयार किया जाता है, पु० पकौड़ा, भजिया। उ० प्रभानाथ ने गरम पकौड़ियाँ खाकर फलों पर हाथ लगाया। (टे० मे० रा० १३)

पखाटा : सं० पु० धनुष का कोना।

पखेव : सं० पु० वह खाना जो भैंस या गाय को वच्चा जनने पर छह दिन तक दिया जाता है। इसमें सोंठ, गुड़, हल्दी, मगरैला और उर्द का आटा होता है।

पगरना : सं० पु० सोने-चाँदी के नक्काशों का एक औजार जो नक्काशी करते समय छोटा गड्ढा वनाने के काम में आता है।

पगरा : सं० पु० पोला और गोलखा वनाने

का एक औजार।

पगारना : क्रि० स० फैलाना, जैसे जरा धोती को पगार देना।

पगुराना : क्रि० अ० १. पागुर करना, जुगाली करना। २. हजम कर जाना, डकार जाना, ले लेना। लो० भैंस के आगे बीन बजाए भैंस खड़ी पगुराय।

पगेरना : सं० स्त्री० कसेरों की एक प्रकार की छेनी जो बरतनों पर नक्काशी के काम आती है।

पघरिया : वि० बड़ा हँसिया या दराती। उ० पघरिया हाँसू लेकर दोपहर रात में जाऊँ। (बल० ८२)

पघाल : सं० पु० एक प्रकार का बहुत कड़ा लोहा।

पचड़ा : सं० स्त्री० झंझट, आपत्ति। उ० इस पचड़े से तुम्हें क्या। (भा० २।१३१) ओझा लोगों के द्वारा आवेश के समय गाया जाने वाला गीत।

पचानक : सं० पु० एक पक्षी जिसका शरीर एक बालिश्त लंबा होता है और डैने और गर्दन काली होती है। दक्षिण भारत और बंगाल इसके स्थायी आवास स्थान हैं।

पचारी : सं० स्त्री० भचैंड़ा और तरौंची नामक लकड़ियों के मध्य जो दो लकड़ी में ठुकी रहती है उसे पचारी कहते हैं। (ब्र० श०)

पचौआ : सं० पु० किसी कपड़े पर छींट छप चुकने के पीछे आठ या बारह दिन तक उसे धूप में खुला रखना। ऐसा करने से छापते समय सारे स्थान पर जो धब्बे आ जाते हैं वे छूट जाते हैं।

पचौली : सं० स्त्री० एक प्रकार का पौधा जो मध्य भारत तथा बम्बई में अधिकता से होता है। इसकी पत्तियों से जो तेल निकाला जाता है वह विलायती सुगंधियों में पड़ता है।

पच्छकट : सं० पु० आल की मझोली जड़ जो रंगाई के काम में आती है।

पछटी : सं० स्त्री० तलवार। (डिंगल)

पछावरि : सं० स्त्री० एक प्रकार का पकवान। उ० पुनि झारि सौं द्वै विधि स्वाद बने। विधि दोइ पछावरि सात पने। (केशव)

पछिनाव : सं० पु० पशुओं का एक रोग।

पछ्यावर : सं० स्त्री० एक प्रकार का सिखरन या शरबत। उ० भूतल के सब भूपत को मद भोजन तो बहु भाँति कियोई। मोद सो तारकनंद को भेद पछ्यावरि पान सिरायो हियोई। (केशव)

पजूसण : सं० पु० जैन मत का एक व्रत।

पजोखा : सं० पु० किसी के मरने पर उसके संबंधियों से शोक प्रकाश। मातमपुरसी।

पट : सं० पु० १. टाँग। २. कुश्ती का एक पेच।

पटई : सं० स्त्री० बहँगी, लकड़ी, बाँस की लकड़ी। उ० एक आदमी छींकों पर यह सब लिए हुए था, पटई के सहारे। (बल० १४३)

पटकरी : सं० स्त्री० एक प्रकार की बेल।

पटतारना : क्रि० स० अंदाजना, खड्ग भाले आदि को उस स्थिति में पकड़ना जिसमें उनसे वार किया जाता है। उ० फिर पठान सों जंगहित चल्यो सेला-पटतारि। (सूदन)

पटर-पटर : अनु० बोलने की आवाज, बड़बड़ाने की ध्वनि, बेबात बोलने की क्रिया। उ० आँचल की ओट किए बैठी पटर-पटर बोल रही थी। (आंधा० १४५)

पटरा : सं० स्त्री० चपटी देह की काँटेदार एक मछली। (ब्र० श०)

पटवा : सं० पु० एक प्रकार का बैल जिसका

रंग नारंगी जैसा होता है यह बैल मजबूत और तेज चलने वाला होता है।

पटुवा : सं० पु० तोता।

पटेर : सं० स्त्री० लम्बी पत्तियों वाली झाड़ीदार घास।

पटोल : सं० पु० परवल की लता या फल। बंगाली पोटल।

पटौनी : सं० पु० माँझी, मल्लाह।

पट्ट : सं० पु० सुवा, तोता।

पट्टा : सं० पु० १. हिसाब-किताब, सरकारी लिखा-पढ़ी। उ० मैंने आपकी गुलामी का पट्टा कब लिखा। (टे० मे० रा० ३६२) २. कपड़े या चमड़े की बनी तख्ती या पट्टी, जैसे गले में पट्टा डाल दो।

पठान : सं० पु० जहाज या नाव का पेंदा।

पठार : सं० पु० एक पहाड़ी जाति।

पठावर : सं० पु० एक प्रकार की घास।

पड़ता : सं० पु० १. दर, शरह। २. मूकर की दर, लगान की शरह। ३. सामान्य दर, औसत।

पड़पड़ : सं० स्त्री० पूंजी, मूलधन। (डिंगल)

पड़म : सं० पु० एक प्रकार का मोटा सूती कपड़ा जो प्राय: खेमे आदि बनाने के काम आता है।

पड़वा : सं० पु० घाट पर रहने वाली वह नाव जो यात्रियों को इस पार से उस पार ले जाती है। घटहा। (लश०)

पड़वी : सं० स्त्री० एक प्रकार की ईख जो वैशाख या जेठ में बोई जाती है।

पड़ुवा : सं० पु० ईख का खेत।

पढ़नी : सं० पु० एक प्रकार का धान।

पतंखा : सं० पु० एक प्रकार का बगुला, पतोखा।

पतचीली : सं० स्त्री० एक प्रकार का पौधा।

पतना : सं० पु० योनि का तटभाग, योनि का किनारा।

पतनी : सं० पु० १. वह मल्लाह जो घाट की नाव में यात्रियों को बैठाकर आर-पार कराता है। २. जमींदारी। उ० नौ-सौ बीघे की पतनी के एकमात्र मालिक हो जाएँगे। (मैला० ६५)

पतरिंग : सं० पु० एक पक्षी जिसका सारा शरीर हरा और चोंच पतली और प्राय: दो अंगुल लम्बी होती है। यह मकड़ियों को पकड़ कर खाता है। इसकी गणना गाने वाले पक्षियों में होती है।

पतरेंगा : सं० पु० पतरिंगा पक्षी।

पतली : सं० स्त्री० जूआ, द्यूत। (लश०)

पतलो : सं० स्त्री० १. सरकंडे की पताई, सरपत की पताई। २. सरकंडा, सरपत।

पताकरा : सं० पु० एक वृक्ष जिसकी लकड़ी सफेद रंग की और मजबूत होती है और गृह निर्माण में इसका बहुत उपयोग किया जाता है। इसके फल खाये जाते हैं।

पतामी : सं० स्त्री० एक प्रकार की नाव।

पतारी : सं० स्त्री० बत्तख की जाति का एक जलपक्षी जो उत्तर भारत में जलाशयों के किनारे पाया जाता है। यह ऋतु के अनुसार अपने रहने के स्थान में परिवर्तन करता रहता है। इसका शिकार किया जाता है।

पतासी : सं० स्त्री० बढ़इयों का एक औजार, छोटी रुखानी।

पतीरी : सं० स्त्री० एक प्रकार की चटाई।

पतुली : सं० स्त्री० कलाई में पहनने का एक आभूषण जिसको अवध में पहना जाता है।

पतोई : सं० स्त्री० वह फेन जो गुड़ बनाते समय खौलते हुए रस से उठता है।

पतोखा : सं० पु० एक प्रकार का बगुला जो मलंग बगुले से छोटा और किलचिपा

से बड़ा होता है। इसके पर खूब सफेद, नरम, चिकने और चमकीले होते हैं। टोपियों आदि के बनाने में प्रायः इसी के पर काम में लाए जाते हैं। पतंखा।

पत्ती : सं० पु० राजपूतों की एक जाति। उ० पत्ती औ पँचवान वघेले। अगर-यार चौहान चंदेले। (जायसी)

पत्री : सं० स्त्री० हाथ में पहनने का एक गहना, जहाँगीरी।

पदमचल : सं० पु० रेंवद-चीनी।

पदर : सं० पु० १. एक प्रकार का पेड़। २. ड्यौढ़ीदारों के बैठने का स्थान। (डिंगल)

पदोक : सं० पु० एक वृक्ष जो वरमा में अधिकता से पैदा होता है। इसकी लकड़ी मजबूत और कुछ लाली लिए सफेद रंग की होती है।

पद्दी : सं० स्त्री० खेल में किसी लड़के का जीतने पर दाँव लेने के लिए हारने वाले लड़के की पीठ पर चढ़ना।

पनचो : सं० स्त्री० गेड़ी के खेल में खेलने के लिए पतली लकड़ी या गेड़ी।

पनसूर : सं० पु० एक प्रकार का वाजा।

पनिक : सं० पु० जुलाहों का एक कैंची-नुमा औजार जिस पर ताना फैलाकर पाई करते हैं। कंडाल।

पनिहारी : सं० स्त्री० हल के कूड़े के नीचे वाली लकड़ी की किल्ली। (ब्र० श०)

पनेला : सं० पु० एक प्रकार का गाढ़ा, चिकना और चमकीला कपड़ा जो प्रायः गरम कपड़ों के नीचे अस्तर देने के काम में आता है।

पन्ना : सं० पु० पिरोजे की जाति का हरे रंग का एक रत्न जो प्रायः स्लेट और ग्रेनाइट की खानों से निकलता है। मरकत। जमुर्रद। इसका अधिष्ठाता वुध है। सर्वोत्तम पन्ना दक्षिण अमरीका में कोलंविया की खानों से निकलता है।

पन्नी : सं० स्त्री० पठानों की एक जाति।

पन्थारी : सं० स्त्री० एक जंगली वृक्ष जो मझोले कद का होता है और सदा हरा रहता है। इसकी लकड़ी टिकाऊ और चमकदार होती है। इससे गाड़ियाँ, कुर्सियाँ और नावें वनती हैं।

पपटा : सं० पु० छिपकली।

पपड़ी : सं० स्त्री० खुरंट, छिलका। उ० गोथन शीतला की पपड़ी। (प्र०ग्र० ५२)

पपनी : सं० स्त्री० वरौनी, पलक के वाल। उ० उनकी ओर देखकर अपनी पपनी फिर मैंने नीचे गिरा ली। (वल० १००)

पपहा : सं० पु० १. एक कीड़ा जो धान की फसल को हानि पहुँचाता है। २. एक प्रकार का घुन जो गेहूँ, जौ आदि में लगता है।

पपीहा : सं० पु० १. कीड़े खाने वाला एक पक्षी जो वसंत और वर्षा में प्रायः आम के पेड़ों पर वैठकर वड़ी सुरीली आवाज में वोलता है। चातक। कोयल। (पप्पीअ दे० ना० ६।१२) २. सितार के छह तारों में से एक जो लोहे का होता है। ३. आल्हा के वाप का घोड़ा जिसे माँड़ा के राजा ने हर लिया था।

पपीता : सं० पु० एक प्रसिद्ध वृक्ष, पपैया, अंडखरवूजा, वातकुम मधुकर्करी। इसके लसदार दूध में भोजद्रव्यों को गलाने का गुण होता है। यह मंदाग्नि में उपकारक एवं पाचन गुण में विशिष्ट है।

पपोटन : सं० स्त्री० एक पौधा जिसके पत्ते वाँधने से फोड़ा पकता है। इसका फल मकोय की तरह का होता है।

पपोरना : क्रि०स० १. वाँहें ऐंठकर उनका भराव या पुष्टता देखना। उ० कंस लाज

भय गर्व जुत चल्यो पपोरत बाँह। (व्यास) २.धीरे-धीरे चूसकर खाना।

पपता : सं० स्त्री० वाम मछली, गुंग बहरी।

पवई : सं० स्त्री० मैना की जाति का एक पक्षी जिसकी बोली बहुत मीठी होती है।

पवारना : क्रि०स० फेंकना।

पव्वय : सं० पु० एक चिड़िया।

पमरा : सं०स्त्री० शल्लुकी नामक सुगंधित पदार्थ।

पम्मन : सं० पु० एक प्रकार का गेहूँ जो बड़ा और बढ़िया होता है।

परई : सं०स्त्री० परवा, ढक्कन, घड़े आदि का आवरण।

परकना : सं० पु० मक्का का रोग जिसमें वह सूख जाती है, कठिया गेहूँ।

परचर : सं० पु० बैलों की एक जाति जो अवध के खीरी जिले के आस-पास पाई जाती है।

परचा : सं० पु० जगन्नाथ जी के मंदिर का वह प्रधान पुजारी जो मंदिर का प्रबंध करता है और पूजा-सेवा आदि की देख-रेख करता है।

परछा : सं०पु० १. जुलाहों की नली जिस पर वे सूत लपेटते हैं, सूत की फिरकी, घिरनी। २.बड़ी बटलोई, बड़ा देग। ३. कढ़ाई। ४.मिट्टी का मझोला बरतन।

परजन : सं० पु० डेढ़-दो हाथ ऊँचा एक प्रकार का पौधा जो राजपूताना, पंजाब और अफगानिस्तान में जोती-बोयी हुई भूमि में प्राय: पाया जाता है। इसमें पीले रंग के बहुत छोटे-छोटे फूल लगते हैं।

परताजना : सं०पु०सुनारों का एक औजार जिनसे वे गहनों पर मछली के सेहरे का आकार बनाते हैं।

परन : सं० पु० मृदंग आदि को बजाते समय मुख्य बोलों के बीच बजाये जाने वाले बोल।

परपराना : क्रि० स० १.मिर्च आदि तिक्त चीजों का जीभ या शरीर के किसी भाग में एक विशेष प्रकार का उग्र संवेदन उत्पन्न करना, तीक्ष्ण लगना, चुनचुनाना २.ईर्षा या क्रोध से बड़बड़ाना।

परबल : सं०पु० एक बेल जिसके फलों की तरकारी बनती है। पटोल।

परमर : सं० पु० संगीत में एक ताल।

परमाटा : सं० पु० संगीत में एक ताल।

परतल : सं० पु० एक जंगली पेड़ जिसकी जड़ और छाल दवा के काम आती है और लकड़ी इमारतों में लगती है।

परवर : सं० पु० आँख का एक रोग।

परवा : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास।

परसी : सं०स्त्री० एक पेड़ जिसकी लकड़ी मेज-कुर्सी बनाने के काम आती है। इसकी लकड़ी स्याह, सख्त और मजबूत होती है।

परसोर : सं० पु० एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

परांचा : सं० पु० एक प्रकार की चौड़ी और लंबी नाव। (लश०)

परात : सं० पु० वह बरतन जिसमें आटा गूँदा जाता है।

परिक : सं० स्त्री० खराब या खोटी चाँदी। (सुनार)

परिचरत : सं० स्त्री० प्रलय, कयामत। (डिंगल)

परिया : सं० स्त्री० १. ताना तानने की लकड़ियाँ (जुलाहा)। २. बड़े मुँह के बरतन का ढक्कन। (ब्र० ग०)

परियार : सं० पु० १. शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का एक उपभेद, तमिलनाडु में बसने वाली एक निम्न जाति।

परिहा : सं० पु० एक प्रकार का छंद।

परुआ : सं० पु० १. एक प्रकार की भूमि। २. वेइज्जती या अपमान का वदला।

परुई : सं० स्त्री० १. भड़भूंजे की वह नाँद जिसमें डालकर वह अन्न भूनता है। २. मिट्टी का वना ढक्कन जो मिट्टी के वड़े वरतनों पर लगाया जाता है। ३. ढक्कननुमा मिट्टी का वरतन जिसमें दाल या साग आदि खाया जाता है।

परूँगा : सं० पु० एक प्रकार का शाहवलूत जो हिमालय पर होता है।

परेवा : सं० पु० एक मजवूत धागा जिससे वच्चे पतंग उड़ाते हैं।

परेली : सं० स्त्री० तांडव नृत्य का प्रथम भेद जिसमें अंग संचालन अधिक और अभिनय थोड़ा होता है। देसी।

परेह : सं० पु० एक प्रकार की कढ़ी जो वेसन को खूव पतला घोलकर और घी या तेल में पकाकर वनती है।

परेहना : क्रि० स० खेत में पानी देना। (दे० ना० ६।२६)

परेहा : सं० पु० वह जमीन जो हल चलाने के वाद सींची गई हो।

परोता : सं० पु० १. एक प्रकार का टोकरा जो गेहूँ की पयाल से पंजाव में वनता है। २. आटा, गुड़, हल्दी, पान आदि जो किसी शुभ कार्य में हज्जाम, भाट आदि को दिए जाते हैं।

परोरना : क्रि० स० अभिमंत्रित करना, मंत्र पढ़कर फूंकना।

परोका : सं० स्त्री० वह भेड़ जो पूरी जवान होने पर भी वच्चा न दे। वाँझ भेड़।

परोता : सं० स्त्री० वह चादर का कपड़ा जिससे अनाज वरसाते समय हवा करते हैं। परती।

पलंजी : सं० स्त्री० एक वरसाती घास जो उत्तरी भारत के मैदानों में होती है। भूसा, गुलगुला, वड़ा मुरमुरा।

पलथन : सं० पु० रोटी वनाने के वाद वचा हुआ आटा। लोई में लगाने का आटा।

पलना : क्रि० स० कोई पदार्थ किसी को देना। (दलाल)

पलास : सं० पु० कनवास नामक मोटा कपड़ा।

पलासना : क्रि० स० सिल जाने के वाद जूते को काट-छाँटकर ठीक करना।

पलिजी : सं० स्त्री० एक घास जिसके दानों को दुर्भिक्ष के समय गरीव लोग खाते हैं।

पलिया : सं० पु० पशुओं का एक रोग जिसमें उनका गला फूल जाता है। घटेरुआ।

पलुआ : सं० पु० सन की जाति का एक पौधा।

पवंगा : सं० पु० एक प्रकार का छंद जो यों है—उ० दूजे दिन दरवाज सुजान सुआइ के। देखत ही मनसूर महासुख पाइके। खिलवति करी नवाव जनाइ वकील सों। मसलति वूझन काज सुजाल सुसील सों। (सूदन)

पवना : सं० पु० पौना, झरना जो लोहे का होता है।

पवाँर : सं० पु० १. पमार, पवाड़, चकवड़। २. क्षत्रियों की एक शाखा।

पवारी : सं० स्त्री० नलिका नामक गंध द्रव्य।

पवेरना : क्रि० स० छितराकर बीज वोना।

पश्तो : सं० पु० १. साढ़े तीन मात्राओं का ताल जिसमें दो आघात होते हैं। इसके वोल ये हैं। ति। ता। धि। धा। गे। २. भारत की आर्य भाषाओं में से एक। अफगानिस्तान की भाषा।

पसंदा : सं० पु० १. मांस के एक प्रकार के

कुचले हुए टुकड़े। पारचे का गोश्त। २. एक प्रकार का कवाव।

पसई : सं० स्त्री० पहाड़ी राई जो हिमालय की तराई और विशेषतः नेपाल तथा कुमाऊँ में होती है। इसकी पत्तियाँ गोभी के पत्तों की तरह होती है और इसकी फसल जाड़े में तैयार होती है।

पसकरण : वि० कायर, डरपोक। (डिंगल)

पसर : सं० पु० १. रात के समय पशुओं को चराने का काम। २. आक्रमण, धावा, चढ़ाई।

पसही : सं० स्त्री० तिन्नी का चावल।

पसाई : सं० स्त्री० एक घास जो तालों में होती है। पसताल।

पसारी : सं० पु० तिन्नी का धान, पसवन, पसेही।

पसूज : सं० स्त्री० वह सिलाई जिसमें सीधे टाँके भरे जाते है।

पसूजना : क्रि० स० सीना, सिलाई करना।

पसूम : वि० कठोर। (डिंगल)

पसेवा : सं० पु० सुनारों की अँगीठी पर चारों ओर रहने वाली चार ईंटें।

पस्सी : सं० पु० शीशम की जाति का एक बड़ा वृक्ष। विथआ, मकोली।

पहटना : क्रि० स० पैना करना, धार तेज करना।

पहपट : सं० पु० १. स्त्रियों का गीत। २. शोरगुल, हल्ला, कोलाहल। ३. किसी की बदनामी की जोर-शोर से चर्चा। ४. गुप्त अपवाद या निंदा। ५. छल, ठगी, धोखा, फरेव।

पहाड़ुआ : सं० पु० बच्चों का एक प्रकार का खेल जिसे 'आनी-पानी' भी कहते हैं।

पहुन्नी : सं० स्त्री० वह पच्चर जो पल्ला या धरन आदि चीरते समय चिरे हुए अंश के बीच में इसलिए दे देते है कि आरा चलाने के लिए यथेष्ट अंतर रहे।

पहुरी : सं० स्त्री० वह चिपटी टाँकी जिससे गढ़े हुए पत्थर चिकने किए जाते हैं। मठरनी।

पांडीस : सं० स्त्री० तलवार। (डिंगल)।

पाँगा : सं० पु० समुद्री नमक। पाँगोनोन।

पाँगुर : सं० पु० पशुओं का खाना।

पाँची : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास जो तालावों में होती है।

पाँजरा : सं० पु० वह मल्लाह जो मल्लाही में अनाड़ी हो। डंडी, कूली। (मल्लाह)

पाँड़ : वि० (स्त्री०) १. जिस स्त्री के स्तन बिल्कुल न हों या बहुत ही छोटे हों। २. जिस स्त्री की योनि बहुत छोटी हो और जो संभोग के योग्य न हो।

पाई : सं० स्त्री० १. पिटारी जिसमें स्त्रियाँ अपने आभूषणादि रखती है। २. छापे के घिसे हुए और रद्दी टाइप (प्रेस)। ३. एक छोटा लंबा कीड़ा जो घुन की तरह अन्न को विशेषतः धान को खा जाता अथवा खराब कर देता है और उसे जमने योग्य नहीं रहने देता।

पाईता : सं० पु० एक वर्ण वृत्त जिसमें एक मगण एक भगण और एक सगण होता है।

पाकेट : सं० पु० ऊँट। (डिंगल)

पागर : सं० पु० वह रस्सा जिससे मल्लाह नाव को खींच कर नदी के किनारे बाँधते है। गून। (लश०)

पाजरा : सं० पु० एक वनस्पति जिससे रंग निकाला जाता है।

पाटला : सं० पु० एक प्रकार का बढ़िया सोना जो भारत में ही शुद्ध करके काम में लाया जाता है। वह बैंक के सोने से कुछ हल्का और सस्ता होता है।

पाटूनी : सं० पु० वह मल्लाह जो किसी

घाट का ठेकेदार हो।

पाडसाली : सं० पु० दक्षिण भारत के जुलाहों की एक जाति। (मानक)

पाड़ा : सं० पु० १. एक सामुद्रिक मछली जो भारतीय महासागर में पाई जाती है। यह प्रायः तीन फुट लम्बी होती है। २. झोटा, भैंस का बच्चा।

पाढा : सं० पु० एक प्रकार का मृग जिसकी खाल पर सफेद चित्तियाँ होती हैं चित्र-मृग।

पाढी : सं० स्त्री० १. सूत की एक लच्छी। २. वह नाव जो यात्रियों को पार पहुँचाने के लिए नियत हो।

पाताली : सं० स्त्री० ताड़ के फल के गूदे की बनाई हुई टिकिया जो प्रायः गरीब लोग सुखाकर खाने के काम में लाते हैं।

पादानौन : सं० पु० काला नमक।

(हि० श० सा०)

पाधरा : वि० १. अच्छा। उ० धर वाँकी दिन पाधरा, मरदन मूके माण। (प्रिथीराज)। २. अनुकूल, ३. सीधा, सरल या पौधा।

पान : सं० पु० लड़ी, गून। (लश०)

पानी : सं० स्त्री० सूत को माड़ी से तर करके ताना करना। (जुलाहा)

पानन : सं० पु० सोंदन नामक मझोले आकार का वृक्ष जिसकी लकड़ी से सजावट के सामान बनते हैं।

पान्हर : सं० पु० एक प्रकार का सरपत।

पापड़ : सं० पु० एक पकवान जो बेसन, चावल तथा दाल से तैयार होता है। मु० पापड़ बेलना—कठिनाई से दिन काटना।

पापा : सं० पु० एक छोटा कीड़ा जो ज्वार, बाजरे आदि की फसल में प्रायः उस वर्ष लग जाता है जिस वर्ष बरसात अधिक होती है।

पाम : सं० स्त्री० १. वह डोरी जो गोटे किनारी आदि के किसानों पर मजबूती के लिए बुनते समय डाल दी जाती है। २. लड़, रस्सी, डोरी। (लश०)

पामरा : सं० पु० खोदने का औजार जिसे फावड़ा कहते हैं।

पामोज : सं० पु० १. एक प्रकार का कबूतर जिसके पैर उँगलियों तक परों से ढके रहते हैं। २. वह घोड़ा जो सवार की पिंडली को अपने मुँह से पकड़े।

(१. मानककोश)

पायरा : सं० पु० एक प्रकार का कबूतर।

पाल : सं० पु० १. कबूतरों का जोड़ा खाना। २. तोप, बंदूक या तमंचे की नाल का घेरा या चक्कर।

पालट : सं० स्त्री० पटेबाजी की एक चोट का नाम।

पालि : सं० स्त्री० १. वटलोई, देग। २. एक तौल जो एक प्रस्थ के बराबर होती है। ३. वह बँधा भोजन जो छात्र को गुरुकुल में मिलता था। ४. अंक, गोद। ५. परिधि। ६. जूं या चीलर। ७. वह स्त्री जिसकी दाढ़ी में बाल हों। ८. अंक, चिह्न। ९. पुल, कगार, भीटा। उ० खेलत मानसरोदक गई। जाइ पालि पर ठाढ़ी भई। (जायसी)

पालीवत : सं० पु० एक पेड़ का नाम।

पावी : सं० स्त्री० एक प्रकार की मैना जिसकी लम्बाई १७-१८ अंगुल होती है। यह ऋतु के अनुसार रंग बदलती है।

पास : सं० पु० भेड़ों के बाल कतरने की कैंची का दस्ता।

पाही : सं० स्त्री० वह खेती जिसका किसान दूसरे गाँव में रहता हो।

पिंजारी : सं० स्त्री० त्रायमाण नामक औषधि। गुरवियानी।

पिंडा : सं० पु० करघे में पीछे की ओर लगी हुई खूंटी।

पिंडारी : सं० पु० दक्षिण भारत की एक जाति जो मुसलान हो गई थी।

पिचवय : सं० पु० वटवृक्ष। (डिंगल)

पिट्ठू : सं० पु० १. सेवक, चेला, अनुगामी, खुशामदी। उ० सरकार के पिट्ठुओं के खिलाफ—(बावा० ६३) २. एक खेल जिसमें बच्चे ठीकरे रखकर गेंद से खेलते हैं। ३. पीठ पर रखने का थैला।

पिड़ी : सं० स्त्री० साख, शेखी, ऐंठ, घमंड। उ० 'रख लो' दरोगाजी की पिड़ी बोलने वाली है। (राग दर० ३५६)

पित्ती : सं० स्त्री० एक प्रकार की बेल। रक्तवल्ली।

पिद्दा : सं० पु० (स्त्री० पिद्दी) १. बहुत ही तुच्छ जीव। २. बया की जाति की सुंदर चिड़िया, फुदकी। मुहा० पिद्दी-सा है, बोलता है ऐंठकर। ३. गुलेल की ताँत में वह निवाड़ आदि की गद्दी जिस पर गोली को फेकने के समय रखते है। फटका।

पिनकना : क्रि० अ० १. अफीम के नशे में सिर का झुका पड़ना। २. नींद में आगे का झुकना, ऊँघना जैसे शाम हुई तुम लगे पिनकने। ३. क्रोध के आवेश में बकना जैसे हमेशा लाझे की बातें सुनकर पिनकना नहीं चाहिए।

पिनकी : सं० पु० वह व्यक्ति जो अफीम के नशे में पीनक ले, पिनकने वाला अफीमची। पीनकी।

पिनपिनाना : क्रि०अ० १. धीरे-धीरे रुक-रुककर हिचकियाँ लेना। २. नाक से रोना।

पिन्नी : सं० पु० एक प्रकार की मिठाई जो आटे में चीनी या गुड़ मिलाकर बनाई जाती है।

पिपली : सं० स्त्री० एक पेड़ जो नेपाल आदि में होता है। लकड़ी बड़ी मजबूत होती है जिससे किवाड़, चौकठे, चौकियाँ आदि बनती हैं।

पियामन : सं० पु० राज-जामुन नामक वृक्ष।

पियाव बड़ा : सं० पु० एक प्रकार की मिठाई। इसमे पहले चावल को पकाकर सिल पर पीसते है फिर गुलाब का इत्र और पाँचों मेवे मिलाकर बड़े की तरह बनाते है। अनन्तर घी में तलकर चाशनी में डाल देते है।

पिरन : सं० पु० चौपायों का लँगड़ापन।

पिरिच : सं० पु० कटोरा, तश्तरी।

पिरिया : सं० पु० १. कुएँ से पानी निकालने का रहट। २. एक प्रकार का बाजरा।

पिलकिया : सं० स्त्री० पीलापन लिये हुए खाकी रंग की एक छोटी चिड़िया। यह चट्टानों के नीचे बच्चे देती है।

पिलड़ी : सं० स्त्री० कीमा, मसालेदार कीमा।

पिलपिलाना : क्रि०अ० १. कमजोर होना। २. किसी वस्तु का अधिक नर्म हो जाना।

पिल्ला : सं० पु० कुत्ते का बच्चा (पिल्ह दे० ना० ६।४०) द्र० पिल्ले—आदमी के बच्चों के लिए प्रयुक्त। बगला के 'पेले पेले' में बच्चे के लिए ही है।

पिल्ही : सं० स्त्री० तिल्ली, जिगर, उदर का वह हिस्सा जो बीमारी के कारण बढ़ जाता है तथा जिसकी चिकित्सा की जाती है। उ० पेट की पिल्ही काफी बढ़ गई। (बावा० ७७)

पिशोर : सं० पु० हिमालय की एक झाड़ी जिसकी टहनियों से बाँध बाँधते हैं और टोकरे आदि बनाते है।

पिसुरा : सं० स्त्री० सरकंडे का एक छोटा टुकड़ा जिस पर रूई लपेटकर पूनी बनाते हैं।

पिसेरा : सं० पु० एक हिरन जिसके ऊपर का हिस्सा भूरा और नीचे का काला होता है। यह बड़ा डरपोक होता है। इसे सुगमता से पाला जा सकता है।

पिहुवा : सं० पु० एक पक्षी।

पिहोली : सं० पु० एक पौधा जिसे पान के बाड़ों में लगाया जाता है। इसकी पत्तियों से सुगंध निकलती है। इसकी पत्तियों से निकला इत्र पचौली नाम से प्रसिद्ध है।

पीका : सं० पु० किसी वृक्ष का नया कोमल पत्ता, कोंपल, पल्लव। उ० कहै पदमाकर परागन में पातहु में पातन में, पीकन पसालन पतंग है। (पद्‌माकर)

पीचू : सं० पु० १. एक प्रकार का झाड़। चीलू। जरदालू। २. करील का पका फल, पक्का कचड़ा या टेंटी।

पीढ़ी : सं० स्त्री० परम्परा, मनुष्य का वंशानुक्रम। उ० और नई पीढ़ी को लेकर उजागर हो रहा है। (राग दर० ६६)

पीड़ : सं० पु० १. मिट्‌टी का आधार जिसे घड़े को पीटकर बढ़ाते समय उसके भीतर रख लेते हैं।

पीपा : सं० पु० बड़े ढोल के आकार का चौकोर काठ या लोहे का पात्र जिसमें मद्य, तेल आदि तरल पदार्थ रखे जाते हैं।

पीलक : सं० पु० एक प्रकार का पीले रंग का पक्षी जिसके डैने काले और चोंच लाल होती है।

पीलखा : सं० पु० एक प्रकार का वृक्ष।

पीला बरेला : सं०पु० बरियारा, बनमेंथी।

पीलाम : सं० पु० साटन नाम का कपड़ा।

पीह : सं० स्त्री० चरबी।

पुंख : सं० पु० एक प्रकार का बाज पक्षी।

पुंदल : सं० पु० जहाज के मस्तूल का पिछला भाग।

पुआई : सं० स्त्री० एक सदाबहार पेड़ जिसकी लकड़ी दृढ़, चिकनी और पीले रंग की होती है। लकड़ी की मेज, कुर्सी आदि बनाई जाती हैं।

पुआल : सं० पु० १. एक ऊँचा जंगली पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत और पीले रंग की होती है। २. धान के डंठल जो चारे के काम आते हैं।

पुचकारना : क्रि० स० प्यार जतलाना, मुंह से पुच-पुच शब्द करना।

पुचरस : सं० पु० कई धातुओं का मेल।

पुचारना : क्रि० स० १. पोतना। २. साफ करना। ३. सजाना।

पुचारा : क्रि० १. पतला लेप करना, भीगे कपड़े से जमीन रगड़ कर पोंछना।

पुच्ची-गक्की : सं० स्त्री० चुम्बन, पुच्ची, मिट्ठा, चूमचपड़। उ०पुच्ची-गक्की करके भी प्रसन्न कर दिया। (झूठा० २।४९६)

पुटिया : सं० स्त्री० एक प्रकार की छोटी मछली।

पुट्‌टी : सं० स्त्री० मछलियों के पकड़ने का झावा।

पुनना : क्रि० स० गालियाँ देना। उ० माँ-बहनें पुनी जा रही हों, और ये खुश हैं, बाछें खिली जा रही हैं।

पुर : सं० पु० कुएँ से पानी निकालने का चमड़े का डोल या चरसा।

पुरहा . सं० पु० एक प्रकार की लता जिसकी पत्तियाँ गोलाकार और ५-६ इंच चौड़ी होती हैं। इसकी जड़ औषधि के काम आती है।

पुरही : सं० स्त्री० हरजेवड़ी नामक झाड़ी जिसकी पत्ती और जड़ औपधि के काम आती है। दाख, निरविसी।

पुलपुलाना : क्रि० स० मुलायम वस्तु को मुँह से या हाथ से दबाकर पुलपुला करना।

पुलाँग : सं० पु० एक प्रकार का वृक्ष जिसके फल गोल होते हैं और जिनमें से गिरी निकलती है। इससे तेल भी निकलता है।

पुलिहोरा : सं० पु० एक पकवान। उ० विविध पंच पकवान अपारा। सक्कर पुंगल और पुलिहोरा। (जायसी)

पुली : सं० स्त्री० काले और भूरे रंग की एक चिड़िया जो सारे उत्तर भारत में होती है।

पुल्ली : सं० स्त्री० घोड़े के सुम के ऊपर का हिस्सा।

पूँगा : सं० पु० १. वह कीड़ा जो सीप के भीतर होता है। २. सपेरों का बाजा। महुअर।

पूँजना : क्रि० स० नये बंदर का पकड़ना।

पूटरी : सं० स्त्री० ईख के रस की वह अवस्था जो उसके खाँड़ बनाने से पहले होती है।

पूणू : सं० पु० पत्थर। (डिंगल)

पूत : सं० पु० चूल्हे के दोनों किनारों और बीच के नुकीले उभार जिनके सहारे तवा या और बरतन रखते हैं।

पूथ : सं० पु० बालू का ऊँचा टीला या ढूह, पूथा।

पूदना : सं० पु० एक पक्षी जो उत्तरी भारत में प्राप्त होता है। इसका रंग भूरा होता है। यह जमीन पर चला करता है और घास का घोंसला बनाकर रहता है।

पून : सं० पु० १. जंगली बादाम का पेड़ जिसके फूल और पत्तियाँ दवा के काम आती हैं और फल से तेल निकलता है। २. कलपून नामक वृक्ष जिसकी लकड़ी इमारती होती है। ३. तलवार की मुठिया।

पूनना : सं० पु० १. पून नामक पेड़। २. एक प्रकार की ईख।

पूनाक : सं० स्त्री० तेलहन में की बची हुई सीठी, खली।

पूपली : सं० स्त्री० १. पोली नली। २. बच्चों के खेलने का काठ का छोटा खिलौना जो छोटी डंठी के आकार का होता है और जिसके दोनों सिरे कुछ मोटे होते हैं। ३. बाँस आदि में से काटी हुई वह छोटी खोखली नली जिसमें देशी पंखों की डंठी का अन्तिम भाग फँसाया रहता है।

पूयउडश : सं० पु० भोजपत्र की जाति का एक वृक्ष जिसकी छाल मणिपुर आदि के जंगली लोग खाते हैं और पानी के घड़े पर उसकी मजबूती के लिए लपेटते हैं।

पेंग : सं० पु० एक प्रकार का पक्षी।

पेंघट, पेंघा : सं० पु० एक प्रकार का पक्षी जिसका शरीर मटमैले रंग का, आँखें लाल और चोंच सफेद होती है।

पेंड : सं० पु० एक प्रकार का सारस पक्षी जिसकी चोंच पीली होती है।

पेट : सं० पु० उदर, पोट्ट (दे० ना० ६।६०) उ० ज्वार माँग अनकुट पै पेट कुपीर उपाई। (भा २।२४५) मुहा० पेट गदराना—गर्भ के चिह्न स्पष्ट होना।

पेठा : सं० पु० १. सफेद रंग का कुम्हड़ा। २. कुम्हड़े से बनी एक मिठाई जो आगरे में विशेष बनती है।

पेड़ : सं० पु० वृक्ष, रूख। उ० एक नीम का लम्बा चोड़ा पेड़ था। (राग दर० २६०)

पेदर : सं० पु० एक प्रकार का बहुत बड़ा जंगली पेड़ जिसकी लकड़ी भीतर से सफेद और बहुत मजबूत होती है जिसकी नावें बनती हैं। इसके जड़, पत्ते और फूल

औषधि के काम आते हैं।

पेन : सं० पु० लसौड़े की जाति का एक पेड़ जो गढ़वाल में होता है। इसकी लकड़ी मजबूत होती है। कूम।

पेमचा : सं० पु० एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

पेमा : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली जिसकी लम्बाई आठ इंच होती है।

पेरली : सं० स्त्री० तांडव नृत्य का एक भेद जिसमें अंग विशेष अधिक होता है और अभिनय कम। देशी।

पेहंटा : सं० स्त्री० कचरी नाम की लता का फल जो कुंदरू के आकार का होता है और जिसकी तरकारी तथा कचरी बनती है।

पैंकड़ा : सं० पु० ऊँट की नकेल।

पैंचना : क्रि० स० १. अनाज फटकना, पछोरना। २. पलटना, फेरना।

पैंचा : सं० पु० हेरफेर, पलटा।

पैंजनी : सं० स्त्री० पाँव का एक गहना जो बजता है।

पैंड़ा : सं० पु० गन्ने का अलग-अलग हिस्सा पैंड़ा कहा जाता है। (ब्र० श०)

पैंड़िया : सं० पु० कोल्हू में गन्ने भरनेवाला व्यक्ति। शायद सं० पीड़क से व्युत्पन्न।

पैंत : सं० पु० सात की संख्या। (दलाल)

पैं : सं० पु० माड़ी देने की क्रिया, कलफ चढ़ाना।

पैंकार : सं० पु० मछलियों की मंडी का दलाल।

पैंड़ी : सं० स्त्री० मार्ग, रास्ता, चढ़ने या उतरने का रास्ता, सीढ़ी।

पैतलाय : सं० पु० १७, सत्रह की संख्या। (दलाल)

पैना : सं० पु० धातु गलाने का मसाला।

पैमक : सं० स्त्री० कलावत्तू की बनी हुई एक प्रकार की सुनहरी गोट जिसे अँगरखे, टोपी आदि के किनारे पर लगाते हैं। लैस।

पैया : सं० पु० एक प्रकार का बाँस। इसमें बड़े-बड़े फल लगते हैं और खाए जाते हैं। वंसलोचन भी इस बाँस से बहुत निकलती है। मूलीमतंगा, तराई का बाँस।

पैर : सं० स्त्री० खेत में कुएँ से पानी देने की एक विधि।

पैरा : सं० स्त्री० एक प्रकार की दक्खिनी कपास जिसके पेड़ बहुत दिनों तक रहते हैं। रुई ललाईपन लिये होती है।

पैहरा : सं० पु० कपास के खेत में रूई इकट्ठी करने वाला। पैकर, बनिया।

पोंका : सं० पु० बड़ा फतिंगा जो पौधों पर उड़ता फिरता है। बोंका।

पोंगा : सं० पु० ढोंगी, मूर्ख, अन्धविश्वासी, बेसमझ, भोंदू। उ० तुम्हें क्या कहें, तुम तो थे पोंगा। (राग दर० ३४८)

पोंटा : सं० पु० नाक का मल।

पोंटी : सं० स्त्री० एक प्रकार की छोटी मछली।

पोंई : सं० स्त्री० वि० १. बनी हुई कोई वस्तु, विशेषत: रोटी आदि। उ० तुम्ह अबही जेई घर पोई। (जा० १२३।२)

पोकना : सं० पु० महुए का पका हुआ फल।

पोकल : वि० १. नाजुक, पिलपिला, कमजोर। २. पोला, खोखला। ३. नि:सार, तत्त्वहीन।

पोटली : सं० स्त्री० गठरी। उ० किसी थैली या पोटली में बाँधा। (प्र० ग्र० २५८) (पोट्टल म० पु०२०)

पोता : सं० पु० अंडकोश (ब्र०श०) पोत्तय। (दे० ना० ६।६२)

पोतिया : सं०पु०एक प्रकार का खिलौना।

पोती : सं० स्त्री० १. पानी का वह पुचारा जो मद्य चुवाते समय वर्तन पर फेरा जाता था। उ०नैन नीर सो पोती किया। (जा० १५४।६) २. चूल्हे आदि पर भीगे कपड़े से फेरने की क्रिया।

पोदना : सं० पु० १. एक छोटी चिड़िया। उ० कुछ लाल चिड़े पोदने पिद्धे होन खुश थे। पिदड़ी ही समझती थी उसे आँख का तारा। (नजीर) २. छोटे डील-डौल का पुरुष, नाटा आदमी, ठेंगना आदमी।

पोर : सं० पु० जहाज की रखवाली या चौकसी करने वाला। (लश०)

पोरी : सं० स्त्री० एक प्रकार की कड़ी मिट्टी।

पोली : सं० स्त्री० जंगली कुसुम या वर्रे।

पौंगनी : सं० स्त्री० स्त्रियों का वह आभूषण जो लौंग से वड़ा होता है। (व्र० श०)

पौटिया : सं०पु० हिंदुओं की एक जाति जो सोने-चाँदी के तार आदि वनाती है।

पौरू : सं० स्त्री० भूमि का एक भेद। एक प्रकार की मिट्टी या जमीन।

प्याजी : सं० स्त्री० काले रंग का एक प्रकार का दाना जो प्रायः गेहूँ के साथ होता है। मुनमुना।

प्यौरी : सं० स्त्री० १. रुई की मोटी वत्ती। २. एक प्रकार का पीला रंग।

फक्कड़ : सं० पु० वह आदमी जिसे किसी की चिंता न हो। स्वतंत्र व्यक्ति। स्वच्छन्द। उ०फक्कड़ भाई यह किस पर फवतियाँ हो रही है। (भ० ग्र० १९)

फटक : सं० पु० खप्पचों का फाटक, टटिया। फटक ढकेलकर अन्दर से मैंने घर को वंद कर दिया। (वल० १५१)

फटकना : क्रि० स० सूप आदि से किसी वस्तु को साफ करना।

फटका : सं० स्त्री० गोफन में जहाँ गिल्ला रहता है उसमें लगी एक रस्सी। (व्र० श०)

फटकिया : सं० पु० मीठना नामक विपक के एक भेद का नाम। यह गोवरिया से कम विपैला होता है और उससे छोटा भी होता है।

फटकी : सं० स्त्री० टोकरी के आकार का छोटे मुँह का पिंजड़ा जिसमें चिड़ीमार चिड़ियों को पकड़कर खाते हैं।

फटेरा : सं० पु० हरी करव का तना।

फड़कना : क्रि० अ० हिलना, डुलना, काँपना, शरीर-कम्पन, सगुन या असगुन होने पर आँख आदि का फड़कना। उ०महादेव जी के हाथ फड़के,पैर फड़के, त्रिसूल फड़का। (टे० मे० रा० १५४)

फड़का पेलन : सं० पु० एक प्रकार का वैल जिसका एक सींग तो सीधा ऊपर होता है और दूसरा नीचे को झुका रहता है।

फड़ी : सं० स्त्री० एक गज चौड़ी एक गज ऊँची और तीस गज लंवी पत्थरों या ईंटों आदि की ढेरी।

फनफनाना : क्रि० अ० १.चंचलतापूर्वक इधर-उधर हिलना। २.मुंह से हवा छोड़ कर फनफन शब्द उत्पन्न करना।

फनियाला : सं० पु० गज डेढ़ गज लंवी करघे की एक लकड़ी जिस पर तानी लपेटी जाती है। और जिसके दोनों सिरों पर दो चूलें और चार छेद होते हैं। लपेटन, तूर।

फफोला : सं० पु० छाला, जलने से होने वाला घाव या फूला। उ० गैनू के सारे देह में फफोले निकल आए। (मैला० १०३)

फरफराना : क्रि० स० फर-फर शब्द पैदा

करना ।

फरकी : सं० स्त्री० १.बाँस की पतली तीली जिसमें लासा लगाकर चिड़ीमार चिड़िया फंसाते हैं । २. वह बड़ा पत्थर जो दीवारों की चुनाई में दूर-दूर पर खड़े वल में लगाया जाता है ।

फरराना : क्रि०अ०फहरना, या फहराना ।

फरा : सं० पु० एक प्रकार का व्यंजन । इसमें पहले चावल के आटे को गरम पानी में गूंद कर उसकी पतली-पतली वत्तियाँ वटते हैं और फिर उन वत्तियों को उवलते हुए पानी की भाप में पकाते हैं ।

फराश : सं० पु० झाऊ की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जो पंजाव, सिंध, अफगानिस्तान और फारस में अधिकता से पाया जाता है । यह गरमी में फूलता है ।

फर्रा : सं० पु० १.गेहूँ और धान की फसल का एक रोग जो उसके फूलने पर तेज हवा से पैदा होता है । २.मोटी ईंट ।

फर्राटा : सं०पु० वेग. क्षिप्रता । जैसे फर्राटे से पाठ सुनाना ।

फलसा : सं० पु० १.दरवाजा, द्वार । २. गाँव की सीमा ।

फलाना : सं० पु० कोई वस्तु या कोई व्यक्ति । उ० फलाने ने मुझे पाँच सौ गालियाँ दीं । (प्र० ग्र० ३६८)

फल्ला : सं० पु० एक प्रकार का रेशम जिसका रंग पीलापन लिये हुए सफेद होता है और यह तंदूरी से कुछ घटिया होता है ।

फसकड़ा : सं० पु० टाँगें फैलाकर तथा चूतड़ के वल वैठने का ढंग ।(मानक)

फसकना : क्रि० अ० १.खिचने या दवने से कपड़े का फट जाना । २. तड़कना । ३. धँसना । ४. स्त्री या मादा पशु का गर्भवती होना ।

फसकाना : क्रि० स० १.धँसाना, २.गर्भवती करना । ३. कपड़े का फाड़ना ।

फाँक : सं० स्त्री० १. किसी वस्तु का हिस्सा । २. मुंह में एक वार में जाने वाली वस्तु ।

फाँकड़ा : वि० १.वाँका, तिरछा । २. हृष्ट-पुष्ट, तगड़ा, मुस्टंडा, मजवूत ।

फाँका : सं० पु० विना भोजन का रहना, उपवास, जैसे उनके यहाँ तो आजकल फाँके पड़ रहे हैं ।

फाँग : सं० पु० (सं० स्त्री० फाँगी) एक प्रकार का साग । उ० पोई परवर फाँग फरी चुनि टेंटी टेंट सो छोलि कियो पुनि- (जायसी)

फाँट : सं० स्त्री० १.औषधि को गरम पानी में औटाना, काढ़ा वनाने की क्रिया या भाव । २.क्वाथ, काढ़ा ।

फाँडी : सं० स्त्री० वर्षा में रखे अनाज में लगने वाला कीड़ा ।

फालसा : सं० पु० शिकारियों की वोली में वह जंगली जानवर जो जंगल से निकलकर मैदान में चरने को आवे । (शिकारी)

फिकई : सं० स्त्री० चने की तरह का एक मोटा अन्न जो वुंदेलखंड में होता है । फिकार ।

फिटसन : सं० पु० कठसेमल नामक छोटा वृक्ष जिसकी पत्तियाँ चारे के काम आती हैं ।

फिट्टा : वि० फटकार खाकर निर्लज्ज होना ।

फिनिया : सं० स्त्री० गहना जो कान में पहना जाता है। उ० छोटी-छोटी ताजैं शीशराजैं ग्रहराजैं सम छोटी-छोटी फिनियाँ फवी हैं छोटे कान में । (रवुराज)

फिरना : क्रि० अ० १. पीछे लौटना। २. घूमना। ३. टट्टी करना।

फिरारी : सं० स्त्री० ताश के खेल में एक चाल की जीत।

फिरोही : सं० स्त्री० वह धन जो दूकानदार माल खरीदने वाले के नौकर को देता है। दस्तूरी, नौकराना।

फिल्ली : सं० स्त्री० १. लोहे की छड़ का एक टुकड़ा जो जुलाहा के करघे में तूर में लगाया जाता है। २. पिंडली।

फिसड्डी : वि० १. सबसे पिछड़ा हुआ। २. निकम्मा। ३. मूर्ख।

फिसफिसाना : क्रि० अ० मंद पड़ना, ढीला पड़ना।

फिस्स : वि० बेकार, अनुपयुक्त। उ० कुछ दिन पीछे टाँय-टाँय फिस्स।
(प्र०ग्र० ६०१)

फीका : वि० स्वाद रहित, नमक रहित पदार्थ, मीठा रहित। उ० (क) सरस होउ अथवा अति फीका (मा०१।८।६)। (ख) जो फर देखिय सोहअ फीका (जा०४३६।७)। (ग) फीके कमलन करत मांवते जी के।
(भा०२।३४७)

फीली : सं० स्त्री० पिंडली। उ० रोवाँ बहुत होहि दुहूँ फीली। (जा०४६४।६)

फुँदना : सं० पु० सूत आदि का बना हुआ गुच्छा या फूल जो शोभा के लिए डोरियों आदि में लटकता रहता है। झब्बा।

फुँदिया : सं० स्त्री० फूलरा, फुँदना। उ० फुँदिया और कसनिया राती छाउल बँटलाए गुजराती। (जायसी)

फुक्का : सं० पु० जोर से रोने की क्रिया। उ० उठते-उठते ही जोर से फुक्का मारकर रो पड़ा। (अलग० वै० १८२)

फुचड़ा : सं० पु० कपड़े, दरी, कालीन, चटाई आदि बुनी हुई वस्तुओं से बाहर निकला हुआ सूत या रेशा। जैसे—थान में जो जगह-जगह फुचड़े निकले हैं उन्हें कैंची से काट दो

फुच्ची : सं० स्त्री० मिट्टी की लुटिया, दूध मापक पात्र। उ० फुच्ची भर गाय का दूध रोज लेने लगी। (बल० १३७)

फुचफुची : सं० पु० १.गडूष, कुल्ला। २. हँसी, मजाक, हँसने का पूर्व रूप। उ० न जाने क्या फुचफुची लगी कि लुत्तो को देखकर फुच-फुच हँसने लगे।
(परती० ३४१)

फुटका : सं० पु० वह कड़ाह जिसमें गन्ने का रस पकता है।

फुदकना : क्रि० अ० १. कूदना, जैसे चिड़ियों का फुदकना। २. उमंग में आकर उछलना।

फुद्दी : सं० स्त्री० स्त्री जननेन्द्रिय, गुप्तांग, गाली। (पंजाबी)

फुफकारना : क्रि० अ० डराना, फूँकना, क्रोध से नथुओं से हवा का निस्सरण करना, जैसे सर्प करता है। उ० तीन जो नदिया फुफकार भरिस सो विजया भवानी के परान सूख गए।
(टे० मे० रा० १५४)

फुरफुराना : क्रि० अ० १. किसी वस्तु का ऐसा हिलना जिससे फुर-फुर शब्द हो, जैसे चिड़िया फुर्र से उड़ गई, कबूतर फुरफुरा कर उड़ गया। २.फहराना।

फुरफुरी : सं० स्त्री० खुशी से शरीर में रोमांच का होना। उ० लोगों के मन में मजे की फुरफुरी भी उठी।
(प्रे० स० २।३५)

फुलंगो : सं० स्त्री० पहाड़ों में उत्पन्न जंगली भाँग का वह पौधा जिसमें बीज

बिलकुल नहीं लगते। कलंगो का उलटा।

फुलुरिया : सं०स्त्री० पोतड़ा, कपड़े का वह टुकड़ा जो छोटे बच्चों के नीचे इसलिए बिछाया या रखा जाता है कि उनका मूत्र या मल दूसरी जगह न निकले। गँड़तरा।

फुलेल : सं० स्त्री० एक छत्तेदार घास जिस पर गोल पत्ते व सफेद फूल आते हैं।

फुल्का : सं० पु० चपाती, रोटी। उ० तू फुल्के सेक ले। (झूठा० १।१४)

फुल्ली : सं० स्त्री० १. आँख में होने वाला एक रोग जिसमें सफेद बिन्दु पड़ जाता है। २. दोष। उ० दूसरे की फुल्ली सब देखते हैं। (अलग० वै० ६२६)

फुसलाना : क्रि० स० बहलाना। उ० मैंने फुसला फुसलू कर पहिले तो गाढ़ी-गाढ़ी दूधि बूटी पिलाई। (प्रे० स० २।६८)

फूट : सं० स्त्री० दुश्मनी, आपस में दोष या वैर। उ० माया इसकी माँ है, फूट और कपट सहोदर भाई। (भ० नि० १०१)

फूलढोंक : सं० पु० एक जाति की मछली जो सारे भारत में पाई जाती है और हाथ भर तक लंबी होती है।

फूलवारा : सं० पु० चिउली नाम का पेड़।

फूहड़ : वि० गंदी व निकृष्ट स्त्री या कोई वस्तु। उ० ऐसी फूहड़ लड़की से मैं विवाह करूँगा—(गि० दी० ५८)

फूहा : सं० पु० रूई का फाहा या गाला।

फेकर : सं० पु० रोना, रोने की क्रिया। उ० करटा रटहिं फेकरहिं फेरू कुभाँति। (तुलसी)

फेकरना : क्रि० अ० १. रोना, चिल्लाना। २. कर्ण कटु शब्द उत्पन्न करना।

फेकारना : क्रि० स० सिर के बाल खोल कर झटकारना। (स्त्रियाँ)

फेदा : सं० पु० घुइँया, अरुई।

फेरना : क्रि० स० १. घुमाना। २. चूना या रंग फेरना। ३. वापस करना। ४. जवाब देना।

फेल : सं०पु० एक प्रकार का वृक्ष। बेपार।

फोंकना : क्रि० अ० आवेश में आकर डींग मारना। शेखी बघारना।

फोंक : वि० चार। (दलाल)

फोंकलाय : वि० चौदह। (दलाल)

फोक : सं० पु० एक तृण जिसका साग बनाकर लोग खाते हैं। सूक्ष्म पुष्पी।

बंका : सं० पु० हरे रंग का एक कीड़ा जो धान के पौधों को हानि पहुँचाता है।

बंगड़ी : सं०स्त्री० स्त्रियों का एक आभूषण जो हाथों में चूड़ियों के साथ पहना जाता है। गुजरात में चूड़ियों को बंगड़ी ही कहा जाता है।

बंगली : सं० पु० घोड़ा। (डिं०)

बंगू : सं० पु० १. एक प्रकार की मछली जो प्रायः दक्षिण तथा बंगाल की नदियों में होती है। २. भौंरा या जंगी नामक खिलौना जिसे बालक नचाते हैं। ३. एक बाजा जिसे दक्षिण में बजाया जाता है।

बंगोमा : सं० पु० एक प्रकार का कछुआ जो गंगा और सिन्धु में होता है इसका माँस खाने योग्य होता है।

बंचक : सं० पु० जीरे के रूप-रंग तथा आकार-प्रकार का एक घास का दाना जो पहाड़ी प्रदेशों में पैदा होता है और जीरे में मिलाकर बेचा जाता है।

बँचुई : सं० स्त्री० सालपान नाम की झाड़ी जो भारत के प्रायः सभी गरम प्रदेशों में होती है और वर्षा ऋतु में फूलती है।

बँज : सं० पु० हिमालय प्रदेश का एक बलूत का पेड़ जिसकी लकड़ी खाकी होती है। सिल, भाख।

बँटी : सं० स्त्री० हिरन आदि पशुओं को

फँसाने का जाल या फंदा।
(अलग० वै० २२५)

वँडेरा : सं० पु० पक्खों पर की छोटी दीवाल। उ० मगर पक्खों पर न वँडेरा है न दुपलिया छानें।

वँदली : सं० पु० रूहेलखंड में पैदा होने वाला एक प्रकार का धान। रायमुनिया, तिलोक चंदन।

वँदानी : सं० पु० एक प्रकार का गुलावी रंग जो पियाजी रंग से कुछ गहरा और असली गुलावी रंग से वहुत हल्का होता है।

वँदाल : सं० पु० देवदाली, घघरवेल।

वँसार : सं० पु० वंगसाल, भंडार। (लश०)

वँसी : सं० पु० एक प्रकार का गेहूँ।

वकतिया : सं० स्त्री० एक प्रकार की छोटी मछली।

वकरा : सं० पु० अजा, वोकरा। स्त्री० वकरी, छगली।

वकली : सं० पु० अघोरी नामक वृक्ष जिसकी लकड़ी से हल और नावें वनती हैं।

वकसा : सं० पु० एक प्रकार की घास जो पानी या जलाशयों के किनारे होती है।

वकसीला : वि० जिसके खाने में मुँह का स्वाद विगड़ जाए और जीभ ऐंठने लगे।

वकुचा : सं० पु० छोटी गठरी। वकचा। उ० (क) जाही जूही वकुचन लावा। पुहुप सुदरसन लागु सुहावा। (जायसी) (ख) उनकर राखै मान वुंद जहँ आड़े आवै। वकुचा वाँधे मोट राति को झारि विछावै। (गिरधरराय)

ववका : सं० स्त्री० सफेद या खाकी रंग के एक प्रकार के छोटे-छोटे कीड़े जो धान की फसल में लगते हैं और उसके पत्ते और वालों को खाकर उसे निर्जीव कर देते हैं।

वक्की : सं० स्त्री० एक प्रकार का धान जो भादों मास के अन्त में पकता है। इस धान की भूसी काले रंग की होती है।

वक्खर : सं० पु० कई प्रकार के पौधों की पत्तियों और जड़ों आदि को कूटकर तैयार किया हुआ वह खमीर जो दूसरे पदार्थों में खमीर उठाने के लिए डाला जाता है।

वखरा : सं०पु० १. घोड़े की पीठ पर पलान आदि को नीचे रखने के लिए फाल या सूखी घास आदि का दुहरा किया हुआ वह मुट्ठा जिस पर टाट आदि लपेटा रहता है। सुड़की। २. अलग, जैसे—तुम अपना काम वखरा-वखरा करो।

वखारी : सं० स्त्री० एक प्रकार की रागिनी जिसे कुछ लोग मालकोश राग की रागिनी मानते हैं।

वखिया : सं० स्त्री० एक प्रकार की सिलाई।

वखेड़ा : सं० पु० झगड़ा, टंटा, मुसीवत, कठिनाई। उ० यह तो अच्छा वखेड़ा खड़ा हुआ। (मैला० २९)

वखेरी : सं० स्त्री० छोटे कद का एक प्रकार का कँटीला वृक्ष जिसके फल रंगने और चमड़ा सिझाने के काम आते हैं।

वखोई : सं० स्त्री० दुलहिन को भाँवरों के साथ दिया जाने वाला कपड़ा जिसे लड़के वाले लाते हैं। (व्र० शा०)

वगई : सं० स्त्री० १. एक प्रकार की मक्खी जो कुत्तों पर वहुत वैठती है। कुकुरमाछी। २. एक प्रकार की घास जिसकी पत्तियाँ वहुत पतली और लम्वी होती है।

वगदर : सं० पु० मच्छर।

वगनी : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास जिसे कहीं-कहीं लोग भाँग के साथ पीस

कर पीते हैं। उ० बगनी भँगा खाइकर मतवाले मानी—(दादू०)

बगरा : सं० पु० एक प्रकार की मछली जो छः-सात अंगुल लम्बी और जमीन पर उछलती है। शुभा।

बगरिया : सं० स्त्री० एक प्रकार की कपास जो कच्छ और काठियावाड़ में पैदा होती है।

बगला : सं० पु० एक झाड़ीदार पौधा जो गमलों में शोभा के लिए लगाया जाता है।

बगार : सं० पु० वह स्थान जहाँ गायें बाँधी जाती हैं। घाटी।

बगेरी : सं० स्त्री० भारत में पाई जाने वाली खाकी रंग की एक छोटी चिड़िया जो डील-डौल में गौरैया के समान होती है। बगौधा, बघेरी, भरुही।

बगौधा : सं० पु० (स्त्री० बगौधी) बगेरी नामक चिड़िया।

बचका : सं० पु० एक प्रकार का पकवान जो किसी प्रकार के साग या पत्तों आदि को बेसन में लपेटकर और घी या तेल में छानकर बनाया जाता है। २.एक प्रकार का पकवान जो बेसन और मैदे को एक मिलाकर जलेबी की तरह घी में छानकर तथा दूध में भिगोकर खाया जाता है। उ० खंडरा बचका और डुमकौरी। बरी एकोतर सौ कोंहड़ौरी। (जायसी)

बचीता : सं० पु० दो-तीन हाथ ऊँची एक प्रकार की झाड़ी जिसके तने और टह-नियों पर बहुत अधिक रोएँ होते हैं।

बचुआ : सं० पु० एक प्रकार की मछली जो सिन्ध, बंगाल, असम और उड़ीसा की नदियों में प्राप्त होती है।

बचौं : सं० पु० एक बारहमासी लता। इसकी जड़ से मजीठ की तरह का रंग निकलता है। इसकी पत्तियाँ ऊँट बड़े चाव से खाते हैं।

बजड़ना : क्रि० स० १. टकराना। २. पहुँचना।

बजबजाना : क्रि० अ० १. गरमी आदि के कारण किसी तरल पदार्थ में खमीर उठना। २.पदार्थ का दूषित होना।

बजरा : सं० पु० १. एक प्रकार की बड़ी और पटी हुई नाव जिसमें नीचे की ओर एक छोटी कोठरी और एक बड़ा कमरा होता है और ऊपर खुली छत होती है। २. ज्वार, बाजरा। इसकी बाल लम्बो-तरी होती है जिसमें छोटे-छोटे दाने भरे होते हैं। यह कबूतरों को खिलाई जाती है। इसको गुजरात में बड़े चाव से खाते हैं।

बजरी : सं० स्त्री० १. कंकड़ के छोटे-छोटे टुकड़े जो गच के ऊपर पीटकर बैठाए जाते हैं और जिन पर सुरखी और चूना डालकर पलस्तर किया जाता है। कंकड़ी २. ओला। ३.छोटा नुमायशी कंगूरा जो किले आदि की दीवारों के ऊपरी भाग में बराबर थोड़े-थोड़े अंतर पर बनाया जाता है। उ० है जो मेघगढ़ लाग अकासा। बजरी करी कोट चहुँपासा। (जायसी)

बटुआ : सं० पु० खल्ता, थैली, पर्स। उ० तन्नू ने कुर्ते की जेब से बटुआ निकाला। (आधा० २६९)

बट्टा : सं० पु० दर्पण, शीशा, आइना। मुहा० बट्टा लगाना। (बेइज्जत करना) उ० जाहिर है कि अपनी नेकनामी को बट्टा नहीं लगा सकते। (आधा० २२५)

बट्टू : सं० पु० १. धारीदार चारखाना। २.ताली। ३.कोई विशेष वस्तु, जैसे क्या बजरबट्टू दिखा रहे हो। ४. एक प्रकार का ताड़ जो सिंहल और मालाबार में होता है।

वठिया : सं० स्त्री० पाथे हुए सूखे कंडों का ढेर। उपलों का ढेर।

वड़कंघी : सं० स्त्री० दो-तीन हाथ ऊँचा एक प्रकार का पौधा जो प्रायः सारे भारत में पाया जाता है। इस पौधे में से कड़ी दुर्गन्ध आती है। जड़, पत्तियाँ तथा वीज औषधि के काम आते हैं।

वड़वड़ाना : क्रि०अ० १.अस्पष्ट वोलना। २. अपने आप वोलना। ३. वकवास करना।

वड़वड़िया : सं० पु० १. वातूनी। २. वात मन में न रख सकने वाला।

वड़लाई : सं० स्त्री० राई नामक पौधा या उसके वीज।

वड़वा : सं० पु० एक धान जो भादों के अंत और कुँआर के आरम्भ में होता है।

वड़वाल : सं० स्त्री० हिमालय के उस पार की तराई की भेड़ों की एक जाति।

वड़ा : वि० महत् दीर्घ, लम्वा, ज्येष्ठ, आदि।

वड़ीगोटी : सं० स्त्री० चौपायों की एक वीमारी।

वड़ीमैल : सं० स्त्री० एक चिड़िया जो विलकुल खाकी रंग की होती है।

वड़ेरर : सं० पु० ववंडर, चक्रवात, वेग से घूमती हवा। उ० जव चेटकी कुटी नियरायौ। तव एक घोर वड़ेरर आयौ।
(रघुराज)

वढ़ाली : सं० स्त्री० कटारी, कटार।

वढ़िया : वि० उत्तम, अच्छा, उम्दा।

वढ़िया : सं० पु० १. एक प्रकार का कोल्हू। २. एक तौल जो डेढ़ सेर का होता है। ३. गन्ने, अनाज आदि की फसल का एक रोग जिससे कनखे नहीं निकलते।

वढ़िया : सं० स्त्री० एक प्रकार की दाल। वि० वहुत अच्छा। जैसे यह वढ़िया चीज है।

वढ़ेल : सं० स्त्री० हिमालय पर की एक भेड़ जिससे ऊन निकलता है।

वणी : सं० स्त्री० रूई का झाड़, कपास।

वतवन्हा : सं० पु० एक प्रकार की नाव। इस नाव में लोहे के कोरे नहीं लगाए जाते यह केवल वेंत से वाँधी जाती है।

वताना : सं० स्त्री० फटी पुरानी पगड़ी जो नीचे रहती है और जिसके ऊपर अच्छी पगड़ी वाँधी जाती है।

वतासा : सं० पु० खाँड़ की चाशनी से वना पदार्थ जो गोल-गोल होता है। इसे लोग देवताओं पर चढ़ाते हैं।

वतिया : सं० स्त्री० वेल। उ० दिल तो हमारे ही चिरसिंचन पाप वृक्ष की वतिया है। (प्र० ग्र० ४०३); हम कुम्हड़े की वतिया—(तुलसी)

वथान : सं० पु० वह स्थान जहाँ दूध काढ़ा या वेचा जाता है। उ० रोज सुवह लक्ष्मी दूध लेने वथान पर आती थी।
(मैला० २७)

वदरून : सं० पु० पत्थर की जाली की एक प्रकार की नक्काशी जिसमें वहुत से कोने होते हैं।

वद्दी : सं० स्त्री० वैलों का समूह।
(दे० ना० ७।३८)

वधिया : सं० स्त्री० जिस वैल की प्रजनन-शक्ति नष्ट कर दी गई हो।
(दे० ना० ७।३७)

वनकटी : सं० स्त्री० एक प्रकार का वाँस जिससे पहाड़ी लोग टोकरा वनाते है।

वनखोर : सं० पु० कौर नामक वृक्ष।

वनड़ा : सं० पु० विलावल राग का एक भेद। यह राग झूमड़ा ताल पर गाया जाता है।

वनड़ा जैत, वनड़ा देवगरी : सं० पु० शालक राग विशेष, जो क्रमशः रूपक

ताल और एकताले पर गाया जाता है।

वनर : सं० पु० एक प्रकार का अस्त्र। उ० तिमिविभूति अरु वनर कह्यो युग तैसहिवन कर वीरा—(रघुराज)

वना : सं० पु० एक छंद विशेष जिसमें १० ८, १४ के विश्राम से ३२ मात्राएँ होती हैं। दंडकला।

वनार : सं०पु० १. चकसू नामक औषधि का वृक्ष। २. कासमर्द।

वनास : सं० स्त्री० राजपूताने की एक नदी का नाम जो अरावली पर्वत से निकल कर चंवल में मिलती है।

वनेला : सं०पु० एक प्रकार का रेशम का कीड़ा।

वन्नी : सं० स्त्री० अन्न का तिहाई अथवा और कोई भाग जो खेत में काम करने वाले को दिया जाता है।

वप : सं० पु० वाप, पिता।

वपुरा : वि० वेचारा, अशक्त, गरीव, अनाथ। उ० शिव विरंचि कहँ मोहै को है वपुरा आन। (भा० ७।६२)

वकुली : सं० स्त्री० एक प्रकार का सदा-वहार का छोटा पौधा जो प्रायः सभी गरम देशों में होता है। इसकी पत्तियाँ ऊँटों के चारे के काम आती हैं।

ववूला : सं०पु० हाथियों के पैर में होने वाला एक प्रकार का फोड़ा।

वल्लू : सं० पु० एक प्रकार का उल्लू।

वमकना : क्रि० अ० १. आवेश में आकर लंवी-चौड़ी वातें करना, शेखी वघारना, डींग हांकना। २.उछलना, कूदना। ३. फूट जाना।

वमचख : सं० स्त्री० १. शोरगुल। २. लड़ाई-झगड़ा।

वमचाव : सं० पु० भीड़-भड़क्का, कोला-हल। उ० खूव वमचाव मची हुई थी। (वृंद० २२२)

वमालन : सं० स्त्री० एक प्रकार की कटीली लता जो गरमी में फूलती और वरसात में फलती है। इसके फल खाए जाते हैं। मकोह।

वमेला : सं०स्त्री० एक प्रकार की मछली।

वयल : सं० पु० सूर्य। (डिं०)

वय़सर : सं० स्त्री० किमखाव वुनने वालों की वह लकड़ी जो उनके करघे में गुल्ले के ऊपर और नीचे लगती है।

वयाँग : सं० पु० मुला।

वय्यरवाली : सं० स्त्री० स्त्री, औरत। (व्र० श०)

वरंगा : सं० स्त्री० १.छत पाटने की पत्थर या लकड़ी की पटिया। उ० वरंगा वरंगी करी यों जरी है। मनौ ज्वाल ने वाहु लच्छौं करी है। (सूदन)

वर : सं० पु० एक कीड़ा जिसे खाने से पशु मर जाते हैं।

वरगैल : सं० पु० एक पक्षी जिसके पंजे छोटे होते हैं और जो पाला जाता है।

वरचर : सं० पु० हिमालय क्षेत्र का एक प्रकार का देवदार वृक्ष जिसकी लकड़ी भूरे रंग की होती है। घेसी। पसंगी। खेख।

वरती : सं० स्त्री० एक प्रकार का पेड़।

वरतुस : सं० पु० वह खेत जिसमें पहले धान वोया गया हो और फिर जोतकर ईख वोयी जाए।

वरतेला : सं० स्त्री० जुलाहों की वह खूंटी जो करघे की दाहिनी ओर रहती है और जिसमें ताने को कसा रखने के लिए उसमें वँधी हुई अंतिम रस्सी पीछे से घुमाकर लायी जाती है।

वरदा : सं० स्त्री० दक्षिण भारत की एक तरह की रुई।

वरदुआ : सं० पु० वरमे जैसा एक औजार जिससे लोहा छेदा जाता है।
वरधी : सं० पु० एक प्रकार का चमड़ा।
वरबरी : सं०स्त्री०एक प्रकार की वकरी।
वरमा : सं० पु० (स्त्री० अल्प० वरमी) लकड़ी आदि में छेद करने का वढ़इयों का एक प्रसिद्ध औजार।
वरवै : सं० पु० १९ मात्राओं का एक छंद जिसमें, १२ और ७ मात्राओं पर यति और अंत में जगण होता है। ध्रुव, कुरंग।
वरसू : सं० पु० एक प्रकार का वृक्ष।
वरहा : सं० पु० मोटा रस्सा।
वरा : क्रि० अ० टलना, समाप्त होना। उ० कुछ दिन वरा जाते तो उतना न सालता, वेटी। (अलग० वैं० १७२)
वरा : सं० पु० भुजदंड पर पहनने का एक आभूषण। वहूँटा, टाँड़।
वराई : सं० स्त्री० एक प्रकार का गन्ना।
वरार : सं० पु० १. एक जंगली जानवर। २. वह चंदा जो गाँवों में घर पीछे लिया जाता है।
वरारी : सं० स्त्री० संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो दोपहर के समय गाई जाती है। यह भैरव राग की रागिनी मानी जाती है।
वराही : सं० स्त्री० एक प्रकार की घटिया ईख।
वरियाल : सं० पु० एक प्रकार का पतला वाँस।
वरिल्ला : सं० पु० सज्जी खाद।
वरी : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास या कदन्न, जिसके दानों को वाजरे में मिलाकर राजपूताने में गरीव लोग खाते हैं।
वरेदी : सं० पु० चरवाहा।
वरो : सं० पु० एक घास जिससे वागों को हानि पहुँचती है।
वरौधा : सं० पु० वह खेत या भूमि जिसमें पिछली फसल कपास की रही हो।
वरौरी : सं० स्त्री० उर्द की दाल की पकौड़ी। (जा० ५४९।७)
वर्वर : सं० पु० १. एक पौधा। २. एक कीड़ा। ३. एक प्रकार की मछली। ४. एक प्रकार का नृत्य। ५. अस्त्रों की झनकार।
वर्रो : सं० पु० एक चिड़िया।
वलंवी : सं० पु० एक पेड़ जो भारत के अनेक भागों में पाया जाता है। इसके फल अचार के काम आते है। फलों के रस से लोहे पर के दाग भी साफ किए जाते हैं।
वलकट : वि० पेशगी, अगाऊ। अगौढ़ी।
वलकुआ : सं० पु० एक प्रकार का वाँस जो चालीस हाथ लंवा और दस-वारह अंगुल मोटा होता है। इसकी गाँठें लंवी होती है जिन पर गोल छल्ला पड़ा रहता है। भलुआ, सिलवेरुआ।
वलवलाना : क्रि० अ० १. जल या किसी तरल पदार्थ का वलवल करना। २. ऊँट का वलवल शब्द करना।
वल्लारी : सं० स्त्री० संपूर्ण जाति की एक रागिनी जिसमें केवल कोमल गांधार लगता है।
ववंडर : सं० पु० तूफान, आपत्ति, कोलाहल। उ० इस सव ववंडर में एक घंटे का समय भी नहीं लगा। (झूठा० १।१४८)
ववादा : सं० स्त्री० एक प्रकार की जड़ी जो हल्दी की तरह होती है।
वसना : सं० पु० जयंती की जाति का एक मझोला वृक्ष जिसे प्रायः शोभा के लिए वागों में लगाया जाता है। इसकी पत्तियों, कलियों और फूलों की तरकारी

बनती है। औषधि रूप में भी इसका प्रयोग होता है।

वसा : सं० स्त्री० १.बर्रे, भिड़। उ० वसा लंक वरनी जग झीनी। तेहि ते अधिक लंक वह खीनी। (जायसी) २. एक प्रकार की मछली।

वहतरा : सं० पु० आवारा, घुमक्कड़। उ० पेट की फिकिर नहीं करेगा तो आगे वहतरा हो जाएगा। (वल० ३)

वहदुरा : सं० पु० वह कीड़ा जो धान या चने में लगकर उसके पत्ते काटकर गिरा देता है।

वहिनी : सं० स्त्री० कोल्हू में से रस लेकर रखने वाली ठिलिया।

वहिया : सं० पु० दासों का घराना। उ० एक मालिक के यहाँ वहिया-खानदान के सभी मिलकर खटते थे। (वल० २१)

वहरू : सं० पु० मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में होने वाला एक मझोला पेड़ जिसकी लकड़ी सुन्दर, चमकदार और मजवूत होती है। इससे हल, पाटे आदि खेती के सामान, गाड़ियाँ तथा तसवीरों के चौखटे वनते हैं।

वहीर : सं०स्त्री० १. भीड़, जनसमूह। उ० जिहि मारग ते पंडिता तेही गई वहीर। ऊँची थारी राम की तिहि चढ़ि रहे कवीर। (कवीर) २. सेना के साथ-साथ चलने वाली भीड़ जिसमें साईस, सेवक, दूकानदार आदि रहते हैं। उ० ऐसे रघुवीर छीर-नीर के विवेक कवि मीर की वहीर को समय के निकारि हों। (हनुमान) ३. सेना की सामग्री। उ० हुकुम पाय कुतुवाल ने दई वहीर लदाय। (सूदन)

वहेगवा : सं० पु०चौपायों की गुदा के पास पूंछ के नीचे की मांस ग्रंथि।

वहेचा : सं०पु० घड़े का ढांचा जो चाक पर से गढ़कर उतारा जाता है। यह जव थापी से पीटा जाता है तव घड़े के रूप में आता है। (कुम्हार)

वाँ : सं० पु० गाय के रँभाने का शब्द।

वाँक : सं० स्त्री०१. एक प्रकार की घास। २. टेड़ा, वक्र।

वाँगड़ : सं० पु० हिसार, रोहतक और करनाल का प्रदेश।

वाँगड़ू : सं० पु० वाँगर का रहने वाला, मूर्ख, अनोखा, वेवकूफ, वुरा। उ० देखने में चाहे कितना वाँगड़ू लगे पर प्रजातंत्र भला आदमी है। (राग दर० १७६)

वाँगर : सं० पु० १. छकड़ा गाड़ी का वह वाँस जो फड़ के ऊपर लगाकर उसके साथ वाँध दिया जाता है। २. खादर के विरुद्ध वह भूमि जो कुछ ऊँचे पर हो। ३.अवध में पाए जाने वाले एक प्रकार के वैल।

वाँगा : सं० पु० वह रूई जो ओटी न गई हो। विनौले समेत रूई।

वाँगुर : सं० पु० पशुओं या पक्षियों को फांसने का जाल, फंदा। उ०वागुर तो राइ, मनहु भाग मृग भागवस। (तुलसी)

वाँझ : सं० स्त्री० एक प्रकार का पहाड़ी वृक्ष जिसके फलों की गुठलियाँ वच्चों के गले में, उनको रोग आदि से वचाने के लिए वांधी जाती हैं।

वाँट : सं० पु० १. गायों के लिए भोजन जिसमें खली, विनौला आदि मिला रहता है। २. ढेंढर नाम की घास जो धान के खेतों में उगकर फसल को हानि पहुँचाती है।

वाँड़ : सं० पु० दो नदियों के संगम के वीच की भूमि जो वर्षा में नदियों के वढ़ने से डूव जाती है और फिर कुछ दिनों में

निकल आती है। इस पर खेती अच्छी होती है।

बाँड़ा : सं० पु० १. वह पशु जिसकी पूँछ कट गई हो। २. परिवारहीन पुरुष। वह मर्द जिसके बच्चे न हों। ३. तोता।

बाँड़ी : सं० स्त्री० १. बिना पूँछ की गाय या कोई मादा पशु। २. छोटी लाठी, छड़ी।

बाँव : सं०स्त्री० एक प्रकार की मछली जो साँप जैसी होती है।

बाँवाँ छोड़ी : सं० स्त्री० एक प्रकार का रत्न जो लहसुनिया की जाति का होता है।

बाँवना : क्रि० स० रखना। उ० लोक कहै राम को गुलाम हौं कहावौं। ए तो बड़ो अपराध मो न मन बाँवौं। (तुलसी)

बाई : सं० स्त्री० स्त्री, माता, बहन। (मराठी, पुरानी बंगला)

बाउर : सं० पु० बावला, पागल। उ० अस गुनवंत नहिं भल सुअटा बाउर करिहै काहु। (जा० ८२।६)

बाउरी : सं० स्त्री० एक घास।

बाकरी : सं० स्त्री० पांच महीने की ब्याई गाय।

बाकस : सं० पु० उर्द और मूँग के बीज। (बकस—अन्न विशेष-पा० स० म०)

बाकी : सं० स्त्री० एक प्रकार का धान। उ० पाही सौ सीधी लाची बाकी। सुभटी बगरी बरहन हाँकी। (जायसी)

बाक्सी : क्रि० वि० पृष्ठ भाग में, पीछे। (लश०)

बाखर : सं० पु० १. एक घास जो रुहेलखंड में अधिक होती है। २. मोहल्ला। उ० जानत ही गोरस को लेबो बाही बाखरि माँझ। (सूर०) ३.अन्न रखने का कोष्ठ।

बागर : सं० पु० नदी किनारे की वह ऊँची भूमि जहाँ तक नदी का पानी कभी न पहुँचता हो। उ० अवगति गति जानी न परै। बागर तें सागर करि राखे चहुँ-दिसि नीर भरै। (सूर०)

बागुर : सं० पु० पक्षी या मृग आदि फँसाने का जाल। बागोर। उ० बागुर तो राइ मनहु भाग मृग भागवस।

बाग्टी : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली। (सा० ल० म० ८)

बाघा : सं० पु० १. चौपायों का एक रोग जिसमें उनका पेट फूल जाता है और साँस रुकने से वे मर जाते हैं। २. कबूतरों की एक जाति।

बाघी : सं० स्त्री० एक प्रकार की गिल्टी जो अधिकतर गर्मी के रोगियों के पेड़ू या जाँघ की सन्धि में होती है। यह बहुत कष्टदायक होती है। बहुधा यह पक जाती है और चीरनी पड़ती है।

बाघुल : सं० स्त्री० एक प्रकार की छोटी मछली।

बाज : सं० पु० ताने के सूतों के बीच में देने की लकड़ी।

बाटी : सं० स्त्री० कटोरी। उ० चूम लेंगे होठ बनकर बाटियाँ। (गि० दी० ९३)

बाड़ी : सं० पु० १. साग-सब्जी बोने का खेत, बारी। २.घर, बाड़ी (बंगला भाषा)। उ० बाईं ओर आठ-दस घूर बाड़ी थी। (बल० २)

बाढ़ : सं० स्त्री० स्त्रियों का बाँह पर पहनने का टाँड़ नामक आभूषण।

बाढ़कढ : सं०स्त्री० १.तलवार। २.खड्ग।

बाढ़ाली : सं० स्त्री० तलवार, खड्ग।

बातर : सं० पु० पंजाब में धान बोने का एक ढंग।

बाथ : सं० पु० गोद, अंक। उ० दृग मीचत

मृगलोचनी भर्यो उलटि भुज वाथ। जानि गई तिय नाथ के हाथ परस ही हाथ। (विहारी)

वादिया : सं० पु० लुहारों का पेच बनाने का एक औजार।

वादी : सं० पु० लुहारों का सिकली करने का औजार।

वादुर : सं० पु० चमगादड़, चमचटक ।

वादूना : सं० पु० एक औजार जो घेवर बनाने के काम आता है।

वान : सं० पु० गोला। उ० तिलक पलीता माथे दमन ब्रज के वान। जेहिं हेरहिं तेहि मारहिं चुरकस करहिं निदान। (जायसी)

बाप : सं० पु० (वघ० दे० ना०) पिता। उ० बाप चल्यो बेटा चल्यो नारि चली मीत चले। (भा० २।२९६)

वाबुना : सं० पु० तीन रंग का एक पक्षी जिसकी आँख के ऊपर का रंग सफेद, चोंच काली और आँखें लाल होती हैं।

वामनी : सं० पु० एक सर्प जो एक वालिश्त तक बड़ा होता है तथा जिसकी देह पर धारियाँ होती हैं। (ब्र० श०)

वायरा : सं० पु० कुश्ती का एक पेच।

वारना : सं० पु० वृक्ष विशेष, जिसके फलों का गूदा इमारत की लेई में मिलाया जाता है।

वारी : सं० स्त्री० जाति विशेष, जी-हजूरी करने वाली जाति। उ० सुतरु सूआ के नाऊ वारी। (जा० ५६।३)

वाल : सं० स्त्री० १. अनाज के कुछ पौधों के डंठल का वह अग्र भाग जिसके चारों ओर दाने गुथे रहते हैं। जैसे जौ, गेहूँ की वाल। २. एक प्रकार की मछली।

वालखंडी : सं० पु० वह हाथी जिसमें कोई दोष न हो।

वालछड़ : सं० स्त्री० जरामासी।

वाल साँगड़ा : सं० पु० कुश्ती में एक प्रकार का पेच।

वालू : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली जो दक्षिण भारत और लंका के जलाशयों में पाई जाती है।

वावरी : सं० स्त्री० १. एक प्रकार की बारहमासी घास जो उत्तरी भारत के रेतीले और पथरीले मैदान में पाई जाती है, और चारे के लिए अच्छी समझी जाती है। सरदाला। २. पागल।

वावली : सं० स्त्री० पागल, बावरी। उ० वुद्धि भई वावली—(भा० २।५४)

बासन : सं० पु० बरतन, वासण। उ० लेहिं न बासन बसन चुराई—(तुलसी)

बासा : सं० पु० १. एक प्रकार का पक्षी। २. अडूसा।

वाहड़ी : सं० स्त्री० वह खिचड़ी जो मसाला और कुम्हड़ौरी डालकर पकाई गई हो।

बाहन : सं० पु० १. एक बहुत लम्बा पेड़ जिसके पत्ते जाड़े में झड़ जाते हैं। इसके हीर की लकड़ी बहुत लाल और भारी होती है जो प्रायः खराद और इमारत के काम आती है। २. एक पेड़ जो बहुत ऊँचा होता और जल्दी बढ़ जाता है। यह कश्मीर और पंजाब में अधिकता से होता है। सफेदा।

वाहस : सं० पु० अजगर। (डिं०)

विगही : सं० स्त्री० क्यारी, वरहीं।

विगुरदा : सं० पु० प्राचीनकाल का एक हथियार। उ० कपटौ जब लों कपटि नहिं साँच विगुरदा धार। तब लों कैसे मिलैगो प्रभु साँचौ रिझवार। (रसनिधि)

विजड़ : सं० स्त्री० तलवार। (डिं०)

विजरी : सं० स्त्री० अलसी का पौधा।

बिजलीमार : सं० पु० एक बड़ा वृक्ष जो सुन्दर तथा छायादार होता है। इसकी लकड़ी सिरीस की लकड़ी की तरह उपयोगी होती है। असम में इस वृक्ष पर एक प्रकार की लाख उत्पन्न की जाती है।

बिजार : सं० पु० १. बैल। २. सांड़।

बिज्जू : सं० पु० बिल्ली की तरह का एक जंगली जानवर। यह चूहों, मुर्गियों आदि का शिकार करता है और कभी-कभी कब्रों को खोदकर मृत शरीरों को खा जाता है। बीजू।

बिज्जूहा : सं० पु० एक वर्णिक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो रगण होते हैं। उ० पुन्य के पाल हैं। दीन के दयाल हैं। सीय के हेत हैं। नैन से भेत हैं। बिजोहा, बिमोहा।

बिटिया : सं० स्त्री० पुत्री। उ० राई भर की बिटिया भांटा की बराबर आंख। (प्र० ग्र० ५१७)

बिडारना : क्रि० स० जानवरों या मक्खियों आदि को भगाना। (व्र० श०)

बित्ता : सं० पु० हाथ की सब उँगलियों को फैलाने पर अँगूठे के सिरे से कनिष्ठका के सिरे तक की दूरी। बालिश्त।

बिथुआ : सं० पु० शीशम की जाति का एक बड़ा वृक्ष। पस्सी।

बिजुली : सं० पु० एक प्रकार का बांस। नलबांस, देवबांस।

बिन : सं० पु० एक निम्न जाति।

बिनता : सं० पु० पिडकी नाम की चिड़िया।

बिनौरिया : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास जो खरीफ में खेतों में पैदा होती है। इसमें छोटे पीले फूल लगते हैं।

बिनौला : सं० पु० कपास के बीज। यह पशुओं के लिए लाभप्रद होता है। बनौर, कुकरी।

बियरसा : सं० पु० एक प्रकार का बहुत ऊँचा वृक्ष जो पहाड़ों पर ३००० फुट की ऊँचाई तक होता है। इसकी लकड़ी इमारत और मेज-कुर्सी बनाने के काम आती है।

बियो : सं० पु० पौत्र। (डि०)

बिरंजी : सं० स्त्री० लोहे की छोटी कील। छोटा कांटा।

बिरुआ : सं० पु० एक प्रकार का राजहंस।

बिलगर : सं० पु० गिरगिट्टी नामक वृक्ष जो प्राय: बागों में शोभा के लिए लगाया जाता है।

बिलगी : सं० पु० एक प्रकार का संकर राग।

बिलटा : वि० आवारा, बदमाश, दुष्ट। उ० आपके जैसे एक कौड़ी बिलटा साधुओं को वह रोज परसाद देगा। (मैला० ६६)

बिलनी : सं० स्त्री १. काली भौंरी जो दीवारों या किवाड़ों पर अपने लिए मिट्टी की बांबी बनाती है। यह किसी भी कीड़े को पकड़कर अपने स्वरूप में बना लेती है। भृगी। २. आंखों की पलकों पर होने वाली एक छोटी-सी फुंसी। गुहांजनी।

बिलल्ला : वि० जिसे किसी बात का शऊर या ढंग न हो। गावदी, मूर्ख।

बिलहरा : सं० पु० बांस की तीलियों या खस आदि का बना हुआ एक प्रकार का संपुट जिसमें पान के लगे हुए बीड़े रखे जाते हैं।

बिलासी : सं० पु० एक प्रकार का वृक्ष जिसकी पत्तियां अंडाकार और ३ से ६ इंच तक लम्बी होती हैं। इसके फलों का गूदा राज लोग इमारत की लेई में लगाते हैं जिससे जुड़ाई मजबूत

होती है। इसकी छाल और पत्तियाँ औषधि के काम आती हैं।

बिलिया : सं० स्त्री० गाय-बैल के गले की एक बीमारी।

बिलोगी : सं०स्त्री० एक प्रकार की घास।

बिसटी : सं० स्त्री० बेगार। (डिं०)

बिसबल : सं० पु० बबूल की जाति का एक वृक्ष। उँदरू।

बिसवार : सं० पु० हज्जामों की पेटी जिसमें वे अपने औजार रखते हैं। छुक-हँड़ी, किसबत।

बिसहनी : सं० स्त्री० एक प्रकार की चिड़िया।

बिसेन : सं० पु० क्षत्रियों की एक शाखा जिसका राज्य गोरखपुर से लेकर नेपाल तक था।

बिष्ठी : सं० स्त्री० थैली, वह वस्तु जो केवल अंग ढकने या वैसे ही दिखावे के लिए लटकाई जाती है। उ० मेरी कमर से फटी-सी मैली-सी बिष्ठी झूल रही थी। (बल० ५)

बींदना : क्रि० अ० अनुमान करना। उ० बींदि पियागम नीद मिसि दी सब अली उठाई। (बिहारी)

बीड़ा : सं० पु० १. पान। २. कोई कार्य पूरा करने का प्रण। ३. हमारी कत्ल का बीड़ा उठाया है। (भा० २।८५८)बीरो उठाय चल्यो—(सूर०)

बीड़ी : सं० स्त्री० १. गड्डी। २. मिस्सी जिसे स्त्रियाँ दांत रंगने के लिए मुँह पर लगाती हैं। ३. पत्ते में लिपटा हुआ सुर्ती का चूर जिसे सुलगा कर पिया जाता है। उ० बगली जेब में बीड़ी का बंडल था। (आधा० २३२) ४. एक प्रकार की नाव।

बीबा : वि० भोला, सीधासादा, अच्छा, भला। उ० बहुत बीबे भाई हो। (झूठा० १।२१०)

बीरनि : सं० स्त्री० कान में पहनने का एक प्रकार का गहना। तरना, बीरी।

बीरू : सं० पु० नावों का बेड़ा। उ० दुहुँ समुद्र रचा जेन्ह बीरू। (जा० ४७५।३)

बीस : सं० पु० एक वृक्ष जिसकी लकड़ी से बंदूक के कुंदे बनाए जाते हैं।

बुंलपटी : सं० पु० जहाज का पिछला पाल। (लश०)

बुकार : सं० पु० वह बालू जो बरसात के बाद नदी अपने तट पर छोड़ जाती हो और जिसमें अन्न बोया जाता हो। भाट, बालू।

बुक्का : सं० पु०किसी वस्तु का चूर्ण। उ० (क) अरु बुक्कन की झोरी (भा० २। ३७९) (ख) सिंदूर बुक्का होई धमारी। (जायसी)

बुग : सं० पु० मच्छर। (बुंदेलखंड)

बुगिअल : सं० पु० पशुओं के चरने का स्थान। चरागाह।

बुजनी : सं० स्त्री० करनफूल के आकार का एक गहना जो कान में पहना जाता है और जिसके नीचे झुमका लटकाया जाता हैं। इसे प्रायः विवाहित स्त्रियाँ पहनती हैं।

बुज्जर : सं० पु० एक प्रकार का पक्षी।

बुज्झा : सं० स्त्री० एक प्रकार की चिड़िया।

बुझना : क्रि० अ० १. किसी जलते हुए पदार्थ का जलना बंद होना। अग्नि शिखा का शांत हो जाना। २. किसी जलते या तपे हुए पदार्थ का पानी पड़ने के कारण ठंडा हो जाना। ३. पानी का किसी गर्म या तपाई हुई चीज से छौंका जाना। ४. पानी आदि की सहायता से

किसी प्रकार का ताप शांत होना। जैसे चूना बुझाना। ५. चित्त का आवेग या उत्साह आदि मंद पड़ना। जैसे ज्यों-ज्यों बुढ़ापा आता है त्यों-त्यों जी बुझता जाता है।

बुटना : क्रि० अ० दौड़कर चला जाना या हट जाना। भागना। उ० (क) आशा करिआयौ हुतो पास रावरे में गाढ़हु के पास दुःखदूरि बुटिगे। (पद्माकर) (ख) राम सिया शिव सिंधु घरा अहि देन के दुःख पुंज बुटे। (हनुमान)

बुढ़ना : सं० पु० छड़ीला, पत्थर फूल।

बुड़की : सं०स्त्री० डुबकी। उ० बेनीमाधव से सहज भाव युक्तिबुड़कियों से माँगते। (प्रे० स० ३।३६)

बुत्ता : सं० पु० १.धोखा, झाँसा, पट्टी। मु०बुत्ता देना—झाँसा देना। २.बहाना।

बुद : वि० पाँच। (दलाल)

बुरबक : सं० पु० मूर्ख, अनजान, एक गाली (पूर्वी उत्तर प्रदेश) उ०अबही हम बच्चा है अहो बुरबके है। (आधा० २२२)

बुरु : सं० पु० एक जाति जिसकी गणना अन्त्यजों में होती है।

बुरुल : सं० पु० एक बहुत बड़ा वृक्ष जो हिमालय में १३००० फुट की ऊँचाई तक होता है। इसकी लकड़ी छत पाटने और पत्ते चारे के काम आते हैं।

बुलेली : सं० पु० मझोले आकार का एक पेड़ जिससे तस्वीरों के चौखटे, मेज, कुर्सियाँ आदि बनाई जाती है। इसके बीजों से निकला तेल कल पुर्जों में डाला जाता है।

बुल्लन : सं० पु० १. मुंह,चेहरा।(दलाली) २. गिरई की तरह की पर भूरे रंग की एक मछली जिसके मूँछें नहीं होतीं।

बुहारी : सं० स्त्री० झाड़ू, सोनी, कूची।

बूआ : सं० स्त्री० १. पिता की बहन। फूफी। २. बड़ी बहन। ३. स्त्रियों का परस्पर आदरसूचक संबोधन। (मुसल०) ४. एक प्रकार की मछली जिसका मांस रूखा होता है। ककसी।

बूक : सं० पु० माजूफल की जाति का एक वृक्ष जो प्रायः ७५ से १०० हाथ तक ऊँचा होता है। इसकी लकड़ी से खंभे चौखटे और बरने आदि बनाई जाती हैं। इसकी पत्तियों से चमड़ा सिझाया जाता है। सलसी।

बूका : सं० पु० वह भूमि जो नदी के हटने से निकल आती है। गंग-बरार।

बूगा : सं० पु० भूसा।

बूजना : क्रि० स० छिपाना, धोखा देना। उ० पाडा बूजी भगति है लोहर वाड़ा माँहि। परगट पेड़ा इत. बसै तहँ संत काहे को जाँहि। (दादू)

बूट : सं० पु० कच्चे चने के दाने। उ० मटरन की फलियाँ कोउ चुनत बूट कोउ चाभैं।(प्रे० स० १।४०)

बूड़ : सं० पु० डूबने की क्रिया। उ० गोपद बूड़िबै करम करैं। (तुलसी)

बूड़ना : क्रि० अ० डूबना, जाना, खोना, नष्ट होना। उ० हमार सब मर्दानगी बूड़ गई। (टे० मे० रा० ३५१)

बूढ़ : सं० पु० १. लाल रंग।२. वीर बहूटी उ० रस कैसे रूख ससि मुखी हँसि हँसि बोलत बैन। गूढ़ मान मन क्यों रहै भए बूढ रंग नैन। (बिहारी)

बूथड़ी : सं० स्त्री० आकृति, चेहरा, सूरत, शक्ल। (दलाल)

बूना : सं० पु० चिनार नाम का वृक्ष।

बूर : सं० पु० पश्चिम भारत में होने वाली एक प्रकार की घास जिसके खाने से गौओं, भैंसों आदि का दूध तथा दूसरे

पशुओं का वल वढ़ जाता है। खोई।

बूरी : सं० स्त्री० एक प्रकार की वहुत छोटी वनस्पति जो पौधों, उनके तनों, फूलों और पत्तों आदि पर उत्पन्न हो जाती है और जिसके कारण वे पदार्थ सड़ने लग जाते हैं। इसकी गणना वृक्षों के रोगों में होती है।

बूला : सं० पु० पयाल का वना हुआ जूता। लतड़ी।

बेंग : सं० पु० पानी में रहने वाला एक जन्तु। मेंढक। उ० हम कूप के वेंग हैं। (मैला० १७)

बेंगत : सं० पु० वह वीज जो खेतिहरों को उधार दिया जाता है और जिसके वदले में फसल होने पर तौल में उससे कुछ अधिक अन्न मिलता है। वँग्, वीट।

बेंगन : सं० पु० एक तरकारी। भंटा। वेगुन वंताक। उ०किसी को वेंगन वावले किसी को वेंगन पथ्य। (प्र० ग्र० ७६)

बेंगन कुटी : सं० स्त्री० अवाली नाम का पक्षी।

बेंट, बेंठ : सं० स्त्री० औजारों आदि में लगा हुआ काठ या इसी प्रकार की और किसी चीज का दस्ता। मूठ।

बेंड़ : सं० पु० १. वह भेड़ा जो भेड़ों के झुंड में वच्चे उत्पन्न करने के लिए छूटा रहता है। (गड़रिया) २. नगद रुपया-पैसा। सिक्का। (दलाल) ३. पड़ाव।

बेंड़ी : सं० स्त्री० वाँस की वह टोकरी जिसमें चार रस्सियाँ वँधी रहती हैं और जिसकी सहायता से दो आदमी मिलकर किसी गड्ढे का पानी उठाकर खेत आदि सींचते हैं।

बेंड़ीमसकली : सं०स्त्री० हँसिया के आकार का लोहे का एक औजार जिसमें काठ का दस्ता लगा रहता है।

वेंढ़ : सं० पु० खंभे आदि के ऊपरी पतले भाग में पहनाया हुआ किसी चीज का पतला चौकोर पत्तर या इसी प्रकार का कोई पदार्थ जिसका उपयोग यह जानने के लिए होता है कि हवा किस ओर वह रही है। फरहरा।

वेआरा : सं० पु० एक में मिला हुआ जौ और चना।

वेओनी : सं०स्त्री०जुलाहों का एक औजार जो प्रायः कंघी के आकार का होता है और ताने के सूत के वीच में रहता है।

वेउंगा : सं० पु० वाँस का वह चोंगा जिसे कंवल की पटिया वुनते समय ताने की साँथी अलग करने के लिए ताने में रखते हैं।

वेकरा : सं० पु० पशुओं का खुरपका नामक रोग।

वेखुर : सं० पु० एक प्रकार का पक्षी जिसका शिकार किया जाता है यह अक्टूवर में पहाड़ से उतरकर समभूमि में आ जाता है। यह केवल फलमूल ही खाता है।

वेगड़ी : सं० पु० १. हीरा काटने वाला, हीरा तराश। २. नगीना वनाने वाला। हक्काक।

वेगती : सं० पु० एक प्रकार की मछली जो वंगाल की खाड़ी में पाई जाती है यह प्रायः चार हाथ लंवी होती है और इसका मांस स्वादिष्ट होता है।

वेगर : सं० पु० उड़द या मूँग का कुछ मोटा और रवेदार आटा जिससे प्रायः मगदल या वड़ा आदि वनाते हैं।

वेगरा : वि० १. अलग। २. पूर का।

वेगुनी : सं० स्त्री० एक प्रकार की सुराही।

वेटा : सं० पु० पुत्र (स्त्री० वेटी) हम हिंदू हिंदू के वेटा। (भा० २।१२७) वाजे

बाजे राजनि के बेटा बेटी ओल हैं।
(क०५।२१)

वेट्टा : सं० पु० एक प्रकार का भैंसा जो मैसूर प्रांत में होता है।

वेठ : सं०पु० एक प्रकार की ऊसर जमीन। वीहड़।

वेड़ा : सं० पु० नाव, नौका, जहाज। मु० वेड़ा पार करना आदि।

वेड़िचा : सं० पु० वाँस की कमाचियों की वनी हुई एक प्रकार की टोकरी जो थाल के आकार की होती है।

वेड़िन, वेड़िनी : सं० स्त्री० १. नट जाति की स्त्री जो नाचती गाती हो। उ० जानो गति वेड़िन दिखराई। वाँह डुलाय जीव लेइ जाई। (जायसी) २. नीच जाति की कोई स्त्री जो नाचती गाती हो और कसव कमाती हो।

वेढ़ : सं० पु० १. नाश, वरवादी। उ० दौरि वेढ़ सिरौंज को कीन्हौ। कुंदा के गिरि डेरा दीन्हौ। (लाल) २. वोया हुआ वीज जिसमें अंकुर निकल आया हो।

वेढ़आ : सं० पु० गोल मैथी।

वेदमल, वेदमाल : सं० पु० लकड़ी की वह तख्ती जिस पर तेल लगाकर सिकलीगर लोग मस्किला नामक औजार सान पर चमकाते हैं।

वेनंग : सं० पु० छोटी जाति का एक प्रकार का पहाड़ी वाँस जो प्रायः लता के समान होता है।

वेनुली : सं० स्त्री० जाँते या चक्की में वह छोटी-सी लकड़ी जो किल्ले के ऊपर रखी जाती है और जिसके दोनों सिरों पर जोती रहती है।

वेनौरी : सं० स्त्री० १. आकाश से वर्षा के साथ गिरने वाले छोटे-छोटे पत्थर। ओला, पत्थर। २. नीम वृक्ष का फल जो पकने पर पीला हो जाता है।

वेपार : सं० पु० एक प्रकार का वहुत ऊँचा वृक्ष जिसकी लकड़ी यदि सीड़ से वची रहे तो वहुत दिनों तक ज्यों की त्यों रहती है। इसकी लकड़ी का कोयला लोहा गलाने के लिए अच्छा समझा जाता है। फेल।

वेम : सं० स्त्री० जुलाहों की कंघी, वेसर।

वेरवा : सं० पु० कलाई में पहनने का सोने या चाँदी का कड़ा।

वेरा : सं० पु० १. एक में मिला हुआ जौ और चना। २. एक वड़ी नाव। उ० तुम्ह पिय भँवर पकी अति वेरा।
(जा०६४३।१)

वेरिज : सं० स्त्री० किसी जिले की कुल जमा।

वेरीछत : सं० पु० एक शब्द जो महावत हाथी को किसी काम को मना करने के लिए कहते हैं।

वेरुआ : सं० पु० वाँस का वह टुकड़ा जो नाव खींचने की गून में आगे की ओर वँधा रहता है और जिसे कंधे पर रखकर मल्लाह खींचते हुए चलते हैं।

वेरुई : सं० स्त्री० वेश्या, रंडी।

वेरुकी : सं० स्त्री० एक रोग जिसमें वैलों की जीभ पर काले-काले छाले पड़ जाते हैं और उसे वहुत कष्ट देते हैं।

वेर्रा : सं० पु० १. जौ और चने का मिला हुआ आटा। २. कोई का फल।

वेलक : सं० पु० फरसा, फावड़ा।

वेलकी : सं०पु० चरवाहा।

वेलकुन : सं० पु० नकछिकनी की जाति की एक प्रकार की लता। इसमें वर्षा ऋतु के वाद पीलापन लिए सफेद रंग के छोटे-छोटे फूल लगते हैं।

वेलखजी : सं० पु० एक प्रकार का वहुत ऊँचा वृक्ष जिसकी लकड़ी इमारती होती

है। इस वृक्ष को काटने के वाद इसकी जड़ें जल्दी फूट आती हैं।

वेलगगरा : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली।

वेलन : सं० पु० १. एक प्रकार का जड़हन धान। २. एक में मिलाई हुई वे दो नावें जिनकी सहायता से डूवी हुई नाव पानी में से निकाली जाती है।

वेल वागुरा : सं० पु० हिरनों के पकड़ने का जाल। (डिं०)

वेली : सं० स्त्री० एक प्रकार का छोटा कटीला वृक्ष जो गरमी में फूलता और जाड़ों में फलता है। इसका व्यवहार औषधि के लिए होता है।

वेसन : सं० पु० चने की दाल का आटा। चने का आटा। रेहन।

वेसनी : वि० वेसन का वना हुआ।

वेसनी : सं० स्त्री० १. वेसन की वनी हुई पूरी। २. वह कचौरी जिसमें वेसन भरा हो।

वेसर : सं० पु० १. खच्चर। उ० हस्ति घोड़ और वटपुरुष जावत वेसरा ऊँट। जहँ तहँ लीन्ह पलाने कटक सरह अस छूट। (जायसी) २. नाक में पहनने का आभूषण। नाक वास वेसर लहै वसि मुक्तन के संग। (विहारी)

वेसरा : सं० पु० एक प्रकार का शिकारी पक्षी। उ० वहरी सुवेसरा कुही संग जो गहत नीर चर वहुत खंग। (सूदन)

वेसवार : सं० पु० वह सड़ा हुआ मसाला जिससे शराव चुआई जाती है।

वेसाहना : क्रि० अ० १. मोल लेना, खरीदना। उ० भरत की राउर पूत न होहिं। आनेहु मोल वेसाहि कि मोहिं। (तुलसी) २. जानवूझकर अपने पीछे लगाना (झगड़े वैर आदि के लिए)।

वेहड़ : वि० भय कर। उ० परवत समुंद अगम विचवन वेहड़ घन ढेख। (जायसी)

वेहना : सं० पु० १. जुलाहों की एक जाति जो प्राय: रूई धुनने का काम करती है। २. रूई धुनने वाला, धुनिया।

वेहर : वि० १. अचल, स्थावर। उ० रवि के ,उदय तारा भो छीना। चर वेहर दूनों में लीना। (कवीर) २. अलग, भिन्न। उ० मिले समुद वे सातों वेहर वेहर नीर। (जायसी)

वेहर : सं० पु० वापी, वावड़ी।

वेहरा : सं० पु० १. एक प्रकार की घास जिसे चौपाये अधिक पसंद करते हैं। (वुंदेल०) २. मूँज की वनी गोल व चिपटी पिटारी जिसमें नथ (नाक की) रखी जाती है।

वेहरना : क्रि० अ० किसी चीज का फटना या तड़क जाना, दरार पड़ना।

वेहरी : सं० स्त्री० १. किसी विशेष कार्य के लिए वहुत से लोगों से चंदे के रूप में एकत्रित धन। २. एक प्रकार के चंदे उगाहने की प्रक्रिया। ३. वह किस्त जो आसामी शिकमीदार को देता है। वाछा।

वैजला : सं० पु० १. उर्द का एक भेद। २. कवड्डी का खेल।

वैटा : सं० स्त्री० रूई ओटने की चर्खी, ओटनी।

वैर : सं० पु० हल में लगाया हुआ चिलम के आकार का चोंगा जिसमें भरा हुआ वीज हल चलने में वरावर कूँड़ में पड़ता जाता है। वैरा।

वैरा : सं० पु० १. वैर, चिलम के आकार का चोंगा जिससे कूँड़ में वीज गिरता है। २. ईंट के टुकड़े, रोड़े आदि जो मेहराव वनाते समय चुनी ईंटों को जमाने के लिए खाली स्थान में भर देते हैं।

बैल : सं० पु० वृषभ, बलिवर्द।

बैहरा : सं० पु० सावन भादों में जोर से चलने वाली हवा। (व्र० श०)

बोंक : सं० पु० लोहे का वह तिकोना कीला जो किवाड़ के पल्ले के नीचे की चूल की जगह लगाया जाता है।

बोक्काण : सं० पु० पश्चिम दिशा का एक पर्वत। (वृहत्संहिता)

बोगुमा : सं० पु० घोड़ों की एक बीमारी जिससे उनके पैर में असहनीय पीड़ा होती है।

बोज : सं० पु० घोड़ों का एक भेद। उ० लीले लक्खी लक्ख बोज बादामी चीनी। (सूदन)

बोझ : १. ऐसा पिण्ड जिसे गुरुत्व के कारण कठिनता हो, जैसे, तुमने मनभर का बोझ उसके सिर पर लाद दिया। (बोज्झिअ दे० ना० ७।८०) २. भारीपन, गुरुत्व जैसे, इसका कुछ बहुत बोझ नहीं। ३. ऐसा कठिन काम जिसके पूरे होने की चिंता बराबर बनी रहे। जैसे, बड़ा भारी बोझ तो कन्या का विवाह है। ४. कठिन लगने वाली बात।

बोड़ : सं० पु० सिर पर पहनने का एक आभूषण।

बोड़री : सं० स्त्री० तोंदी, नाभि।

बोड़ल : सं० स्त्री० एक पक्षी जिसकी चोंच पर सींग-सा होता है।

बोड़ा : सं० पु० १. अजगर, बड़ा साँप। २. एक प्रकार की पतली लंबी फली जिसकी तरकारी बनती है। लोबिया।

बोड़ी : सं० स्त्री० १. दमड़ी, दमड़कौड़ी। २. अत्यल्प धन। उ० जाँचै को नरेस देस देस को कलेस करै, दैहै तो प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बोड़ियै। (तुलसी)

बोत : सं० पु० घोड़ों की एक जाति। उ० कोई अरबी जंगली पहारी। चिर चैंपक चंपा कंधारी। कोई काबुली कंबोज कोई कच्छी। बोत तेमना मुंजी लच्छी। (विश्राम)

बोतक : स० पु० पान की पहले वर्ष की खेती।

बोद : वि० कमजोर, बोद्दय। उ० निसेठ बोद बुद्धि बल मूला। (जा० ४२०।५)

बोदका : सं० पु० मिट्टी की वह दवात जिसमें लड़के खड़िया घोलकर रखते हैं।

बोदकी : सं० स्त्री० कुसुम या बर्रे की एक जाति जिसमें काँटे नहीं होते।

बोदर : सं०पु० ताल या जलाशय के किनारे सिंचाई का पानी चढ़ाने के लिए बना हुआ स्थान जिसके कुछ नीचे दो आदमी इधर-उधर खड़े होकर टोकरे आदि से उलीचकर पानी ऊपर गिराते रहते हैं।

बोदा : वि० कमजोर, दुर्बल। उ० उसे पास देखकर मैं जानवर का-सा बोदा हो जाता हूँ। (क० पु० ५४)

बोदुला : सं० पु० मझोले आकार का वृक्ष जिसकी टहनियाँ सिरों पर गुच्छों के रूप में होती हैं और पशुओं के चारे के काम आती हैं।

बोदेर : सं० स्त्री० लचीली छड़ी।

बोबला : सं० पु० १. बाजरे का भूसा। २. रेत, बालू। ३. मूर्ख, निकम्मा।

बोबा : सं० पु० (स्त्री० बोबी) १. स्तन, थन, चूची। उ० शिशु उदास ह्वै जब तजि बोबा। तब दोउ मिलि लागत रोवा। (निश्चल) २. घर का साज सामान। अंगड़ खंगड़। ३. गट्ठर, गठरी। उ० लीन भयो तहँ धोबी सोबी। ग्वालन पीठ लियो द्रुत बोबी। (गर्गसंहिता)

बोल्बी : सं०स्त्री० पुन्नाग या सुल्ताना चंपा की जाति का एक सदाबहार पेड़।

रहने का गड्ढा जो पहाड़ों आदि में होता है। ३. नाला। ४. जमीन का टुकड़ा।

भरकुट : सं० पु० मस्तक, माथा। (डिं०)

भरचिटी : सं० स्त्री० हिसार में होने वाली एक घास जो वर्षाऋतु में अधिक होती है।

भरता : सं० पु० एक प्रकार का सालन जो बैंगन, आलू या अरुई आदि को भूनकर उसमें नमक मिर्चादि मिलाकर और कभी कभी उसे घी या तेल आदि में छोंक कर तैयार किया जाता है। चोखा।

भरनि : सं० स्त्री० मूसलाधार वर्षा। उ० भरनि भरइ हौं विरह झुरानी। (जा० ३४५।१)

भरनी : सं० स्त्री० १. छछूंदर। २. मोरनी। ३. गारुड़ी मंत्र। ४. एक जंगल बूटी।

भरल : सं०स्त्री० नीले रंग की एक जंगली भेड़ जो हिमालय में भूटान से लद्दाख तक होती है।

भरूआ : सं० पु० टसर।

भरूही : सं० स्त्री० कलम बनाने की एक प्रकार की कच्ची किलक।

भरोसा : सं० पु० १. आश्रय, आसरा। २. सहारा, अनलव। ३. आशा, उम्मीद। ४. दृढ़ विश्वास। उ० सोई भरोस मोरे मन आवा। केहि न सुसंग वड़तनु पावा। (तुलसी)

भर्राना : क्रि० अ० भरा हुआ गला, आन्तरिक दुःख या सुख से आवाज का न निकलना। उ० श्यामनाथ ने भर्राये गले से कहा। (टे० मे० रा० ४५०)

भलका : सं० पु० १. एक विशेष आकार का बना हुआ सोने या चाँदी का टुकड़ा जो शोभा के लिए नथ में जड़ा जाता है। २. एक प्रकार का बाँस।

भलटी : सं० स्त्री० हँसिया नामक लोहे का औजार।

भस्सड़ : वि० बेकार, खराब, फिसड्डी। उ० मामू की हू भस्सड़ लड़कियों के वास्ते हमहीं रह गए हैं। (आधा० २३५)

भाँकड़ी : सं० स्त्री० १. एक जंगली झाड़। हसद सिघाड़ा। २. भाँकरी नामक चपाती जिसे गुजराती लोग खाते हैं।

भाँग : सं० पु० वैश्यों की एक जाति।

भाँगर : सं० स्त्री० किसी धातु आदि की गर्द या छोटे-छोटे कण।

भाँटा : सं० पु० एक तरकारी, बैंगन। उ० राई भरकी बिटिया भाँटा के बराबर आँख। (प्र०ग्र० ५१७)

भाँड़ : सं० पु० मजाकिया, नाचने गाने वाला, प्रशंसक।

भाँपना : क्रि० स० १. ताड़ना, पहचानना। उ० यदि गृहस्थ कोई चाल भाँप ले। (अलग० वै० २५५) २. देखना। (बाजारू)

भाँभी : सं० पु० जूता सीने वाला, चमड़े का काम करने वाला मोची। (डिंगल)

भाखर : सं० पु० पर्वत, पहाड़। (डिंगल)

भागड़ : सं० पु० जिस खेत में पानी न ठहरे। (दिनमान)

भाटा : सं० पु० १. पानी का चढ़ाव की ओर से उतार की ओर जाना। २. समुद्र के चढ़ाव का उतरना। ज्वार का उलटा।

भालर : सं० पु० पत्ता, पत्र, केले का पत्ता। उ० सरीर केले की भालर की तरह थर-थर काँपने लगता है। (मैला० २३७)

भालिया : सं० पु० वह अन्न जो हलवाहे को वेतन में दिया जाता है।

भावंर : सं० पु० एक प्रकार की घास जिससे कागज बनता है।

भावली : सं०स्त्री० जमींदार और आसामी के बीच उपज की बंटाई।

भिड : सं० स्त्री० दीवाल, किनारा, तट। उ० पुराने पोखर की भिड भी अब ऊँची नहीं रह गई थी। (बाबा० १२६)

भिंडी : सं० स्त्री० एक तरकारी, जो उँगलियों की तरह लंबी होती है तथा खाने में स्वादिष्ट होती है। उ० भिंडी और बैंगन के खेत में आदमी फूस का पुतला खड़ा करता है। (बल० ३६)

भिटना : सं० पु० छोटा गोल फल जैसे, कपास का भिटना।

भिटनी : सं० स्त्री० स्तन के आगे का भाग। चूची।

भिनकना : क्रि० अ० १. भिनभिन करना। २. गंदगी से घृणा उत्पन्न होना।

भिनभिनाना : क्रि० अ० भिनभिन करना।

भिनुगा : सं० पु० वह मच्छर जो गूलर के फलों में रहता है।(ब्र० श०)

भिनुसारा : सं० पु० प्रातः, जागत रैनि भएउ भिनुसारा।(जा० ३२१।४)

भिलनी : सं० स्त्री० एक प्रकार का धारीदार कपड़ा या चारखाना।

भिश्ती : सं० पु० मशक द्वारा पानी ढोने वाला व्यक्ति। सक्का।

भीखर : सं० पु० सुभट, वीर।

भीचना : क्रि० स० १. कसकर दबाना। २. बन्द करना।

भीट : सं० पु० १. ढूए वाली जमीन, टीलेदार भूमि। २. वह ऊँची भूमि जहाँ पान की खेती होती है। ३. एक प्रकार की तौल जो प्रायः मन भर के बराबर होती है।

भीटा : सं० पु० १. टीलेदार भूमि। २. वह बनाई भूमि ऊँची और ढलुआ जमीन जिस पर पान की खेती होती है।

भीठा : सं० स्त्री० वह जमीन जिसमें धान नहीं होता, बंजर जैसी जमीन। उ० गरीबों के पास जो थोड़ी बहुत भीठा जमीन होती है। (बल० ७०)

भीर : सं० स्त्री० भीड़। (मनुष्यों का संमर्दन सं० रा० ६२) उ० (क) बाहर भीतर भीर न बनै बखानत। (जायसी) (ख) भीरहु में भरि रंग।(भा० २।६६)

भीरा : सं० पु० एक वृक्ष जिसकी लकड़ी से शहतीर बनते है और इसमें से गोंद, रंग और तेल निकलता है।

भीरी : सं० स्त्री० अरहर का टाल।

भुंडली : सं० स्त्री० एक कीड़ा जिसके शरीर पर बाल होते हैं और स्पर्श होने पर खुजलाहट पैदा करते हैं। पिल्ला। कमला। सूँड़ी।

भुंडा : वि० गन्दा, मैला, कुचैला।

भुकड़ी : सं० स्त्री० सफ़ेद रंग की एक प्रकार की वनस्पति जो प्रायः बरसात के दिनों में अनाज, फल या आचार आदि पर उसके सड़ जाने से पैदा होती है।

भुग्गा : वि० मूर्ख, बेवकूफ।

भुग्गा : सं० पु० तिल आदि का एक प्रकार का तैयार किया हुआ मीठा चूरा। उ० भुग्गा बनाकर गणेश की पूजा करके व्रत उतार लो। (गि० दी० १३३)

भुच्चड़ : वि० मूर्ख। उ० एकदम भुच्चड़ है। देखो अभी किसी का सिर फटता है कि नहीं।(अलग० वै० ६०)

भुटिया : सं० स्त्री० एक प्रकार की धारी जो डोरिए और चारखाने के बुनने में डाली जाती है। (जुलाहा)

भुट्टा : सं० पु० बाल। ज्वार या बाजरे की बाल।

भुट्टू : सं० पु० १. नागाओं में साधु बनने के लिए आया हुआ व्यक्ति। २. शिष्य।

भुठार, भुठोर : सं० पु० वह घोड़ा जो ऐसे

प्रदेश में उत्पन्न हुआ हो जहाँ की भूमि वलुई वा रेतीली हो। ऐसे घोड़े गुजरात और मरुस्थल में पाए जाते हैं। उ० मुराकी औ हिरमिजी इराकी। तुरकी कंगी भुठोर बुलाकी। (जायसी)

भुडली : सं० स्त्री० एक प्रकार का फूल।

भुनगा : सं० पु० १. एक छोटा उड़ने वाला कीड़ा जो फूलों और फलों में रहता है। २. कोई उड़नेवाला छोटा कीड़ा। पतिंगा। ३. बहुत ही तुच्छ या निर्बल मनुष्य।

भुनगी : सं० स्त्री० एक छोटा कीड़ा जो ईख को हानि पहुँचाता है।

भुन्नास : सं० पु० पुरुष की गुप्तेन्द्रिय, लिंग। (बाजारू)

भुन्नासी : सं० पु० एक प्रकार का बड़ा देशी ताला जो प्रायः दूकानों में बंद किया जाता है।

भुरकना : क्रि० स० १. छिड़कना। २. भुलावा देना। ३. इतना सुखाना कि वह भुरभुर हो जाए।

भुरका : सं०पु० १. मिट्टी का बड़ा कसोरा, कुज्जा, कुल्हड़। २. मिट्टी आदि का वह पात्र जिसमें लड़के लिखने के लिए खड़िया घोलते हैं। बुदका, बुदकना।

भुरड़ा : सं० पु० खूँटा, नाव बाँधने का कीला। उ० लंगर बाँधने का जो खूँटा 'भुरड़ा' था वह देखते-देखते हिल गया। (सा० ल० म० ४१)

भुरत : सं० पु० एक प्रकार की घास जो बरसात में होती है। भरौट।

भुरभुर : सं० स्त्री० एक घास जो ऊसर या रेतीली भूमि पर होती है। भुरभुरोई, झुलनी।

भुरभुरा : सं० पु० उत्तरी भारत में होने वाली एक प्रकार की बरसाती घास जिसे चौपाये बड़े चाव से खाते हैं। पलंजी, झूसा, गलगली।

भुरभुरा : वि० सूखा, मुलायम, खुदरी वस्तु को मुलायम करने की क्रिया। उ० मिट्टी खोदते उसे उलट-पलट कर भुरभुरा बना डालते। (बावा० ३४)

भुलभुला : सं० पु० गर्म राख, भूभल।

भुलसना : क्रि०अ० गर्म राख में झुलसना। उ० लाल गुलाब अंगारन हूँ पुनि कछु न भुरसी। सुकवि नेह की वेल विरह झर नेकु न भुरसी। (व्यास)

भुलाना : क्रि० स० १. भूलने का प्रेरणार्थक रूप धोखा देना, भ्रम में डालना। उ० बंधु कहत घर बैठे आवैं। अपनी माया माहि भुलावै। (लल्लू०) २. भूलना, विस्मृत करना। उ० ये है जिन सुख वे दिए करति क्यों न हिय होस। ते सब अबहिं भुलाइयतु तनक दृगन के दोस। (पद्माकर)

भूँकना : क्रि० अ० १. कुत्तों का भों-भों शब्द करना। २. व्यर्थ बकवाद करना।

भूँगर : सं० पु० एक सर्प जो प्रायः डेढ़ हाथ का होता है तथा कई रंगों में पाया जाता है। (ब्र० श०)

भूँडरी : सं० स्त्री० वह भूमि जो जमींदार नाऊ, बारी, फकीर वा किसी संबंधी को माफी के तौर पर देता है।

भूआ : सं० पु० रूई के समान हल्की और मुलायम वस्तु का बहुत छोटा टुकड़ा, जैसे, सेमर का भूआ।

भूई : सं० स्त्री० रूई के समान नर्म तथा मुलायम वस्तु का बहुत छोटा टुकड़ा, उ० तुंड पै भरहि होइ जरि भूई। अबहुँ उघेलु कान कै रूई। (जायसी)

भूड़ : सं० स्त्री० १. एक प्रकार की भूमि जिसमें बालू मिला हुआ होता है। २. कुएं का सोत, झिर।

भूमर : सं० स्त्री० गर्म राख। (व्र०श०)
भूर : सं० स्त्री० गाय की एक जाति।
भूरला : सं० पु० वैश्यों की एक जाति।
भूरा : सं० पु० १. एक प्रकार का कबूतर जिसकी पीठ काली और पेट पर सफेद छींटे होते हैं। २. चीनी, खाँड़।
भूलता : सं० पु० केंचुआ नामक कीड़ा।
भूलना : क्रि० स० १. विस्मरण करना, गलती करना, खो देना।
भूवारि : सं० पु० वह स्थान जहाँ हाथी पकड़कर रखे या बाँधे जाते हैं।
भूसठ : सं० पु० कुत्ता, श्वान।
भूसा : सं० पु० चौपायों का खाद्य। उ० उन्हें दाना भूसा डालकर खुद नहाता और खाना खाता था।
(अलग० वै० १४८)
भूसीकर : सं० पु० एक प्रकार का धान जो अगहन के महीने में तैयार होता है और जिसका चावल सालों रह सकता है।
भेंगा : वि० जिसकी आँखों की दोनों पुतलियाँ देखने में बराबर न रहती हों। ढेरा, अंबरतक्कू।
भेंट : सं० स्त्री० १ पूजा। २. मिलना। ३. नजराना। ४. उपहार। उ० लिए फल फूल मूल भेंट भरि मारा।
(मा० २।८८।१)
भेंटना : सं० पु० कपास के पौधे का फूल, कपास का डोंडा।
भेड़ियाधसान : सं० पु० अन्धानुकरण। उ० भेड़ियाधसान अर्थात् भेड़ चाल का अर्थ सभी जानते हैं। (प्र० ग्र० ४७४)
भेदड़ी : सं० स्त्री० रबड़ी। उ० पतली पेज (राबड़ी, भेदड़ी) में दूध या छाछ या दही मिलाकर भर पेट खिला दो।
(प्रतापसिंह)
भेमम : सं० पु० एक प्रकार का बहुत छोटा और पतला बाँस। रिंगाल, निगाल।
भेरवा : सं० पु० एक प्रकार का खजूर जिसके पत्तों के रेशों से रस्सियाँ बनती हैं। इसे पाछने से एक प्रकार की ताड़ी निकलती है।
भेरा : सं० पु० मध्य तथा दक्षिणी भारत का मझोले आकार का एक पेड़ जिससे लकड़ी, गोंद, रंग और तेल निकलता है। लकड़ी मेज, कुर्सी बनाने के काम आती है। उ० मेरे चढ़िया झाँझरे भवसागर के माँहि। (कबीर)
भेला : सं० पु० बड़ा गोला या पिंड, जैसे, गुड़ का भेला।
भेली : सं० स्त्री० १. गुड़ या और किसी वस्तु की गोल बट्टी या पिंडी, जैसे, चार भेली गुड़। २. गुड़।
भैंड़ी : सं० स्त्री० गन्दी लड़की, बुरी लड़की, प्यार से कहने की एक रिवाज। उ० चल भैंड़ी ! मैं नहीं बोलूंगी तुझसे।
(झूठा० १।१९३)
भैंस : सं० स्त्री० महिषी, एक दूध देने वाला चौपाया, जो भारी भरकम और स्थूल-काय होता है।
भैंसवाली : सं० स्त्री० एक प्रकार की बेल जिसकी पत्तियाँ ५ से ८ इंच तक लंबी होती हैं। यह वर्षा में फूलती और जाड़े में फलती है।
भैना : सं० स्त्री० गंगई नामक पक्षी।
भैया : सं० पु० नाव की तख्ती या पट्टी।
भोंक : सं० स्त्री० खोंप, घुसेड़, प्रवेश। उ० सुई भोंककर देह में जहर दे देते हैं।
(मैला० १९)
भोंगरा : सं० पु० एक प्रकार की बेल या लता।
भोंडा : सं० पु० १. ज्वार की जाति की

एक प्रकार की घास जो पशुओं के चारे के काम आती है। इसमें एक प्रकार के दाने लगते हैं जो गरीब लोग खाते हैं। २. गंदा, कुरूप। उ० अभागे तिय त्यागे भोंडे भागे। (तुलसी)

भोंडी : सं० स्त्री० वह भेड़ जिसकी छाती पर के रोएँ सफेद और बाकी सारे शरीर के रोएँ काले हों। (गड़रिया)

भोंतरा : वि० जिसकी धार तेज न हो, कुंद धार वाला (अस्त्र)। भोंतला।

भोकस : सं० पु० एक प्रकार का राक्षस। उ० कीन्हेसि राकस भूत परीता। कीन्हेसि भोकस देव दइता। (जायसी)

भोगलियाल : सं० स्त्री० कटारी नामक अस्त्र। (डिं०)

भोगली : सं० स्त्री० १. छोटी नली, पुपली। २. नाक में पहनने की लौंग। ३. टेटका या तरकी नामक गहना। ४. वह छोटी पतली कील जो लौंग या कान के फूल आदि को अटकाने के लिए लगाई जाती है। ५. चपटे तार का बना सलमा जिससे दोनों किनारों के बीच की जंजीर बनाई जाती है। (कंगनी)

भोडर : सं० पु० १. अभ्रक, अबरक। उ० पायल पाय लगी रहै लगे अमोलक लाल। भोडर हू की भासिहै बेंदी भामिनि भाल। (बिहारी) २. अभ्रक का चूरा जो गुलाल के साथ होली पर उड़ाया जाता है। बुक्का। ३. एक प्रकार की मुश्क बिलाव।

भोथार : सं० पु० एक प्रकार का घोड़ा। उ० मुश्की औ हिरमिजी इराकी। तुरकी कहै भोथार बोलाकी। (जायसी)

भोबरा : सं० पु० एक प्रकार की घास। झेरन।

भोर : सं० पु० १. एक बड़ा पक्षी जिसके पर बहुत सुन्दर होते हैं। यह फल फूल तथा कीड़े खाता है और खेतों को हानि पहुँचाता है।

भोर : वि० सीधा, भोला। उ० पति रावरो दानिहै बावरो भोरो। (तुलसी)

भोरी : सं० स्त्री० अफीम का एक रोग।

भोसड़ी : सं० स्त्री० स्त्री का गुप्तांङ्ग। रतिस्थान, एक गाली।

भोसर : सं० पु० बेवकूफ, मूर्ख।

भौंगर : सं० पु० क्षत्रियों की एक जाति।

भौंड़ी : सं० स्त्री० छोटा पहाड़, पहाड़ी, टीला।

भौंतुवा : सं० पु० नदी में तैरने वाला काला कीड़ा। उ० कहा भयौ जो मन मिलि कलि कालहिं कियो भौंतुवा भोर कोहै। (वि० २२९)

भौंदू : वि० मूर्ख, गावदी।

भौंर : सं० पु० मुश्की घोड़ा। उ० लील समंद चाल जग जाने। हाँसल भौंर गियाह बखाने। (जायसी)

भौंका : सं० पु० (स्त्री० अल्प० भौंकी) बड़ी दौरी, टोकरा।

भौंठा : सं० पु० छोटा पहाड़, टीला, पहाड़ी।

भौंती : सं० स्त्री० एक बालिश्त लंबी और पतली लकड़ी जिसकी सहायता से ताने का चरखा घुमाते हैं। भैंड़ती। (जुलाहा)

भौलिया : सं० स्त्री० बजरे की तरह की पर उससे कुछ छोटी नाव जो ऊपर से ढकी रहती है।

भौसा : सं० पु० १. भीड़-भाड़, जनसमूह। २. होहल्ला, गड़बड़।

भ्वासर : वि० बेवकूफ, मूर्ख।

मंखी : सं० स्त्री० बच्चों के कंठ में पहनाने का एक आभूषण।

मंग : वि० आठ की संख्या। (दलाल)

मंडरी : सं० स्त्री० पयाल की निर्मित गोदरी या चटाई।

मंडा : सं० पु० एक प्रकार की बंगला मिठाई।

मंड़ियार : सं० पु० झरबेरी नामक कँटीली झाड़ी।

मंड़ुआ : सं० पु० एक प्रकार का कदन्न।

मंडूक : सं० पु० १. दोहा, छंद का पाँचवाँ भेद जिसमें १८ गुरु और १२ लघु अक्षर होते है। रूद्रताल के ग्यारह भेदों में से एक। ३. प्राचीन काल का एक बाजा। ४. एक प्रकार का नृत्य। ५. घोड़े की एक जाति।

मंदऊ : सं० पु० घोड़े का एक रोग जिसमें उसके गले के पास की हड्डी में सूजन आ जाती है।

मंदरी : सं० स्त्री० खाजे की जाति का एक पेड़। इसकी लकड़ी मजबूत होती है और खेती के सामान तथा गाड़ियाँ बनाने के काम आती है। छाल से चमड़ा सिझाया जाता है। फल खाए जाते है।

मकड़ा : सं० पु० एक प्रकार की घास जो बहुत शीघ्रता से बढ़ती है। यह पशुओं और विशेषत: घोड़ों के लिए बहुत पुष्टि-कारक होती है। यह दस वर्ष तक सुखा-कर रखी जा सकती है। मधाना, खमकरा, मनसा।

मकसीली : सं० पु० सख्त मिट्टी का ढेलेदार खेत। (ब्र० श०)

मकाई : सं० स्त्री० जोन्हरी, ज्वार।

मकुनी : सं० स्त्री० १. आटे के भीतर बेसन या चने की पीठी भरकर बनाई हुई कचौरी। बेसनी रोटी। २. चने का बेसन और गेहूँ का आटा एक में मिलाकर उसमें नमक, मैथी, मगरैला आदि मिलाकर बाटी की भाँति की लिट्टी। ३. मटर के आटे की रोटी।

मकोसल : सं० पु० एक प्रकार का ऊँचा वृक्ष जो सर्वदा हरा भरा रहता है। इसकी लकड़ी अंदर से लाल और बहुत कड़ी तथा दृढ़ होती है। यह इमारती होती है।

मक्का : सं० पु० एक प्रकार की ज्वार। बड़ी जोन्हरी। मकई।

मक्सी : सं० पु० १. वह सब्जा घोड़ा जिस पर काले फूल या दाग हों। २. बिलकुल काले रंग का घोड़ा।

मखोना : सं० पु० एक प्रकार का कपड़ा। उ० चकवा चौर मखोना लोने। मोति लाग औ छापे सोने। (जायसी)

मखौल : सं० पु० हँसी ठट्ठा, मजाक, परिहास।

मगजी : सं० स्त्री० कपड़े के किनारे पर लगी हुई पतली गोट।

मगमा : सं० पु० कागज बनाने में उसके लिए तैयार किए हुए गूदे को धोने की क्रिया।

मगरी : सं० स्त्री० ढलुए छप्पर का बीच का या सबसे ऊँचा भाग जैसे ओलती का पानी मगरी चढ़ा है। (कहा०)

मगरो : सं० पु० नदी का ऐसा किनारा जिसमें बालू के साथ कुछ मिट्टी मिली हो और जो जोतने बोने के योग्य हो गया हो।

मगस : सं० पु० पेरे हुए ऊखों की सीठी। खोई।

मगोर : सं० स्त्री० सींगी की तरह की एक प्रकार की मछली जो बिना छिलके की और कुछ लाली लिए काले रंग की होती है। यह डंक मारती है। मंगुर, मंगुरी।

मचकी : सं०पु० झूला, झूलने का उपकरण। उ० मलिकाइन के बाग में मचकी झूल

होते हैं।

महसीर : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली।

महीखड़ी : सं० स्त्री० सिकलीगरों का एक औजार जिसकी धार कुंद होती है और जिसमें लकड़ी का दस्ता लगा रहता है। इससे बरतन आदि खुरचकर साफ किए जाते हैं।

महीखरी : सं० स्त्री० अट्ठाईस मात्राओं के एक छंद का नाम जिसमें १४ मात्राओं पर यति होता है।

महीम : सं० पु० एक प्रकार का गन्ना जो पीलापन लिए हरे रंग का होता है। इसे पूने का पौंढ़ा भी कहते हैं।

महेर : सं० पु० झगड़ा, बखेड़ा।

महेसिया : सं० पु० एक प्रकार का उत्तम अगहनी धान।

मांच : सं० पु० १. पाल में हवा लगने के लिए चलते हुए जहाज का रुख कुछ तिरछा करना। गोश। २. पाल के नीचे वाले कोने में बँधा हुआ वह रस्सा जिसकी सहायता से पाल को आगे बढ़ाकर या पीछे हटाकर हवा के रुख पर करते हैं। (लश०)

मांचना : क्रि० अ० १. प्रसिद्ध होना। २. लीन होना। उ० स्याम प्रेम रस मांची- (सूर०)

मांज : सं० स्त्री० १. दलदली भूमि। २. तराई, कछार। ३. वह भूमि जो नदी के पीछे हो जाने के कारण निकल आती है। गंग बरार।

मांजा : सं० पु० १. पहली वर्षा का फेन जो मछलियों के लिए मादक होता है। उ० तलफत विषम मोह मन मापा। मांजा मनहुँ मीन कहँ व्यापा (तुलसी)

मांझी : सं० पु० १. नौका खेने वाला, मल्लाह। २.बलवान, जोरावर। (डिंगल)

मांठ : सं० स्त्री० १. घड़ा। उ० मांठ मजीठि जानु रंगा डारे। (जा० ६३३।५) २. मठरी। यह मैदे की बनती है। उ० मांठ पेराक बुंद हुरहुरी। (जा० ५५०।७)

मांठी : सं० स्त्री० १. एक प्रकार की फूल धातु की ढली हुई चूड़ियां जो पूर्व में नीच जाति की स्त्रियां कलाई से लेकर कोहनी तक पहनती हैं। मठिया। २. मठरी नामक पकवान जो मैदे से बनता है।

मांड़ : सं० पु० १. एक प्रकार का राग। २. चावल (भात) का निकला लसलसा पदार्थ।

मांडील : सं० स्त्री० एक मछली का नाम। मछली का भेद। (सा० ल० म० ८)

मांद : सं० स्त्री० गोबर का वह ढेर जो पड़ा-पड़ा सूख जाता है और जो प्रायः जलाने के काम आता है।

माकल : सं० स्त्री० इंद्रायन नामक लता।

माज : सं० पु० पहली वर्षा का फेन। उ० माजहि खाइ मीन जनु मापी। (मा० १।१६।२)

माट : सं० पु० एक प्रकार की वनस्पति जिसका व्यवहार तरकारी के रूप में होता है।

माठ : सं० पु० मैदान। (बंगला)

माठा : सं०पु० कृपण, कंजूस। (डिंगल)

माठी : सं० स्त्री० एक प्रकार की कपास। यह निम्नकोटि की मानी जाती है। उ० सूर प्रभु को ओसरे मति ही भई अबेर री वेग चलि साजि शृंगार काढ़ि माठी लग वारो आइकै साज। (सूर)

माठू : सं० पु० १. बंदर, वानर। २. मूर्ख। (पश्चिम)

माथा : सं० पु० १. यात्रा, सफर, खेप। (लश०) २. एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

जो बागों में लगाई जाती है।

मलमला : सं० पु० कुलफे का साग।

मलरिया : सं० स्त्री० हाँड़ी, जिसमें स्निग्ध पदार्थ, जैसे तेल, घी आदि रखते हैं।

मलाई : सं० स्त्री० १. दूध का साढी। उ० छाछ को ललात जैसे राम नाम के प्रसाद खात, खून सान सौंधे दूध की मलाई है। (तुलसी) २. सारतत्व, रस। उ० भूरि दई पिप भूरि भई प्रहलाद सुधाई सुधा की मलाई। ३. एक रंग का नाम जो बहुत हलका बादामी होता है।

मलाट : सं० पु० एक प्रकार का मोटा घटिया कागज जो प्रायः खाकी रंग का होता है और कागज के बंडल बाँधने या इसी प्रकार के और कामों में आता है।

मलित : सं० पु० एक प्रकार की छोटी कूँची जिससे सुनार नक्काशी के गहनों को साफ करते हैं।

मलिस : सं० स्त्री० छेनी के आकार का सुनारों का एक औजार जिससे हँसुली की गिरह या घुंडियाँ उभारी जाती है।

मलूक : वि० सुंदर, मनोहर। उ० प्यारी प्यारी वे मलूक हरियाली कुंजें। शोभा छवि आनंद भरी सब सुख की पुंजें। (श्रीधर)

मल्ला : सं० पु० १. जुलाहों के हत्था नामक औजार का ऊपरी भाग जिसे पकड़कर वह चलाया जाता है। २.एक प्रकार का लाल रंग जो कपड़े को लाल या गुलाबी रंग के माठ में बचे हुए रंग में डुबाने से आता है।

मलेपंज : सं० पु० अधिक अवस्था का घोड़ा। बुड़्ढा घोड़ा।

मल्हनी : सं० स्त्री० एक प्रकार की नाव जिसका अगला भाग अधिक चौड़ा होता है।

मल्हावेल : सं० स्त्री० वह बेल जो पेड़ों पर चढ़कर उसे हानि पहुँचाती है। मौला बेल।

मवाली : सं० पु० १. दक्षिण भारत की एक अर्ध सभ्यजाति। २. मूर्ख या इधर-उधर फिरने या घूमने वाला व्यक्ति।

मसकना : क्रि० स० दबाना। उ० तुलसी उछरि सिंधु मेरु मसकतु है। (तुलसी)

मसन : सं० पु० एक प्रकार का टकुआ जिसकी सहायता से ऊन के कई तागे एक साथ मिलाकर बटे जाते हैं।

मसही : सं० स्त्री० एक प्रकार का पक्षी। (डिंगल)

मसीना : सं० पु० मोटा अन्न, कदन्न।

मसूला : सं० पु० एक प्रकार की पतली लंबी नाव।

मसोढा : सं० पु० सोना, चाँदी आदि गलाने की घरिया। (कुमाऊँ)

मस्ट : सं० स्त्री० चुपचाप, शान्त। उ० अब कहि न किछू नाहीं मस्ट भली पंछि-राज। (जा० ७२।६)

महँड़ा : सं० पु० भुने हुए चने। (बिहार)

महण : सं० पु० समुद्र। (डि०)

महतवान : सं० पु० करघे में पीछे की ओर लगी हुई वह खूँटी जिसमें ताने को पीछे की ओर कसकर खींचे रहने वाली डोरी लपेट कर बरतेले में बाँधी जाती है। पिंडा, मुन्नी, हथेला।

महरी : सं० स्त्री० १. ग्वालिन नामक पक्षी, दहिगल। २. एक खाद्य पदार्थ।

महरुआ : सं० पु० जस्ता। (सुनार)

महरू : सं० पु० १. चंडू पीने की नली। २. एक प्रकार का वृक्ष।

महलाठ : सं० पु० एक प्रकार का पक्षी जिसकी दुम लंबी, ठोर काली, छाती भूरी, पीठ खाकी रंग की और पैर काले

होते हैं।

महसीर : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली।

महीखड़ी : सं० स्त्री० सिकलीगरों का एक औजार जिसकी धार कुंद होती है और जिसमें लकड़ी का दस्ता लगा रहता है। इससे बरतन आदि खुरचकर साफ किए जाते हैं।

महीखरी : सं० स्त्री० अट्ठाईस मात्राओं के एक छंद का नाम जिसमें १४ मात्राओं पर यति होता है।

महीम : सं० पु० एक प्रकार का गन्ना जो पीलापन लिए हरे रंग का होता है। इसे पूने का पौंड़ा भी कहते हैं।

महेर : सं० पु० झगड़ा, बखेड़ा।

महेसिया : सं० पु० एक प्रकार का उत्तम अगहनी धान।

माँच : सं० पु० १. पाल में हवा लगने के लिए चलते हुए जहाज का रुख कुछ तिरछा करना। गोश। २. पाल के नीचे वाले कोने में बँधा हुआ वह रस्सा जिसकी सहायता से पाल को आगे बढ़ाकर या पीछे हटाकर हवा के रुख पर करते हैं। (लश०)

माँचना : क्रि० अ० १. प्रसिद्ध होना। २. लीन होना। उ० स्याम प्रेम रस माँची- (सूर०)

माँज : सं० स्त्री० १. दलदली भूमि। २. तराई, कछार। ३. वह भूमि जो नदी के पीछे हो जाने के कारण निकल आती है। गंग बरार।

माँजा : सं० पु० १. पहली वर्षा का फेन जो मछलियों के लिए मादक होता है। उ० तलफत विषम मोह मन मापा। माँजा मनहुँ मीन कहँ व्यापा (तुलसी)

माँझी : सं० पु० १. नौका खेने वाला, मल्लाह। २. बलवान, जोरावर। (डिंगल)

माँठ : सं० स्त्री० १. घड़ा। उ० माँठ मजीठि जानु रंग डारे। (जा० ६३३।५) २. मठरी। यह मैदे की बनती है। उ० माँठ पेराक बुंद हुरहुरी। (जा० ५५०।७)

माँठी : सं० स्त्री० १. एक प्रकार की फूल धातु की ढली हुई चूड़ियाँ जो पूर्व में नीच जाति की स्त्रियाँ कलाई से लेकर कोहनी तक पहनती हैं। मठिया। २. मठरी नामक पकवान जो मैदे से बनता है।

माँड़ : सं० पु० १. एक प्रकार का राग। २. चावल (भात) का निकला लसलसा पदार्थ।

माँडील : सं० स्त्री० एक मछली का नाम। मछली का भेद। (सा० ल० म० ८)

माँद : सं० स्त्री० गोबर का वह ढेर जो पड़ा-पड़ा सूख जाता है और जो प्रायः जलाने के काम आता है।

माकल : सं० स्त्री० इंद्रायन नामक लता।

माज : सं० पु० पहली वर्षा का फेन। उ० माजहि खाइ मीन जनु मापी। (मा० १।१६।२)

माट : सं० पु० एक प्रकार की वनस्पति जिसका व्यवहार तरकारी के रूप में होता है।

माठ : सं० पु० मैदान। (बंगला)

माठा : सं०पु० कृपण, कंजूस। (डिंगल)

माठी : सं० स्त्री० एक प्रकार की कपास। यह निम्नकोटि की मानी जाती है। उ० सूर प्रभु को ओसरे मति ही भई अबेर री वेग चलि साजि शृंगार काढ़ि माठी खग वारो आइकै साज। (सूर)

माठू : सं० पु० १. बंदर, वानर। २. मूर्ख। (पश्चिम)

माथा : सं० पु० १. यात्रा, सफर, खेप। (लश०) २. एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

माद : सं० पु० १. छोटा रस्सा। (डिंगल) २. खोह, गुफा।

माधी : सं० पु० भैरव राग के एक पुत्र का नाम।

मामरी : सं० स्त्री० एक प्रकार का पेड़ जो हिमालय की तराई में रावी नदी से पूर्व की ओर तथा मद्रास और मध्य-भारत में होता है। इसकी लकड़ी बड़ी मजबूत होती है। इसकी छाल औषधि के काम आती है और जड़ साँप के काटने की औषधि है। चौरी, खड़ी।

मार : सं० स्त्री० काली मिट्टी की जमीन, करैल मिट्टी की भूमि। मखा भूमि।

मारवा : सं० पु० १. एक संकर राग जो परज विभास और गौरी को मिलाकर बनाया जाता है। २. एक ख्याल जो तिलवाड़ा ताल पर बजाया जाता है।

मारू : सं० पु० १. एक राग जो युद्ध के समय बजाया और गाया जाता है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह श्री राग का पुत्र माना जाता है। उ० मेरि नफीर बाज सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई। (तुलसी) सैयद समर्थ भूप अली अकबर दल चलत बजाय मारू दुंदुभी धुकान की। (गुमान) २. बहुत बड़ा डंका, जंगी धौंसा। उ० उस काल मारू जो बाजता था सो तो मेघ-सा गाजता था। (लल्लू०) ३. एक प्रकार का पेड़ जिसकी लकड़ी जलाने और कोयला बनाने के काम आती है। इसके पत्ते और गोंद चमड़ा रंगने के काम आते हैं।

मारूत : सं० स्त्री० घोड़ों के पिछले पैरों की एक भौंरी जो मनहूस समझी जाती है।

मालदही : सं० स्त्री० एक प्रकार की नाव जिसमें माँझी छप्पर के नीचे बैठकर खेते हैं।

मालिया : सं० पु० मोटे रस्सों में दी जाने वाली एक प्रकार की गाँठ जिसका व्यवहार जहाज़ के पाल बाँधने में होता है। (लश०)

मालू : सं० स्त्री० एक प्रकार की बेल जो बागों में शोभा के लिए लगाई जाती है और प्रायः सारे भारत में जंगली दशा में पाई जाती है। इसकी छाल के रेशे से रंग बनते हैं। पत्तियाँ और बीज भून कर खाए जाते हैं।

मावली : सं० पु० दक्षिण भारत की एक पहाड़ी वीर जाति। शिवाजी की सेना में इस जाति के लोग थे। उ० सावन भादों की भारी कूहुकी अंध्यारी चढ़ि दुग्ग पर जात मावली दल सचेत है। (भूषण)

माहूँ : सं०स्त्री० एक छोटा कीड़ा जो राई, सरसों, मूली आदि की फसल में उनके डंठलों पर फूलने के समय या उसके पहले अंडे दे देता है जिससे फसल नष्ट हो जाती है।

माहू : सं० पु० कनसलाई नामक कीड़ा जो प्रायः कान में घुस जाता है।

मियार, मियाल : सं० पु० वह लकड़ी जो कुएँ के ऊपर दो खंभों पर लगी होती है और जिस पर गराड़ी पड़ी रहती है।

मिरकी : सं०स्त्री० चौपायों को होने वाली एक प्रकार की मुँह की बीमारी। (अवध)

मिलना : क्रि० स० गौ आदि का दूध दुहना।

मिसरी : सं० स्त्री० १. दोबारा बहुत साफ करके जमाई हुई दानेदार या रवेदार चीनी जो प्रायः कूजे या कतरे के रूप में होती है। २. एक प्रकार की शहद की मक्खी।

मिस्ता : सं० पु० १. वह मैदान जिसमें किसी प्रकार की हरियाली न हो, बंजर।

२.अनाज दाँने के लिए तैयार की हुई सम भूमि।

मिस्सा : सं० पु० किसी प्रकार की दाल को पीसकर तैयार की हुई मोटे आटे की रोटी। मिस्सी रोटी।

मिही : सं० स्त्री० मध्यप्रदेश में होने वाली एक प्रकार की अरहर जिसके दाने कुछ बड़े होते हैं और जो कुछ देर में तैयार होती है।

मुंडा : सं० पु० १. एक प्रकार का जूता जिसमें नोक नहीं होती और जिसे प्रायः सिपाही पहनते हैं। २. छोटा नागपुर में रहने वाली एक असभ्य जाति। ३. लड़का। (पंजाबी)

मुकटा : सं० पु० एक प्रकार की रेशमी धोती जो प्रायः पूजन या भोजन आदि के समय पहनी जाती है।

मुकावा : सं० पु० वह छोटा संदूक जिसमें सुरमा, मिस्सी, कंघी और शीशा आदि रखकर वधू को देते है। संदूक के आकार का छोटा सिंगारदान। (मुसल०)

मुकियल : सं० पु० एक प्रकार का बाँस। नलबाँस, बिधुली।

मुगना : सं० पु० सहिजन, मुनगा।

मुग्घम : वि० वह बात जो खोलकर या स्पष्ट न कही जाए।

मुग्घम : सं० स्त्री० दाँव में वह अवस्था जिसमें न हार हो न जीत हो।

मुच्चा : सं० पु० मांस का बड़ा टुकड़ा, गोश्त का टुकड़ा।

मुटका : सं० पु० एक प्रकार का रेशमी वस्त्र जो प्रायः बंगाल में होता है और धोती के स्थान पर पहनने के काम आता है।

मुटकी : सं० स्त्री० कुलथी नामक अन्न। खुरथी।

मुटमुरी : सं० पु० एक प्रकार का भदई धान।

मुट्ठा मुहेर : सं० स्त्री० युवती, स्त्री। (कहार)

मुठभेर : सं०स्त्री०आमने-सामने में टक्कर। उ० चूक न घात मार मुठभेरी। (मा०२।१३३।२)

मुड्ड : सं० पु० मूर्ख, भोंदू। उ० जो मुड्ड हैं उन पर तू हाथ उठा सकती है। (क० पु० ७८)

मुड़िया : सं० स्त्री० १. एक प्रकार की मछली। २. व्यवसाइयों की एक भाषा। मुंडी।

मुनमुना : सं० पु० मैदे का बना हुआ एक प्रकार का पकवान जो रस्सी की तरह बटकर छाना जाता है।

मुनाल : सं० पु० एक प्रकार का बहुत सुन्दर पहाड़ी पक्षी जिसकी हरी गर्दन पर सुन्दर कंठ-सा दिखाई देता है और जिसके सिर पर कलंगी होती है। इसके पर बहुत अधिक मूल्य पर बिकते हैं।

मुनियाँ : सं० स्त्री० लाल नामक पक्षी का मादा। उ० मुंडले झपटि गहि आनी प्रेम पींजरा में लाल मुनियाँ ज्यों गुण लाल गहि लागी है। (देव)

मुनियाँ : सं० पु० एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

मुन्ना : सं० पु० १. छोटों के लिए प्रेमसूचक शब्द। प्रिय, प्यारा। उ० मुन्ना मैंने तो यह कहा था कि इस मिट्टी के मोर को देख। (लक्ष्मण सिंह) २. तारकशी के कारखाने के वे दोनों खूँटे जिनमें जेता लगा रहता है।

मुरंडा : सं० पु० भुने हुए गरमागरम गेहूँ में गुड़ मिलाकर बनाया हुआ लड्डू। गुड़धानी। २. दही को कपड़े में बाँधने के

बाद जब दही का पानी निकल जाता है तब उसे घी में तलकर उसके लड्डू नुमा बनाते हैं। उ०अउर दही के मुरंडा बाँधे। औ संधान बहु भाँतिन साधे। (जायसी) मुहा० मुरंडा करना—१.गठरी-सा बना देना, लड्डू सा कर देना, बहुत मारना।

मुरकरी : सं०स्त्री० अमिरती। यह जलेबी की तरह होती है। उ० मोति लड्डु छाल औ मुरकरी। (जा० ५५०।७)

मुरकुल : सं० स्त्री० एक प्रकार की लता जिसकी शाखाओं में से एक प्रकार का रेशा-सा निकलता है जिससे रस्सियाँ बनाई जाती है। बेरी।

मुरझाना : क्रि० अ० सूखना, झुलस जाना। उ० पेड़ में लगे-लगे मुरझा कर रह जाएँगे। (भ० नि० २।१७४)

मुरतंगा : सं० पु० एक प्रकार का ऊँचा पेड़ जिसके हीर की लकड़ी लाल और कड़ी होती है और जिससे सजावट के सामान बनाए जाते हैं।

मुरता : सं० पु० एक प्रकार का जंगली झाड़ जो पूर्वी बंगाल और असम में होता है। इससे प्राय: चटाई वा सीतलपाटी बनाई जाती है।

मुरमुरा : सं० पु० भुना हुआ चावल। (पश्चिम) फरुई। मूड़ी। (बंगला)

मुरवा : सं० पु० १. एड़ी के ऊपर की हड्डी के चारों ओर का घेरा, पैर का गिट्टा। उ० (क) लखि प्रभु पाछे पाउँ पसारा। परसि वही मुरवन तक धारा। (विश्राम) (ख) रह्यो दीठ ढारहा गहै ससहर गयौ न सूर। मुर्‌यो न मन मुखान चुमि भौं चूरन चपि चूर।। (बिहारी) २. एक प्रकार की कपास जो ३-४ वर्ष तक फलती है।

मुराड़ा : सं० पु० जलती हुई लकड़ी। लुआठा। उ० हम घर जारा आपना लिया मुराड़ा हाथ। अब घर जारौं तासु का जो चलै हमारे साथ। (कबीर)

मुरूआ : सं० पु० एड़ी के ऊपर का घेरा, पैर का गट्टा। जैसे, जो पाँव के मुरूओं में होता है। (नूतनामृतसागर)

मुरैठा : सं० पु० नाव की लंबाई में चारों ओर घूमी हुई गोट जो तीन-चार इंच मोटे तत्वों से बनाई जाती है और 'गूढ़ा' के ऊपर रहती है।

मुर्री : सं० स्त्री० कमर, धोती का बाँधा हुआ फेंटा जहाँ कमर रहती है। उ० कसम जाने किसने मुर्री में से रुपये काट लिए। (अलग० वै० ५४)

मुल : अव्यय० १. मगर, लेकिन, पर। (पश्चिम) २. तात्पर्य यह है कि, मतलब यह है कि।

मुलमुलाना : क्रि० अ० आँखों की पलकों का बार-बार झपकना या उठते या गिरते रहना।

मुल्लह : सं० पु० वह पक्षी जो पैर बाँधकर जाल में इसलिए छोड़ दिया जाता है कि उसे देखकर और पक्षी आकर जाल में फँसे। कुट्टा।

मुल्लह : वि० बहुत अधिक सीधा-सादा, बेवकूफ, मूर्ख।

मुश्क : सं०स्त्री० कंधे और कोहनी के बीच का भाग। भुजा, बाँह। मुहा० मुश्कें बसना —दोनों भुजाओं को पीठ की ओर करके बाँध देना।

मुसका : सं० पु० रस्सी की बनी हुई एक प्रकार की छोटी जाली जो पशुओं विशेषत: बैलों के मुँह पर इसलिए बाँध दी जाती है जिसमें वे खलिहानों या खेतों में काम करते समय कुछ खा न सकें। जाला।

मुसदी : सं० स्त्री० मिठाई बनाने का साँचा।

मुसमंद : सं०पु० नाश, ध्वंस, बरबादी।

मुसमुंद : वि० ध्वस्त, नष्ट, बरबाद। उ० पुरद्वार रुक्कि ठानौ बलि सबै दुग्ग मुसमुंद किये। (सूदन)

मुसरिया : सं० स्त्री० काँच की चूड़ियाँ बनाने का साँचा।

मुहवनी : सं० स्त्री० एक प्रकार का फल जो नारंगी की तरह का होता है।

मुहपुची : सं० स्त्री० काले रंग का एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो मूँगफली की फसल को नष्ट कर देता है। ये कीड़े रात को अधिक उड़ते है। ये पत्तियों पर अंडे देते है जिसमे पत्तियाँ सूख जाती हैं। पानी बरसने पर ये नष्ट हो जाते हैं। खुरल।

मूँदी : सं० स्त्री० बेसन की बनी हुई एक प्रकार की कढ़ी जिसमें बेसन के सेव या पकौड़ियाँ आदि पड़ी होती हैं। सेव या पकौड़ियों की कढ़ी।

मूतरी : सं० पु० एक प्रकार का जंगली कौवा। महताव। महालत। पेशाब करने का स्थान। (गुजराती)

मूना : सं० पु० १. पीतल या लोहे की अंकुसी जो टेकुए के सिरे पर जड़ी रहती है और जिसमें रस्सी या डोरा फँसा रहता है। २. एक झाड़ी जिसके फल बेर के समान होते हैं।

मूर्ख : सं० पु० १. उर्द। २. बनमूँग।

मूला : सं० स्त्री० मौला नामक बेल जो वृक्षों पर चढ़कर उन्हें हानि पहुँचाती है।

मूसी : सं० स्त्री० मछली का एक भेद। (सा० ल० म० ३८)

मेंगनी : सं० स्त्री० पशुओं की विष्ठा जो छोटी-छोटी गोलियों के आकार की होती है। लेंड़ी। जैसे बकरी की मेंगनी, ऊँट की मेंगनी।

मेच : सं० पु० असम की एक पहाड़ी जाति।

मेज : सं० स्त्री० एक प्रकार की पहाड़ी घास जो हिमालय पर ५००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है और जिसे घोड़े और चौपाए बड़े चाव से खाते हैं।

मेना : सं० स्त्री० शारिका। यह बहुत अच्छा गाती है। इसकी कई जातियाँ हैं।

मेना : क्रि० स० पकवान आदि में मोयन देना, मोयन डालना। उ० लुचई पोइ पोइ घिउ मेई। पीछे छानि खाँड़ रस मेई। (जायसी)

मेल्हना : सं० स्त्री० एक प्रकार की नाव जिसका सिक्का खड़ा रहता है।

मेल्हना : क्रि० अ० १. क्लेश या पीड़ा से छटपटाना। २. काम करने में आनाकानी करना।

मेव : सं० पु० राजस्थान की ओर बसने वाली एक लुटेरी जाति। मेवाती। उ० छवि बन में दौरान लगे जबते तब दृग मेव। तबते कढ़े सनेहिया मन छन लैंकै छेव। (रसनिधि)

मेवही : सं० स्त्री० निर्गडी, संभालू।

मेवा : सं० पु० सूरत जिले की एक जाति। खजुरिया।

मेहरा : सं० पु० १. जुलाहों की चरखी का घेरा। २. खत्रियों की एक जाति। ३. खेत में बाँस गाड़कर बना हुआ वह स्थान जहाँ से किसान पशु पक्षियों को भगाता है।

मेहल : सं० पु० मझोले आकार का वह वृक्ष जिसकी पत्तियाँ ५-६ अंगुल लम्बी होती हैं और पुराने होने पर काली हो जाती हैं। इसकी लकड़ी की छड़ियाँ और हुक्के की निगालियाँ बनती हैं।

पत्तियाँ चारे के काम आती हैं।

मैंढी : सं० स्त्री० नदी की लहर जो नाव के रुख के खिलाफ होती है। (व्र० श०)

मैना : सं०पु० १. एक जाति जो राजपूताने में पाई जाती है और मीना कहलाती है। उ० कुच उतंग गिरिवर गह्यौ मैना मैन मवास। (विहारी) २. एक पालने योग्य पक्षी। इसकी वोली वड़ी प्यारी होती है।

मैर : सं०पु० सुनारों की एक जाति।

मोंगरा : सं० पु० १. एक पौधा जिस पर सुगंधित सफेद पुष्प लगते हैं। २. दाना, भुना अन्न। ३. मोंगरे का दाना वीच में रखकर—(झूठा० १।११) उ०कपड़े धोने का पिटना।

मोंगला : सं० पु० मध्यम श्रेणी का और साधारणतः वाजार में मिलने वाला केसर।

मोआर : सं०पु०पाले से मारी गई फसल। (व्र० श०)

मोई : सं० स्त्री० १. घी में साना हुआ आटा जो छींट की छपाई के लिए काला रंग वनाने में कमीस और धौ के फूलों के काढ़े में डाला जाता है। २. एक प्रकार की जड़ी जो मारवाड़ प्रदेश में होती है। ग्वालिया।

मोकराना : क्रि० स० छोड़ना। उ० हौं होइ वंदि पियहिं मोकरावों। (जा० ६०६।७)

मोका : सं० पु० एक वृक्ष जिसकी लकड़ी वहुत अच्छी होती है। खरादने पर इसकी लकड़ी पर रंग और रोगन वहुत अच्छा चमकता है। यह न तो कटती है न टेढ़ी होती है। गेठा।

मोगली : सं० स्त्री० एक वृक्ष जो गुजरात में पाया जाता है इससे एक प्रकार का कत्था वनाया जाता है और इसकी छाल चमड़ा सिझाने के काम आती है।

मोघिया : सं० स्त्री० वह मोटी मजवूत और अधिक चौड़ी नरिया जो खपरैली छाजन में वँडेरे पर मंगरा वाँधने में काम आती है।

मोट : सं० स्त्री० १. गठरी, मोटरी। उ० (क) जोग मोट सिर वोझ आनि, तुम कत धौं घोष उतारी। (सूर०) (ख) नट न सीस सावित भई लुटी सुखन के मोट। चुप करिए चारी करति खारी परी सरोट। (विहारी) (ग) नाम ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल। चोर विनु मोट पाय भयो न निहाल को। (तुलसी) २. चमड़े का वड़ा थैला जिससे खेत सींचने के लिए कुएँ से पानी निकाला जाता है। चरसा, पुर। उ० संगति छोड़ि करै असरारा। उवहे मोट नरक की धारा। (कवीर)

मोटरी : सं० स्त्री० गठरी। उ० (क) अमृत केरी मोटरी सिर से धरी उतारि। (कवीर) (ख) निज निज मरजाद मोटरी-सी डार दी। (तुलसी)

मोटा : वि० (स्त्री० मोटी) स्थूलकाय, भारी भरकम।

मोठस : वि० चुप, मौन। उ० मोठस कै रघुनाथ रहौ विनु मोठस कीन्हे ते जीवे को मैहै। (रघुराज)

मोड़ी : सं० स्त्री० १. घसीट या शीघ्र लिखने की लिपि। २. दक्षिण भारत की एक लिपि जिसमें प्रायः मराठी लिखी जाती है। ३. लड़की, मोड़िया। पु० मोड़ा—लड़का। (पश्चिम)

मोढ़ा : सं० पु० वैठने के लिए सिरकी से वनी कुर्सी। उ० मोढ़े भी दो-एक टूटे पड़े हैं। (प्रे० स० २।८४)

मोथरा : वि० जिसकी धार तेज न हो,

कुंद। उ० भयो अवहुँ नहिं मोथरो मोर उदंड कुठार। उपज्यो अमरष दून अब करों सकुल संहार। (रघुराज)

मोनाल : सं० पु० एक प्रकार का महोख पक्षी जो शिमले के आसपास बहुत पाया जाता है। इसे नीलमोर भी कहते हैं।

मोपला : सं० पु० मुसलमानों की एक जाति जो केरल व तमिलनाडु में पाई जाती है।

मोयन : सं० पु० माड़े हुए आटे में घी या चिकनाई देना ताकि उससे बनी वस्तु लसलसी और मुलायम हो।

मोयुम : सं० पु० एक लता जो असम, सिक्किम और भूटान में बहुतायत से होती है। इससे अत्यन्त चमकीला रंग तैयार किया जाता है जिससे कपड़े रंगे जाते हैं।

मोर : सं० स्त्री० सेना की अगली पंक्ति। (डिंगल)

मोरवा : सं० पु० वह रस्सी जो नाव की किलवारी में बाँधी जाती है और जिससे पतवार का काम लेते हैं।

मोरा : सं० पु० अकीक नामक रत्न का एक भेद जो प्रायः दक्षिण भारत में होता है। बाँवा घोड़ी।

मोरिया : सं० स्त्री० १. कोल्हू में कातर की दूसरी शाखा जो बाँस की होती है। २. रस्सी की गाँठ विशेष।

मोरी : सं० स्त्री० १. किसी वस्तु के निकलने का तंग द्वार। २. नाली, जिसमें से पानी विशेषतः गंदा और मैला बहता हो। पनाली। मुहा० मोरी छुटना—दस्त आना, पेट चलना। ३. क्षत्रियों की एक जाति जो चौहान जाति के अन्तर्गत है।

मोहरी : सं०स्त्री० एक प्रकार की मधु-मक्खी जो खानदेश में होती है।

मोहेली : सं०स्त्री० एक प्रकार की मछली जो हिमालय और सिंध की नदियों में प्राप्त होती है।

मौठ : सं०स्त्री० कुएँ पर पानी खींचने का एक उपकरण जिससे खेत की सिंचाई होती है। यह चमड़े का होता है। पुर, चरस।

मौसा : सं०पु० (स्त्री० मौसी) माता की बहन का पति। मौसी का पति।

यंद : सं०पु० स्वामी। (डिंगल)

यकोला : सं०पु० एक प्रकार का मझोला पेड़ जिसकी लकड़ी संदूक आदि बनाने के काम आती है। मसूरी।

यगूर : सं०पु० एक प्रकार का बहुत ऊँचा पेड़ जिसकी लकड़ी का रंग अन्दर से काला होता है। सेसी।

यडर : सं०पु० एक प्रकार का पक्षी।

यडू यडू : सं० पु० कबूतर की एक जाति।

यूनक : सं०पु० गरी की खली।

रंगन : सं०पु० एक प्रकार का मझोला वृक्ष। कोटा गंधल।

रंगवा : सं० पु० चौपायों का एक रोग।

रंगार : सं०पु० १. वैश्यों की एक जाति। २. राजपूतों की एक जाति जो मेवाड़ और मालवे में रहती है।

रंगोरेटा : सं०पु० एक जंगली वृक्ष जिसकी लकड़ी इमारती होती है।

रंडीछडणे : सं०पु० एक गाली, वेश्या छोड़ने वाले, दलाल। उ० हम इन रंडीछडणे मुसल्लों से सौदा क्यों लें। (झूठा० १।६१)

रई : सं०स्त्री० दही विलोने का उपकरण।

रखटी : सं० स्त्री० एक प्रकार की ईख जिसके रस से गुड़ बनाया जाता है। लखड़ा।

रखार : सं० पु० पाटा जिसका

महाराष्ट्र प्रदेश में जुता हुआ खेत बराबर करने के लिए होता है।

रगंड़ : सं०पु०हाथी का कपोल। (डिंगल)

रगड़ना : क्रि० स० १. किसी वस्तु को घिसना। २. परिश्रम करना। ३. संभोग करना।

रगड़ा : सं० पु० १. घर्षण। २. झगड़ा। ३. निरंतर होने वाला परिश्रम।

रगरी : वि० अनजान, बेसमझ। उ० तुम का जानों रस की बतियाँ, हो बालक रगरी। (प्रे० स० ४८६)

रगवाना : क्रि० स० चुप कराना।

रगा : सं० पु० मोर।

रगाना : क्रि०अ० चुप होना, शान्त होना। क्रि० स० चुप कराना, शान्त करना।

रगी : सं० स्त्री० एक प्रकार का मोटा अन्न जो मैसूर में होता है। रग्गा।

रग्गा : सं० पु० एक प्रकार का मोटा अन्न जो दक्षिण के पहाड़ों में होता है। रगी।

रग्गा : सं० स्त्री० अधिक वर्षा के उपरांत होने वाली धूप जो खेती के लिए लाभदायक होती है।

रगेद : सं० स्त्री० १. दौड़ाने या भगाने की क्रिया। २. पक्षियों आदि की संभोग प्रवृत्ति या अवसर।

रजिया : सं०स्त्री० १. अनाज नापने का पुराना मान जो प्राय: डेढ़ सेर का होता है। २. काठ का बरतन जो इस मान का होता है।

रढ़िया : सं० स्त्री० एक प्रकार की देशी कपास जो साधारण कोटि की होती है।

रतवा : सं० स्त्री० खर नामक घास जो घोड़ों के लिए उपयोगी समझी जाती है।

रतवाई : सं० स्त्री० पहले दिन कोल्हू चलने पर उसका रस लोगों को बाँटने की प्रथा।

रता : सं० स्त्री० भुकड़ी जो बरसात में अनेक वस्तुओं पर लग जाती है।

रतुआ : सं० स्त्री०एक घास जो बरसात के दिनों या ठंडी जगहों में अधिकता से होती है।

रतून : सं० पु० पेड़ी की ईख या गन्ना जो एक बार काट लेने पर फिर उसी जड़ से निकलता है।

रद्दा : सं० पु०बढ़ई का एक औजार जिससे वह लकड़ी को छीलकर चिकनी बनाता है। मुहा० रद्दा चढ़ाना—बढ़ा-चढ़ाकर बात कहना। उ० लाले दलाल ने एक रद्दा चढ़ाया। (वृंद० ४१)

रधार : सं० पु० ओढ़ने का दुहरा वस्त्र। दोहर।

रन : सं०पु० १. झील,ताल। २. समुद्र का छोटा खंड, जैसे कच्छ का रन।

रपटा : सं० पु० वह पुल जो पठारी नदियों पर बनाया जाता है। (ब्र० श०)

रनबरिया : सं० स्त्री० एक प्रकार की भेड़ जो नेपाल में पाई जाती है।

रनवासन : सं०स्त्री०एक प्रकार की कली। रमास।

रबाना : सं० पु० एक छोटा डफ जिसमें मजीरे लगे रहते हैं और जिसे प्राय: कहार बजाते हैं।

रबील : सं० स्त्री० एक प्रकार का पक्षी जो १५-१६ अंगुल लम्बा होता है। इसके डैने भूरे, सिर और छाती सफेद, चोंच काली और पैर खाकी रंग के होते हैं। यह झाड़ियों में घोंसला बनाता है।

रमनसोरा : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली। कँवल सोरा।

रमी : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास। कलुई।

रमैती : सं० स्त्री० १. किसानों की रीति

जिसमें कृषक आपस में अपने खेतों में अदला-बदली से काम करते हैं। पैठ, हूँड़।

रर : सं० स्त्री० वह दीवार जो यों ही बड़े-बड़े पत्थर रखकर उठाई गई हो और जिसके पत्थर चूने, गारे आदि से न जोड़े गए हों।

ररना : क्रि० अ० प्रा० रड-खिसकना। १. खिसकना। २. याचना करना। ३. रोना। उ० ररि दूबरि भइ टेक बिहूनी। (जायसी)

रवक : सं० पु० रेंड वृक्ष।

रवाँस : सं० पु० एक प्रकार का बोड़ा। लोबिया।

रवाबिया : सं० पु० लाल बलुआ पत्थर।

रवासन : सं० पु० एक प्रकार का वृक्ष जिसके बीज और पत्ते औषधि के काम आते हैं।

रसौती : सं० स्त्री० धान की वह बोवाई जिसमें खेत जोतकर वर्षा होने से पहले ही बीज डाल दिया जाता है।

रहचट्ट : सं० स्त्री० १. चहचहाहट (चिड़ियों की)। २. मनुष्यों की चहल-पहल।

रहचटना : क्रि० अ० चहचहाना (पक्षियों का)।

रहाऊ : सं०स्त्री० गीत में का पहला पद। टेक। स्थायी। (पंजाब)

रहिला : सं०पु० चना। उ०रहिमन रहिला की भली जो परसे मन लाय। परसत मन मैला करै ऊ मैदा बहि जाय। (रहीम)

रहेठा : सं०पु० १. अरहर का सूखा तना। २. चरखा।

राँगड़ी : सं० पु० एक प्रकार का चावल जो पंजाब में होता है।

राँटा : सं० पु० टिटहरी चिड़िया। उ० झिल्ली ते रसीली जीली राँटिहू की रट लीली, स्यार तें सवाई भूतभावनी ते आगरी। (केशव)

राँटा : सं० स्त्री० चोरों की सांकेतिक भाषा।

राँड़ : सं० स्त्री० विधवा। उ० मैंने देखा एक लुगाई इधर हाथ पीले हुए उधर राँड़ हो गई। (क०पु० २९४)

राँढ़ : सं० पु० १. एक प्रकार का चावल जो प्राय: बंगाल में होता है। २. एक देश।

राँपी : सं०स्त्री०मोचियों का एक औजार।

राँभास : सं०स्त्री०एक प्रकार की मछली। उ० रसोई से राँभास और शेवड़ी मछलियाँ लाकर विट्ठल के सामने रख दीं। (सा० ल० म० १२)

राकस गद्दा : सं० पु० कदंब नामक बेल। इसकी जड़खाने से दस्त और कै होती है।

राकस पत्ता : सं० पु० जंगली कुँवार। काटल, बबूर।

राड़ा : सं० स्त्री० सरसों।

राढा : सं० स्त्री० एक प्रकार की कपास।

राढी : सं० स्त्री० एक मोटी घास।

राव : सं० स्त्री० १. नाव में वह बड़ी लकड़ी जो उसकी पेंदी में लम्बाई के बल एक सिरे तक होती है। २. गुड़ से बनी लसेदार वस्तु।

रायता : सं० पु० छाछ से निर्मित एक खाद्य पदार्थ।

राली : सं० स्त्री० एक प्रकार का बाजरा जिसके दाने बहुत छोटे होते हैं।

राव : सं० पु० छोटे आकार का एक पेड़ जिसकी लकड़ी ललाई लिए चिकनी और मजबूत होती है। प्राय: इसकी छड़ियाँ बनती हैं।

महाराष्ट्र प्रदेश में जुता हुआ खेत बराबर करने के लिए होता है।

रगंड़ : सं० पु० हाथी का कपोल। (डिंगल)

रगड़ना : क्रि० स० १. किसी वस्तु को घिसना। २. परिश्रम करना। ३. संभोग करना।

रगड़ा : सं० पु० १. घर्षण। २. झगड़ा। ३. निरंतर होने वाला परिश्रम।

रगरी : वि० अनजान, वेसमझ। उ० तुम का जानों रस की बतियाँ, हो बालक रगरी। (प्रे० स० ४८६)

रगवाना : क्रि० स० चुप कराना।

रगा : सं० पु० मोर।

रगाना : क्रि० अ० चुप होना, शान्त होना। क्रि० स० चुप कराना, शान्त करना।

रगी : सं० स्त्री० एक प्रकार का मोटा अन्न जो मैसूर में होता है। रग्गा।

रग्गा : सं० पु० एक प्रकार का मोटा अन्न जो दक्षिण के पहाड़ों में होता है। रगी।

राग़ा : सं० स्त्री० अधिक वर्षा के उपरांत होने वाली धूप जो खेती के लिए लाभदायक होती है।

रगेद : सं० स्त्री० १. दौड़ाने या भगाने की क्रिया। २. पक्षियों आदि की संभोग प्रवृत्ति या अवसर।

रजिया : सं० स्त्री० १. अनाज नापने का पुराना मान जो प्राय: डेढ़ सेर का होता है। २. काठ का बरतन जो इस मान का होता है।

रढ़िया : सं० स्त्री० एक प्रकार की देशी कपास जो साधारण कोटि की होती है।

रतवा : सं० स्त्री० खर नामक घास जो घोड़ों के लिए उपयोगी समझी जाती है।

रतवाई : सं० स्त्री० पहले दिन कोल्हू चलने पर उसका रस लोगों को बाँटने की प्रथा।

रता : सं० स्त्री० भुकड़ी जो बरसात में अनेक वस्तुओं पर लग जाती है।

रतुआ : सं० स्त्री० एक घास जो बरसात के दिनों या ठंडी जगहों में अधिकता से होती है।

रतून : सं० पु० पेड़ी की ईख या गन्ना जो एक बार काट लेने पर फिर उसी जड़ से निकलता है।

रद्दा : सं० पु० बढ़ई का एक औजार जिससे वह लकड़ी को छीलकर चिकनी बनाता है। मुहा० रद्दा चढ़ाना—बढ़ा-चढ़ाकर बात कहना। उ० लाले दलाल ने एक रद्दा चढ़ाया। (वूँद० ४१)

रधार : सं० पु० ओढ़ने का दुहरा वस्त्र। दोहर।

रन : सं० पु० १. झील, ताल। २. समुद्र का छोटा खंड, जैसे कच्छ का रन।

रपटा : सं० पु० वह पुल जो पठारी नदियों पर बनाया जाता है। (व्र० श०)

रनवरिया : सं० स्त्री० एक प्रकार की भेड़ जो नेपाल में पाई जाती है।

रनवासन : सं० स्त्री० एक प्रकार की कली। रमास।

रवाना : सं० पु० एक छोटा डफ जिसमें मजीरे लगे रहते हैं और जिसे प्राय: कहार बजाते हैं।

रवील : सं० स्त्री० एक प्रकार का पक्षी जो १५-१६ अंगुल लम्बा होता है। इसके डैने भूरे, सिर और छाती सफेद, चोंच काली और पैर खाकी रंग के होते हैं। यह झाड़ियों में घोंसला बनाता है।

रमनसोरा : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली। कँवल सोरा।

रमी : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास। कलुई।

रमैती : सं० स्त्री० १. किसानों की रीति

जिसमें कृपक आपस में अपने खेतों में अदला-बदली से काम करते हैं। पैंठ, हूँड़।

रर : सं० स्त्री० वह दीवार जो यों ही बड़े-बड़े पत्थर रखकर उठाई गई हो और जिसके पत्थर चूने, गारे आदि से न जोड़े गए हों।

ररना : क्रि० अ० प्रा० रड-खिसकना। १. खिसकना। २. याचना करना। ३. रोना। उ० ररि दूबरि भइ टेक विहूनी। (जायसी)

रवक : सं० पु० रेंड वृक्ष।

रवाँस : सं० पु० एक प्रकार का बोड़ा। लोबिया।

रवाविया : सं० पु० लाल बलुआ पत्थर।

रवासन : सं० पु० एक प्रकार का वृक्ष जिसके बीज और पत्ते औषधि के काम आते हैं।

रसौती : सं० स्त्री० धान की वह बोवाई जिसमें खेत जोतकर वर्षा होने से पहले ही बीज डाल दिया जाता है।

रहचट्ट : सं० स्त्री० १. चहचहाहट (चिड़ियों की)। २. मनुष्यों की चहल-पहल।

रहचटना : क्रि० अ० चहचहाना (पक्षियों का)।

रहाऊ : सं०स्त्री० गीत में का पहला पद। टेक। स्थायी। (पंजाब)

रहिला : सं०पु० चना। उ०रहिमन रहिला की भली जो परसे मन लाय। परसत मन मैला करै ऊ मैदा बहि जाय। (रहीम)

रहेठा : सं०पु० १. अरहर का सूखा तना। २. चरखा।

राँगड़ी : सं० पु० एक प्रकार का चावल जो पंजाब में होता है।

राँटा : सं० पु० टिटहरी चिड़िया। उ० झिल्ली ते रसीली जीली राँटहू की रट लीली, स्यार तें सवाई भूतभावनी ते आगरी। (केशव)

राँटा : सं० स्त्री० चोरों की सांकेतिक भाषा।

राँड़ : सं० स्त्री० विधवा। उ० मैंने देखा एक लुगाई इधर हाथ पीले हुए उधर राँड़ हो गई। (क०पु० २९४)

राँढ़ : सं० पु० १. एक प्रकार का चावल जो प्राय: बंगाल में होता है। २. एक देश।

राँपी : सं०स्त्री०मोचियों का एक औजार।

राँभास : सं०स्त्री०एक प्रकार की मछली। उ० रसोई से राँभास और शेवड़ी मछलियाँ लाकर विट्ठल के सामने रख दीं। (सा० ल० म० १२)

राकस गद्दा : सं० पु० कदंब नामक बेल। इसकी जड़ खाने से दस्त और कै होती है।

राकस पत्ता : सं० पु० जंगली कुँवार। काटल, बबूर।

राड़ा : सं० स्त्री० सरसों।

राढा : सं० स्त्री० एक प्रकार की कपास।

राढी : सं० स्त्री० एक मोटी घास।

राब : सं० स्त्री० १. नाव में वह बड़ी लकड़ी जो उसकी पेंदी में लम्बाई के बल एक सिरे तक होती है। २. गुड़ से बनी लसेदार वस्तु।

रायता : सं० पु० छाछ से निर्मित एक खाद्य पदार्थ।

राली : सं० स्त्री० एक प्रकार का बाजरा जिसके दाने बहुत छोटे होते हैं।

राव : सं० पु० छोटे आकार का एक पेड़ जिसकी लकड़ी लनाई लिए चिकनी और मजबूत होती है। प्राय: इनकी छड़ियाँ बनती हैं।

का कुंदा जिस पर रखकर गन्ने के टुकड़े काटते हैं।

रोकड़िया : सं० पु० रोकड़ लिखने वाला, हिसाव-कितावी। उ० रोकड़िया भी वहीं वैठा था। (टे० मे० रा० २१२)

रोजी : सं० स्त्री० गुजरात में होने वाली एक प्रकार की कपास जिसके फूल पीले होते हैं।

रोझ : सं० स्त्री० नीलगाय, गवय। उ० हरिन रोझ लगुना वसे। (जा० ५४१।२)

रोट : सं० पु० १. गेहूँ के आटे की बहुत मोटी रोटी। लिट्टी। ऐसी रोटी गरीब खाते हैं या हाथियों को दी जाती है। उ० विसरै भुगुति होहु तुम्ह रोटा। (जा० २२०।५) २. मीठी रोटी या पूआ जो हनुमान आदि देवताओं को चढ़ाया जाता है।

रोटका : सं० पु० वाजरा।

रोटी : सं० पु० गुँधे हुए आटे की आँच पर सेकी हुई लोई या टिकिया जो नित्य के खाने में काम आती है। चपाती, फुलका। उ० (क) रोटी लूगा नीके राखै। (तुलसी) (ख) घी चुपरी रोटिहि अनुरागी। (भा० २।२५४)

रोटीफल : सं० पु० १. एक फल जो खाने में वहुत अच्छा होता है। २. इस फल का पेड़ मझोले आकार का होता है।

रोठा : सं० पु० १. वाजरे की एक जाति। २. रोड़ा, गुठली। उ० कंवल सौ कवल सुपारी रोठा। (जा० ४३७।१)

रोडफाड़ : सं० पु० एक सर्प जो हल्दी जैसा पीला होता है और जिसकी लम्बाई डेढ़ हाथ होती है। (व्र० श०)

रोड़ा : सं० पु० कंकड़, पत्थर। उ० गाड़ी में रोड़ा अटकाते हैं। (प्र० ग्र० २८२)

रोड़ी : सं० स्त्री० कंकड़ी, ईंट या पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े। उ० उस पर ईंट की रोड़ियाँ डाली गईं। (वावा० ५८)

रोद : सं० पु० मुसलमान। (डिंगल)

रोप : सं० पु० हल में प्रयुक्त होने वाली एक लकड़ी जो हरिस के छोर पर जंघे के पास लगी रहती है।

रोल : सं० पु० रुखानी की तरह का एक औजार।

रोलना : क्रि० स० १. उँगलियों से हिलाना डुलाना। २. लेप लगाना। ३. वस्तु को छितराना।

रोला : सं० पु० जूठे वरतन माँजने का काम, चौका वरतन करने का काम।

रोह : सं० पु० नीलगाय। उ० रोह मृगा संशय वन हाँके पारथ वाना मैले। (कवीर)

रोहज : सं० पु० नेत्र। (डिंगल)

रोहन : सं० पु० एक प्रकार का पेड़ जिसे सूहन और सूमी कहते हैं।

रोही : सं० पु० एक हथियार। उ० तेगा असील रोही। सिप्पर के दो सिरोही। (सूदन)

रोहुन : सं० पु० रोहन नामक पेड़।

रौंग : सं० पु० सफेद कीकर।

रौं : सं० पु० एक प्रकार का पेड़।

रौखुर : सं० स्त्री० वह भूमि जो वाढ़ की वालू पड़ने से खराव हो गई हो।

रौलि : सं० स्त्री० धौल, चपत, झापड़, तमाचा। उ० वाँका गढ़ वाँका मता वाँकी गढ़ की पौलि। काढि कवीरा नीकसा जम सिर घाली रौलि। (कवीर)

रौसली : सं० स्त्री० एक प्रकार की चिकनी उपजाऊ मिट्टी। डाकर।

रौहाल : सं० स्त्री० १. घोड़े की एक चाल। २. घोड़े की एक जाति। उ० यदपि तेज रौहाल वर लगी न पलकौ वार। उत

ग्वैंडो घर को भयौ पैंडो कोस हजार।
(विहारी)

लंकाल : सं० पु० सिंह, शेर। (डिंगल)

लंगर : वि० १. नटखट, ढीठ। २. भोजन देने का स्थान, गुरुद्वारे में दिया जाने वाला भोजन। उ० लोक रीति लायक न लंगर लवारू है। (तुलसी)

लंगरि : वि० स्त्री० ढीठ। उ० गनिति किए लंगरि झकराउ। (तुलसी)

लँगड़ा : सं० पु० एक प्रकार का बहुत बढ़िया कलमी आम जो प्रायः बनारस में होता है।

लँगड़ी : वि० बली, जोरावर, बलवान।
(डिंगल)

लंगी : सं० स्त्री० चोट, आघात, प्रभाव, फाँस, टँगड़ी, व्याघात, अवरोध। उ० लुत्तो ने बी० ए० बी०टी० हेडमास्टर को भी राजनीतिक लंगी लगाई।
(परती० १७२)

लँगोचा : सं० पु० जानवर की आँत जो मसालेदार कीमे से भरकर और तलकर खाई जाती है। कुलमा, गुलमा।

लहँगा : सं० पु० स्त्रियों के पहनने का एक अधोवस्त्र। उ० किंकिनि पहिराय झवा लहँगा पहिरायो। (भा० २।४६२)

लकड़ी : सं० स्त्री० वह काष्ठ जो जलाने तथा मनुष्य के बहुत काम आता है। स० लगुड, लकुट, लकड़ी।

लकाटी : सं०स्त्री० बिल्ली की एक प्रजाति जिसके नर के अंडकोश में से एक प्रकार का मुश्क निकलता है।

लकोटा : सं० पु० एक प्रकार का पहाड़ी बकरा जिसके बालों से शाल-दुशाले बनाए जाते हैं।

लखर : सं० पु० काकड़ा सिंगी का पेड़। अरकोल।

लखेरना : क्रि० स० भगाना। खदेड़ना। जैसे, मैंने उसे लखेर दिया।

लगना : सं० पु० एक जंगली मृग। उ० हरिन रोझ लगना वन बसे। चीतर गोइन झाँख और ससे। (जायसी)

लगर : सं० पु० चील की तरह का एक शिकारी पक्षी। लग्घड़। उ० नैन लगर घूँघट खुलहि पवन खोल जब लेत।
(रसनिधि)

लग्घड़ : सं० पु० १. बाज। २. एक प्रकार का चीता जो सामान्य चीते से बड़ा होता है। इसे शिकार करना सिखाया जाता है। लकड़बग्घा।

लचक : सं०स्त्री० १. लचकने की क्रिया या भाव। लचन, झुकाव। उ० आपन तजि जे पराए लचा—(जा० ५९४।२)। २. गुण जिसके रहने से कोई वस्तु दबती या झुकती हो। ३. एक प्रकार की नाव जो ६०-७० हाथ लंबी होती है। इसे बहुत से लोग मिलकर खेते हैं।

लचर : वि० कमजोर, ढीला, बेदम, निस्तेज। उ० मन जानता था कि यह तर्क लचर है। (बूंद० ३७४)

लचारी : सं० स्त्री० १. वह कर जो कोई व्यक्ति अपने से बड़े को देता है। भेंट, नजर। उ० विमल मुक्तमाल लसत उच्च कुचन पर मदन महादेव मनो दई है लचारी। (सूर) २. एक प्रकार का गीत।

लचुई : सं० स्त्री० मैदे की बनी हुई पतली और मुलायम पूरी। लुच्ची। उ० लुचई पूरि सोहारी पूरी। (जा० २८४।३)

लच्छा : सं० पु० १. कुछ विशेष प्रकार से लगाए हुए बहुत से तारों या डोरों आदि का समूह। जैसे, रेशम का लच्छा, सूत का लच्छा। २. किसी चीज के सूत की तरह लंबे और पतले कटे हुए टुकड़े, जैसे, प्याज

का लच्छा। ३. इस आकार की किसी तरह बनाई गई कोई वस्तु, जैसे, रबड़ी की लच्छी। ४. मैदे की एक प्रकार की मिठाई जो प्राय: सूत की तरह और देखने में उलझी हुई डोर के समान होती है। ५ एक प्रकार का गहना जो तारों की जंजीरों का बना होता है। यह हाथों तथा पैरों में पहनने का होता है। ६.एक प्रकार का घटिया केसर जिसमें थोड़ा-सा बढ़िया केसर मिलाकर बनाया जाता है।

लच्छा साख : सं० स्त्री० एक प्रकार की संकर रागिनी।

लछारा : वि० लंबा, बड़ा।

लच्छी : वि० एक प्रकार का घोड़ा। उ० कोइ कबुली अंबोज कोइ कच्छी। बोत मेमना मुंजी लच्छी। (विश्राम)

लटंग : सं० पु० एक प्रकार का बाँस जो बरमा में होता है।

लट : सं० पु० १. एक प्रकार का बेंत जो असम की ओर होता है। २. एक प्रकार के सूत के से महीन कीड़े जो मीठा खाने से मनुष्य की आँतों में पड़ जाते हैं और मल के साथ निकलते हैं। चनूना।

लटक हर : सं० पु० तेली।

लटका : सं० पु० दाँव, पुछल्ला, मार, लँगड़ी, फंदा। उ० फिलासफी के एक लटके का इन्तजार कर रहे हो। (राग दर० १००)

लटकू : सं० पु०एक प्रकार का पेड़ जिसकी छाल को उबालने से रंग निकलता है।

लटूरा : सं० पु० कुप्पा।

लट्टू : सं० पु० गोल गेंदनुमा वस्तु जिससे बच्चे खेलते हैं। २. बल्ब । लट्टू होना—फिदा होना, मरना। उ०बिजली के तारों से लटका लट्टू चमक उठा। (झूठा० २।१३४)

लड्डू : सं० पु० मोदक (लेड्डुक्क दे०ना०) उ० लड्डू देखत मति ललचाई है। (भा० २।५५१)

लड़का : सं०पु० बालक (स्त्री० लड़की)। लड़के भैंसे से काफी दूर आ गए थे। (अलग० बैं० २४)

लड़खड़ाना : क्रि० अ० गिरना, फिसलना, उलझना। उ० लड़खड़ाती आवाज से उन्होंने कहा। (टे० मे० रा० १५८)

लढ़िया : सं० स्त्री० छोटी बैलों की गाड़ी, छकड़ा। उ० रात को अपनी लढ़िया में छिपाकर स्टेशन पहुँचा गए। (झूठा० १।४१६)

लतड़ी : सं० स्त्री० केसारी नामक अन्न।

लतरा : सं० पु० एक प्रकार का मोटा अन्न इसकी फलियों की तरकारी भी बनती है। बरबरा, रवेंछ।

लतरी : सं०स्त्री० १. एक प्रकार की घास या पौधा जो खेतों में मटर के साथ बोया जाता है और जिसमें चिपटी-चिपटी फलियाँ लगती हैं। इसके दानों से दाल निकलती है जिसे गरीब खाते हैं। मोट, खेसारी। २. एक प्रकार की हलकी जूती जो केवल तले के रूप में होती है और अँगूठे में फँसाकर पहनी जाती है।

लथपथ : क्रि०वि०तरल पदार्थ जैसे, पसीने आदि से सना हुआ। उ० ब्रह्मदत्त पसीने से लथपथ था। (टे०मे०रा० १८२)

लथाड़ : सं० स्त्री० डाँट, डपट। उ०बाहर वाले क्यों न लथाड़ें। (प्र० ग्र० ४)

लथाड़ना : क्रि० स० १. डाँटना। २. परेशान करना।

लना : सं० पु० १. एक पेड़ जिससे पंजाब में सज्जी निकाली जाती है। २. शोरा।

लनी : सं० स्त्री० १. पान की बारी में की क्यारी। २. पंजाब में होने वाला एक पेड़

जिससे सज्जी निकाली जाती है। लना।

लप : सं० पु० १. एक प्रकार की घास। २. दोनों हथेलियों को मिलाकर बनाया हुआ संपुट जिसमें कोई वस्तु भरी जा सके। अंजली जैसे, लप भर आटा। ३. अंजली भर वस्तु जैसे, लप भर निकाल कर देना।

लपचा : सं० पु० सिक्किम के पहाड़ों की एक जंगली जाति।

लपहा : सं० पु० पान का एक रोग। पान की गेरूई।

लप्पड़ : सं० पु० थप्पड़।

लप्पा : सं०पु० १. छत में लगी वह लकड़ी जिसमे रेशमी कपड़े बुनने वाले जुलाहों के करघे की रस्सियाँ बँधी रहती हैं। २. एक प्रकार का गोटा। ३. एक प्रकार की कुदकं। जैसे, गेंद पाँच लप्पों में तुम्हारे पास आ गई।

लबगुरानया : सं० स्त्री० गहरे बैंगनी रंग के रतालू की लता जो भारत में कई जगह बोई जाती है। इसकी जड़ खाई जाती है।

लबझना : क्रि० अ० उलझना, फँसना। उ० लबझी अंग तरंग बहु, सरिता रंग अनूप। नव पंकडा अंकुर जहाँ धरत प्रवाल स्वरूप। (गुमान)

लबड़ा : सं० पु० (स्त्री० लबड़ी) मोटा, बेडौल डंडा या मिट्टी।

लबनी : सं०स्त्री० १. मिट्टी की लंबी हाँड़ी या मटकी जो ताड़ी के लिए ताड़ के पेड़ों में बाँध दी जाती है। २. काठ की लंबी डंडी लगा हुआ कटोरा जिससे कड़ाह में से शीरा निकालते हैं। डोई, डोबा।

लबाड़िया : सं० पु० लावारिस, आवारा, वह जो मुँहफट्ट हो या बात पचा न पाता हो। उ० खन्ना मास्टर लबाड़िया है। (राग दर० १९०)

लबी : सं० स्त्री० ईख का रस जो पकाकर खूब गाढ़ा और दानेदार कर दिया जाता है। राब।

लबेचू : सं०पु० जैन वैश्यों की एक जाति। लमेचू।

लबेदा : सं० पु० (स्त्री० लबेदी) मोटा लट्ठ, लाठी।

लबेरा : सं० पु० सलोड़े का पेड़ या फल।

लमई : सं०स्त्री० मधुमक्खी का एक भेद। कटपाल।

लमगचा : सं० पु० इकतारा, ठठवा।

लमचा : सं० पु० एक प्रकार की बरसाती घास जो काली चिकनी मिट्टी की जमीन मे बहुत पाई जाती है।

लमटींग : सं० पु० एक प्रकार का जंगली जानवर।

लमता : सं०पु० वह बाट जो सभी धाराओं को पार करा दे। (दिनमान)

लमधी : सं० पु० समधी का बाप। उ० समधी के घर लमधी आयो, आयो बहु को भाई (कबीर)। शायद समधी-लमधी का प्रयोग साला-वाला, लोटा-वोटा की तरह होता रहा है।

लरिका : सं० पु० लड़का। उ० या ब्रज में लरिका घने होहि अन्याई। (सूर०)

लल्हरा : सं० पु० एक पौधा या घास जिसका साग खाया जाता है।

लल्लोपत्तो : वि० चापलूसी। उ० लल्लोपत्तो और जाहिरदारी उसे आती न थी। (सौ अजान० १६)

लवाई : वि० हाल की ब्याई हुई गाय। वह गाय जिसका बच्चा अभी बहुत ही छोटा हो। उ० कौसल्यादि मातु सब धाईं। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाईं। (तुलसी)

लवेरा : सं० पु० बछेड़ा, बछड़ा, घोड़ी का बछड़ा। उ०जैसे, लवेरों के मुँह पर मुश्कें कसे हों। (झूठा० १।४५३)

लसड़-फसड़ : सं० पु० वेकाम का काम। अंटसंट, घालमेल। उ० भाई का परसाद पहनकर करो लसड़-फसड़ और पुरवो मनकामना। (अलग० वै० १६)

लसम : वि० जो खरा और चोखा न हो। दागी। दुषित। खोटा। जैसे, लसम-सोना। उ० और भूप परपि के ताइके सुलखि लेत लसम को खसम तुही पै दसरत्थ के। (तुलसी)

लस्टम पस्टम : वि० व्यर्थ, वेकार, अंट संट।

लस्सी : सं० स्त्री० छाछ, दही और पानी मिला पदार्थ जिसे लोग वड़े शौक से पीते हैं। उ० संतरे का रस, लस्सी, पेड़ों की लस्सी या शिकंजवीन।

(झूठा० २।४६७)

लहका : सं० पु० पतला, गोटा, लचका।

लहटना : क्रि० अ० परचना।

लहन : सं० स्त्री० कंजा नामक कँटीली झाड़ी।

लहल : सं० पु० एक प्रकार का राग जो दीपक राग का पुत्र कहा जाता है।

लहलहाना : क्रि० स० लहराना। उ० सब्जी की लहलहाहट वागात की वहारें। (वजीर)

लहली : सं० स्त्री० वह दलदल जो किसी जलाशय के सूख जाने पर हो जाता है।

लहसुवा : सं० पु० एक प्रकार का साग।

लहाछेह : सं० पु० १. नृत्य की क्रियाओं में से चौथी क्रिया। नाच की एक गति। २. नाचने में तेजी और झपट। उ० गोपिन संग निस सरद की रमत रसिक रसरास। लहाछेह अति गतिन की सवन लखे सब पास। (बिहारी) ३. तेजी, निरन्तर प्रवाहमान।

लहासन : सं०स्त्री० वह काली भेड़ जिसकी कनपटी से माथे तक का भाग लाल होता है। (गड़रिया)

लहेर : सं० पु० ब्राह्मण। (सुनार)

लहेरा : सं० पु० छोटे डील का एक सदा-बहार पेड़ जिसके हीर की लकड़ी बहुत चिकनी साफ और मजवूत होती है।

लहेसना : क्रि० स० १. साँचे पल्लों को गामे पर बैठाना। (वरतन वनाने वाला) २. लगाना, जैसे दीवाल मिट्टी से लहेस दो।

लाँच : सं० स्त्री० रिश्वत, घूस।

लाँची : सं० पु० एक प्रकार का धान।

लाटा : सं० पु० १. भुने हुए महुओं और तिलों को कूटकर वनाए हुए लड्डू। २. भुना हुआ महुआ।

लाठी : सं० स्त्री० यष्टिका, डंडा, दण्ड।

लाडू : सं० पु० लड्डू। मोदक। उ० हिया थार कुच कंचन लाडू। (लेडुअ दे० ना० ७।२४)।

लाडू : वि० प्यार। उ० मान न कर थोरा कर लाडू। (जा० ३०।१७) लड्डिय (भवि)।

लाड़ : वि० प्यार, जैसे, देवदास ने अपनी लड़की को वड़े लाड़ प्यार से विदा किया

लाड़लड़ा : सं० पु० एक प्रकार का साँप जो प्राय: वृक्षों पर रहा करता है।

लाड़ला : सं० पु० प्यारा, लढ़ता। जैसे, अपनी माँ के सभी लाड़ले हैं।

लाढ़िया : सं० पु० वह दलाल जो दूकान-दार से मिला रहता है और ग्राहकों को धोखा देकर उसका माल विकवाता है।

लात : सं० स्त्री० १. पैर, पाँव, पड़। उ० तेहि अंगद कहुँ लात उठाई। गहि पद

पटक्यो भूमि भँवाई। (तुलसी) २. पैर से किया हुआ आघात। पद प्रहार। उ० लातन्हि हति हति चले पराई। (तुलसी) मु० लात खाना — मार सहना, लात मारना—तुच्छ समझना। जैसे, तुमने जान-बूझकर रोजी को लात मारी है।

लातरना : क्रि० अ० १. चलते-चलते थक जाना। २. पथ भ्रष्ट होना। उ० थिर नृप हिन्दुस्थान, लातरना मग लोभ लग। (दुरसाजी)

लाथ : सं० पु० बहाना, हीला।

लाद : सं० स्त्री० १. लादने का भाव। २ मिट्टी का वह ढोंका जो पानी निकालने की ढेंकी के दूसरे सिरे पर लगा रहता है।

लादना : क्रि० स० १. किसी वस्तु का भार रखना। २. अनुचित दायित्व देना।

लानंग : सं० पु० एक प्रकार का अंगूर जो कुमाउँ और देहरादून में अधिकता से होता है। इसके अर्क से एक प्रकार की शराब बनाई जाती है।

लामय : सं० पु० एक प्रकार की घास जो प्राय: ऊसर भूमि में होती है।

लामी : सं० पु० एक प्रकार का फल जो प्राय: डेढ़ वालिश्त लंबा होता है इसकी तरकारी बनाई जाती है।

लालन : सं० स्त्री० चिरोंजी, पियाल।

लालमरेंडा : सं० पु० एक प्रकार का छोटा झाड़ जो भारत के गर्म प्रान्तों में होता है। इसके बीजों से निकलने वाला तेल गठिया रोग के काम आता है। उँदर बीबी।

लालमी : सं० पु० खरबूजा।

लाले : वि० कमी, अभाव। उ० आज तो रोटियों के लाले पड़ जाते हैं। (प्र० ग्र० ४०७)

लाव : सं० स्त्री० १. वह मोटा रस्सा जिससे चरसा खींचते या इसी प्रकार का और कोई काम करते हैं। रस्सा, लाम। २. रस्सी, डोरी। उ० फिरि फिरि चितवत ही रहत टुटी लाज की लाव। अंग अंग छवि झौर में भयौ भौंर की नाव। (बिहारी) ३. उतनी भूमि जितनी एक दिन में एक चरसे से सींची जा सके।

लावक : सं० पु० १. चावल की जाड़े की फसल। २. चरसा। ३. मोट खींचने में बैलों के एक बार आने और जाने का समय।

लावनी : सं० स्त्री० १. गाने का एक छंद। २. इस छंद का एक प्रकार जो प्राय: चंग बजाकर गाया जाता है। ख्याल। ३. इस प्रकार का कोई गीत।

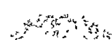
लास : सं० पु० उस छड़ के दोनों कोने जिसे पाल बाँधने के लिए मस्तूल में लटकाते हैं। (लश०)

लासी : सं० स्त्री० जूँ की तरह का एक प्रकार का काला कीड़ा जो गेहूँ के पेड़ों में लगकर उन्हें निकम्मा बना देता है।

लाह : सं० पु० चमक, आभा, कांति, दीप्ति। उ० सीस फूल बेनी बेंदी बेसरि और बीरनि में हीरान की लाह में हंसनि छवि छहरी। (देव)

लाह छेह : सं० पु० निरन्तर होने वाला शोरगुल। उ० तूफान मेल छूटी। लाह छेह मच गई। (अलग० बैं० ७४)

लाहन : सं० पु० १. वह महुआ जो मद्य खींचने के उपरांत देग में बच रहता है। यह प्राय: पशुओं को खिलाया जाता है। २. जूसी और महुए को मिलाकर उठाया हुआ खमीर। ३. किसी प्रकार के पदार्थ का खमीर। ४. वे पेय औषधियाँ जो गाय को बच्चा होने पर दी जाती हैं। ५. अनाज ढोने की मजदूरी।



लाही : सं० स्त्री० १. सरसों। २. काली सरसों। ३. तीसरी बार का साफ किया हुआ शोरा।

लिकिन : सं० पु० मटियाले रंग की एक बड़ी चिड़िया जिसकी टाँगें हाथ-हाथ भर की और गरदन एक बालिश्त की होती है।

लिगदी : सं०स्त्री० कमजोर छोटी घोड़ी।

लिचेन : सं० पु० एक प्रकार की घास जो पानी में होती है।

लिट्ट : सं० पु० (स्त्री० लिट्टी) मोटी रोटी जो बिना तवे के आग ही से सेंकी जाती है। अंगाकड़ी। बाटी। उ० लात से माँड़कर आटा सानकर लिट्ट बनता है। (अलग० बै० ६१)

लिठोर : सं० पु० एक प्रकार का नमकीन पकवान।

लिडार : सं० पु० शृगाल, गीदड़।

लिडार : वि० डरपोक, कायर, बुजदिल। उ० विशुद्ध होहु शुद्ध को विरुद्ध बात न कहौ। न बाँचिहौ घरै घुसे लिडार होन नाचहौं।

लिडौरी : सं० स्त्री० अनाज के वे दाने जो पीटने के पीछे बाल में लगे रह जाते हैं। मुंडारी, दोबरी, चित्ती। (यह शब्द रबी की फसल के लिए व्यवहृत होता है।)

लिपड़ा : सं०पु०लुगड़ा, कपड़ा (कलंदर)। कलंदर भालू नचाकर जब कपड़ा माँगते हैं तब 'लिपड़ा लिपड़ा' कहते हैं।

लिरिया : सं० पु० व्याघ्र से मिलता-जुलता जानवर जो बकरियों को ले जाता है।

लिलाही : सं० पु० हाथ का बटा हुआ देशी सूत।

लिहाड़ा : वि० १. नीच, वाहियात, गिरा हुआ। २. खराब, निकम्मा।

लिहाड़ी : सं० स्त्री० उपहास, विडंबना, निंदा। उ० जाके कुल में भक्त मम नाम लिहाड़ी होय। एक एक शत आपनी पीढ़ी तारत सोय। मुहा० लिहाड़ी लेना—उपहास करना, निंदा करना।

लीक : सं० स्त्री० मटियाले रंग की एक चिड़िया जो बत्तख से कुछ छोटी होती है। २. जूं से छोटा कीड़ा जो बालों तथा कपड़ों में पड़ जाता है। लीख।

लीचड़ : वि० १. सुस्त, काहिल, निकम्मा। २.जल्दी न छोड़ने वाला, चिपटने वाला। उ० बाहुक सुबाहु नीच लीचर मरीच। मिलि मुँह पीर केतु जा कुरोग जातुधान हैं। (तुलसी) ३. जिसका लेनदेन ठीक न हो।

लीझा : वि० नीरस, निस्सार, सीठी।

लीझी : सं० स्त्री० १. देह में मले हुए उबटन के साथ छूटी हुई मैल की बत्ती। २. वह गूदा या रेशा जिसका रस चूस या निचोड़ लिया गया हो। सीठी।

लीझी : वि० १. नीरस, निस्सार। २. निकम्मा। उ० श्री रघुराज कहे कह रीझी भई तनु लीझी अजौं दशा एती। (रघुराज)

लीद : सं० स्त्री० घोड़े, गधे, ऊँट और हाथी आदि पशुओं का मल।

लीम : सं० पु० १. एक प्रकार का चीड़ा का पेड़ जिसमें से तारपीन या अलकतरा निकलता है। २.एक प्रकार की चिड़िया।

लुंगा : सं०पु० १. पंजाब में धान रोपने की एक रीति। माच। २. शोहदा, लफंगा, लुच्चा।

लुंगी : सं० स्त्री० एक बड़ी चिड़िया जो तालों के किनारे पाई जाती है। इसकी लम्बाई सवा या डेढ़ हाथ के लगभग और आकृति मोर जैसी और चोंच भूरे रंग की होती है। कुत्तों की सहायता से इसका

शिकार किया जाता है।

लुप : सं० स्त्री० शर या सरपत की तरह की एक घास।

लुखरी : सं० स्त्री० लोमड़ी। उ० और को लुखरी सगुन बतावै आप कुत्तों से खिसावै। (भ० नि० १।१३६)

लुखिया : सं० स्त्री० १. धूर्तनी। २. छिनाल, पुंश्चली, वेश्या।

लुगदा : सं० पु० (स्त्री० लुगदी) गीली वस्तु का गोला या पिंड। लोंदा।

लुगदी : सं० स्त्री० १. गीली वस्तु। छोटा लोंदा, जैसे भाँग की लुगदी। २. एक प्रकार की मिठाई, नुगदी।

लुगरा : सं० पु० पीठ पीछे बुराई करने वाला। चुगलखोर।

लुगरी : सं० पु० पीठ पीछे की हुई निंदा, चुगली।

लुचुई : सं० स्त्री० पूरी की तरह बनने वाला एक पकवान। लुचई।

लुज्जा : सं० पु० समुद्र में वह स्थल जो बहुत गहरा हो। (लश०)

लुटेरा : सं० पु० एक प्रकार का पक्षी।

लुटेरा : सं० पु० लूटपाट करने वाला। बदमाश, डाकू।

लुटेरवा : सं० पु० एक प्रकार का पक्षी।

लुट्टुर : सं० स्त्री० वह भेड़ जिसके कान छोटे हों। (गड़रिया)

लुढ़कना : क्रि० अ० फिसलना, गिरना, पड़ना। उ० एक कोने में लुढ़क जाना। यही उसका नित्य का जीवन है।
(टे० मे०रा० ५६)

लुतरा : सं० पु० (स्त्री० लुतरी) १. इधर की उधर लगाने वाला। चुगलखोर। २. नटखट, शरारती।

लुत्ती : सं० स्त्री० आग की चिनगारी, अंगारा, जलता हुआ कोयला। उ० खुदा बख्श यों कूदा जिससे उसके पैर लुत्ती पर पड़ गए हों। (अलग० बै० ३८४)

लुदरा : सं० पु० एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है और जिसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है।

लुनरो : सं० पु० एक जाति जिसे लोनिया या नोनिया भी कहते हैं। यह जाति पहले नमक निकालती थी।

लुरका : सं० पु० झुमका जो कानों में पहना जाता है।

लुरी : सं० स्त्री० वह गाय जिसे बच्चा दिए थोड़े ही दिन हुए हों। उ० लाडली लोली कलोरी, लुरी कहूँ लाल लुके वहाँ आग लगाइकै। (केशव)

लुशई : सं० स्त्री० एक प्रकार की चाय जो असम और कछार में होती है।

लुहनी : सं० पु० एक प्रकार का अगहनी धान जिसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है।

लूँड़ी : सं० स्त्री० ऍंडुरी, गद्दी। कपड़े या ऐसी ही किसी वस्तु को ऐंठ या मोड़कर बनाई हुई वस्तु। उ० सईदा ने लूँड़ी बनाते बनाते पूछा। (आधा० २६६)

लूका : सं० पु० मछली फँसाने का एक प्रकार का चावल।

लूगा : सं० पु० कपड़ा, वस्त्र। उ० रोटी लूगा नीके राखै। (तुलसी)

लूधा : सं० पु० कब्र खोदने वाला। गोरकन। (ठग)

लूनक : सं० पु० १. सज्जीखार। २. अमलोनी का साग।

लूम : सं० स्त्री० कलाबत्तू की लच्छ।

लूमर : वि० सयाना, जवान, युवा। (व्यंग्य या तिरस्कार)।

लूलू : वि० मूर्ख, बेवकूफ, उजड्ड, उल्लू, बुद्धिहीन।

लूसन : सं० पु० एक प्रकार का फलदार पेड़।

लेंडुआ : सं० पु० कागज का एक खिलौना जो उछालकर फेंक देने पर जमीन में गिरते ही खड़ा हो जाता है। खड़ेखाँ, मतवाला।

लेंड़े : सं० पु० गधे, घोड़े आदि की विष्ठा।

लेंड़ी : सं० स्त्री० बकरी आदि की विष्ठा, मेंगनी। (व्र० श०) लिंडिया। (उप० २३७)

लेंड़ोरी. सं० स्त्री० चौपायों को दाना या चारा खिलाने का बरतन।

लेंहड़ा : सं० पु० झुंड, दल, समूह, कतार, गल्ला (चौपायों के लिए प्रयुक्त)। उ० सिंहन के लेंहड़े नहि, हंसन की नहि पाँत। लालन की नहि बोरियाँ साधु न चलें जमात। (कबीर)

लेजुरा : सं० पु० एक प्रकार का अगहनी धान जिसका चावल बहुत दिनों तक रहता है।

लेट : सं० स्त्री० सुर्खी, कंकड़ और चूना पीसकर बनाई हुई कड़ी चिकनी सतह। सच।

लेटपेट : सं० स्त्री० एक प्रकार की चाय।

लेटा : सं० पु० गल्ले का बाजार, मंडी।

लेद : सं० पु० एक प्रकार का गीत जो फागुन में गाया जाता है।

लेदवा : सं० पु० खेत में होने वाली एक प्रकार की ककड़ी, फूट।

लेदार : सं० पु० एक प्रकार की चिड़िया।

लेदी : सं० स्त्री० १. जलाशयों के किनारे रहने वाली एक प्रकार की छोटी चिड़िया। उ० बोलहि सुआ ढेक बक लेदी। रहीं अबोल मीन जल भेदी। (जायसी) २. घास का पूला जिसे हल के नीचे के भाग में इसलिए बाँध देते हैं जिसमें चौड़ी कूंड बन सके।

लेपची : सं० पु० नेपालियों की एक जाति।

लेमना : सं० स्त्री० वह रस्सी जो दुहते समय गाय की पिछली टाँगों में बाँध देते हैं।

लेला : सं० पु० १. बकरी या भेड़ का बच्चा। २. वह जो साथ लगा रहता है।

लेवक : सं० पु० एक प्रकार का वृक्ष जिसकी लकड़ी इमारत के काम आती है।

लेसा : सं० पु० ढोली, पान का एक गट्ठा।

लेहसुर : सं० पु० कुम्हारों का एक औजार जिससे वे मिट्टी को मिलाते हैं। पाँसू।

लोई : सं० स्त्री० १. ऊनी चादर। २. गूँदे हुए आटे की गोल टिक्की, पेड़ी। उ० आटे की लोई को दबाकर रोटी का रूप देने—(झूठा० २।१०)

लोकंदा : सं० पु० (स्त्री० लोकंदी) विवाह में कन्या के डोले के साथ दासी को भेजना। उ० छेरी बाघहि व्याह होता है मंगल गावैं गाई। बनके रोझ धै दायज दीन्हों गोह लोकंदे जाई। (कबीर)

लोकरा : सं० पु० चीथड़ा, फटा वस्त्र।

लोगड़ : सं० पु० लिहाफ की पुरानी रूई। उ० घर में रूई अथवा लोगड़ कुछ भी न होता, वह भगवद्गीता ले बैठेगी। (गि० दी० १३२)

लोगचिरकी : सं० स्त्री० एक प्रकार का फूल।

लोजंग : सं० स्त्री० एक प्रकार की नाव जिसके दोनों ओर के सिक्के लंबे होते हैं।

लोटन सज्जी : सं० स्त्री० एक प्रकार की सज्जी जो सफेद और गुलाबी रंग की होती है। यह प्राय: मुरब्बे आदि के गलाने में काम आती है।

लोटा : सं० पु० धातु का एक पात्र जो प्राय: गोल होता है और पानी रखने के

काम आता है। जिस लोटे में टोंटी लगी रहती हैं उसे टोंटीदार लोटा कहते हैं।

लोढ़ा : सं० पु० पत्थर, बटना, किसी चीज को पीसने का पत्थर। उ० बैजनाथ बाजपेयी के सिल-लोढ़े को देख रहे थे। (टे० मे० रा० १२३)

लोना : सं० स्त्री० एक कल्पित स्त्री जो जादू-टोने में होशियार मानी जाती है। उ० तू कांवरू परा बस टोना। भूला जोग छरा तोहि लोना। (जायसी)

लोला : सं०पु०१.लड़कों का एक खिलौना। यह एक डंडा होता है जिसके दोनों सिरों पर दो लड्डू होते हैं। २. वृषण, अंडकोश, ३. टुनटुनी। किसी घंटे आदि में लटकने वाली टुल्ली।

लोहाना : सं० पु० एक जाति का नाम।

लौंडा : सं० पु० १. छोकरा, बालक। २. खूबसूरत और नमकीन लड़का। ३. शिश्न, लिंग।

लौंडी : सं० स्त्री० दासी, मजदूरनी। उ० मन मनसा दै लौंडी निकारि डारो। मारो हंकार तृपा दुर्बुद्धि कुवाद की। (कबीर)

लौंद : सं० पु० अधिक मास, मलमास।

लौंदरा : सं०पु० वह पानी जो ग्रीष्मऋतु में वर्षा प्रारम्भ होने से पहले बरसता है। लवंद, दौंगरा।

लौंदी : सं० स्त्री० वह करछी जिससे खंडसार में पाक चलाया जाता है। (बुंदेल०)

लौआ : सं० पु० एक सब्जी, लौकी।

लौंद : सं० पु० अरहर की कम्मच या पेड़।

लौदरी : सं० स्त्री० अरहर की लकड़ी।

लौरी : सं० स्त्री० बछिया।

ल्यारी : सं० पु० भेड़िया। उ० श्रीकृष्णचंद ने मुसकरा के कहा बहुत अच्छा तू बन भेड़िया और सब ग्वाल बाल होवैं भेड़ा सो सुनते ही व्योमासुर तो फूलकर ल्यारी हुआ और ग्वाल बाल सब बने भेड़े।

वफरना : क्रि० अ० क्रोध से बकने या गुर्राने की क्रिया। उ० प्यारी बघेरनी की तरह वफर रही थी। (क० पु० १३१)

वरहा : सं० पु० पशु चरने का स्थान। चरागाह।

वरही : सं० स्त्री० सोने की एक लंबी पट्टी जो विवाह के समय वधू को पहनाई जाती है।

विजार : सं०पु० १. एक प्रकार की मटिया भूमि जिसमें धान और कभी-कभी चना बोया जाता है। २. साँड़।

विट्ठल : सं० पु० विष्णु के लिए दक्षिण भारत में प्रचलित नाम।

विन्याक : सं०पु० बरियारा नामक पौधा।

विमोहा : सं०स्त्री० एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में दो रगण होते हैं। जोहा, विजोहा, विज्जोहा।

विरौनी : सं०स्त्री० बाजरा, मडुवा, कोदो वगैरह की एक प्रकार की जोताई जो उनके पौधे कुछ ऊंचे होने पर की जाती है।

विसी : सं० स्त्री० बरसात के दिनों में पानी के कारण बकरी के मुँह में होने वाला एक रोग। (व्र० श०)

वुत्ता : सं० पु० धोखा, फरेब, ठगी। उ० टिकट चेकर को वुत्ता देने में उस्ताद हो गया था। (राग दर० ६८)

शंगर : सं०पु० एक प्रकार का बहुत ऊँचा वृक्ष जो मद्रास और सुंदर वन में अधिकता से होता है। इसकी लकड़ी लाल और मजबूत होती है और मकान तथा गाड़ी बनाने के काम आती है। इसके पत्तों से रंग भी निकाला जाता है।

शकरपीटन : सं० पु०एक प्रकार की कँटीली झाड़ी जो थूहड़ के एक भेद में गिनी जाती है।



शाण : सं० पु० सन के रेशे का बना हुआ कपड़ा। भँगरा।

शामा : सं० पु० एक प्रकार का पौधा जिसकी पत्तियाँ और जड़ कोढ़ रोग के लिए लाभदायक मानी जाती हैं।

शामी : सं० स्त्री० लोहे या पीतल का वह छल्ला जो लकड़ियों और छड़ियों आदि के नीचे भाग में अथवा औजारों के दस्ते के सिरे पर उसकी रक्षा के लिए लगाया जाता है। शाम।

शाल : सं० पु० १. एक प्रकार की मछली। २. वृक्ष, पेड़। ३. एक नदी का नाम। ४. वृका के एक पुत्र का नाम। राजा शालिवाहन का एक नाम। राल, धूना।

शिगुड़ी : सं० स्त्री० एक जंगली पौधा जो दवा के काम आता है। यह वातनाशक तथा शरीर को दृढ़ करने वाला बताया गया है।

शिरगोला : सं० पु० दुग्धपाषाण नामक वृक्ष।

शिरनेत : सं० पु० १. गढ़वाल या श्रीनगर के आस-पास का प्रदेश। उ० सुनि सिधाय सिरनेतन देशू। तहँ विवाह किया ब्रह्म नरेशू। (कबीर) २. क्षत्रियों की एक शाखा।

शिराज : सं० पु० हिन्दुओं की एक जाति जो चमड़े का काम बहुत अच्छा करती है।

शिलंडी : सं० स्त्री० एक प्रकार की घास जो रेतीले स्थानों में होती है। जहाँ यह होती है वहाँ जमीन में चावल की तरह एक प्रकार के दाने भी होते हैं जो पौधों से अलग और स्वतंत्र होते हैं। वीड़।

शुंकरान : सं० पु० एक प्रकार का वृक्ष जिसके फल कड़ुवे होते हैं।

शेज : सं० पु० अघोरी नामक वृक्ष। (बुंदेल०)

शेवड़ी : सं० स्त्री० मछली का एक भेद। (सा० ल० म० १२)

शैलू : सं० पु० १. लिसोड़ा, लभेरा। २. एक चटाई जिसका व्यवहार दक्षिण और गुजरात में होता है।

शोला : सं० पु० एक छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत हल्की होती है।

संखार : सं० पु० एक प्रकार का पक्षी जिसका रंग अबलक होता है और चोंच चिपटी होती है।

संगकूपी : सं० स्त्री० एक प्रकार की वनस्पति जो औषधि के काम आती है।

संगरा : सं० पु० १. कुओं के तख्ते पर बना हुआ वह छेद जिसमें पानी खींचने का पंप बैठाया हुआ होता है। २. मोटे बाँस का वह छोटा टुकड़ा जिसकी सहायता से पेशराज लोग पत्थर उठाते हैं। सँगरा।

संगी : सं० स्त्री० वह कपड़ा जो विवाहादि में वर का पाजामा तथा स्त्रियों के लँहगे बनाने के काम आता है।

संडमुसंड : वि० स्थूलकाय तथा खा-पीकर गोल मटोल व्यक्ति। उ० संडमुसंड पंडे उनका यश इसमें न गावेंगे। (भ० नि० २।१२४)

संघराना : क्रि० स० दुःखी या उदासीन गाय को उसका दूध दुहने के लिए पर-चाना या फुसलाना। इसमें गाय के सामने नकली बछड़ा बनाकर खड़ा कर देते हैं जिससे वह दूध दुहने देती है।

संडास : सं० पु० १. कुएँ की तरह का एक गहरा पाखाना। शौचकूप। इस पाखाने में नीचे गड्ढा खोद देते हैं और फिर ऊपर से थोड़ा छिद्र छोड़ देते हैं। २. वह पाखाना जिसके नीचे खिड़की लगी हो। मेहतर इसी खिड़की से मल ले जाता है।

संडासी : सं० पु० सफेद डामर, धूप, मरहम,

कहरूवा। सं० स्त्री० लोहे का कैंचीनुमा वह उपकरण जिससे बरतन वगैरह उठाए जाते है।

संती : अव्य० वदले में, एवं जमे, स्थान में। उ० उसने उसकी पसलियों में से एक पसली निकाली और उसके संती मांस भर दिया।

संपित : सं० पु० एक प्रकार का वाँस जिस से टोकरे बनाए जाते है।

संवेल : सं० पु० वाद्य विशेष। (सा० ल० म० १५२)

सईकंडा : सं० पु० एक प्रकार का पेड़।

सकन : सं० पु० लता, कस्तूरी, मुश्कदाना।

सकरुंड : सं० पु० सरकुंड नामक वृक्ष जिसकी पत्तियों आदि का व्यवहार औषधि के रूप में होता है।

सकलात : सं० पु० १. ओढ़ने की रजाई, दुलाई। उ० शीत लगत सकलात विदित पुरुपोत्तम दीनी। शौच गए हरिसंग कृत्य सेवक की कीनी। (भक्तमाल) २. भेंट, सौगात, उपहार। उ० सौ गाड़ी सकलात सलौनी। पातसाह को जात पठौनी। (लालकवि)

सकली : सं० स्त्री० मछली। (डिं०)

सकाकुल : सं० पु० १. एक प्रकार का कंद जिसे अवरकंद कहते है। २. एक प्रकार का शतावर। ३. सुधामूली।

सकीन : सं० पु० एक प्रकार का जंतु।

सकेतना : क्रि० अ० संकुचित होना, सिकुड़ना। उ० कंवल सकेता कुमुदिनी फूली। चकवा विछुरा चकई भूली। (जायसी)

सकेती : सं० स्त्री० विपत्ति, कष्ट, आपत्ति।

सखरा : सं० पु० (स्त्री० सखरी) कच्ची रसोई। कच्चा भोजन।

सगदा : सं० पु० एक प्रकार का मादक द्रव्य जो अनाज से बनाया जाता है।

सगर : सं० पु० तगर का फूल या पौधा।

सगवती : सं० स्त्री० खाने का मांस, गोश्त, कलिया, सगौती।

सगवा : सं० पु० सहिजन, शोभाजन, मुनगा।

सचु : सं० पु० १. सुख, आनंद। उ० १. पुरइन कपिश निचोल विविध रंग विहँसत सचु उपजावै। सूर स्याम आनंद कंद की शोभा कहत न आवै। २. अँखियन ऐसी घरनि धरी। नंद-नंदन देखे सचु पावै (सूर)। २. प्रसन्नता, खुशी।

सज : सं० पु० एक प्रकार का वहुत लंबा वृक्ष जिसके पत्ते शिशिर में झड़ जाते हैं। इसकी लकड़ी का रंग स्याही लिए हुए भूरा होता है जिससे जहाज, नाव आदि वनती है।

सजूरी : सं० स्त्री० एक प्रकार की मिठाई। उ० माधुरि अति सरस सजूरी। सद दरसि धरी घृत पूरी। (जायसी)

सझनी : सं० स्त्री० एक प्रकार का छोटा पक्षी जिसकी पीठ काली, छाती सफेद और चोंच लंबी होती है।

सझला : वि० तीसरा, मझले से दूसरा, तीसरे नम्बर का। उ० मझले और सझले मालिकों ने मिलकर उस पुरानी हवेली— (वल० २१)

सटई : सं० स्त्री० अनाज रखने का एक प्रकार का पात्र।

सटकना : क्रि० अ० रफूचक्कर होना, चम्पत होना।

सटकाना : क्रि० स० १. चम्पत करना। २. सटसट शब्द करना।

सटाकी : सं० स्त्री० चमड़े की वह रस्सी या पट्टी जो कुछ छड़ियों के सिरे पर वँधी रहती है।

सटाय : वि० १. दलालों की परिभाषा मे

कम, न्यून । २. हलका, घटिया, खराव ।

सटैया : वि० घटिया, निकम्मा, रद्दी ।

सटैला : सं० पु० एक प्रकार का पक्षी ।

सट्टा : सं० पु० १. वह इकरारनामा जो काश्तकारों में खेत के साझे आदि के संबंध में होता है। बटाई। २. वह इकरारनामा जो दो पक्षों में कोई निश्चित काम करने या कुछ शर्तें पूरी करने के लिए होता है। इकरारनामा । जैसे, बाजे वालों को पेशगी रुपया दे दिया पर उनसे सट्टा नहीं लिखाया । ३. वह बाजी जो तेजी-मंदी को लेकर होती है ।

सठुरी : सं० स्त्री० गेहूँ या जौ आदि के डंठलों का वह गठीला अंश जिसका भूसा नहीं होता और जो ओसाकर अलग कर दिया जाता है। गठुरी, कूँटा,कूँटी ।

सड़न : सं० पु० दुर्गन्ध, पुराना होकर खराब होना । उ० क्यों जी, इस सड़न की गर्मी में बैठे-बैठे क्या कर रहे हो ।

(टे० मे० रा० २६)

सड़ा : क्रि० वि० जली हुई, गली वस्तु । उ० सिर सड़े (कपाल फूटे) छेड़ते हैं ।

(झूठा० १।१२)

सड़ाक : सं०पु० १.कोड़े आदि की फटकार की आवाज । २. तेजी या जल्दी ।

सतसल : सं० पु० शीशम का पेड़ ।

सतेरी : सं० स्त्री० एक प्रकार की मधु-मक्खी ।

सदर : सं० पु० सज नामक वृक्ष ।

सदहा : सं० पु० अनाज लादने की बड़ी बैलगाड़ी ।

सनकुरंगी : सं० पु० एक प्रकार का बड़ा पेड़। इसकी लकड़ी से कुर्सियाँ आदि बनती हैं ।

सनक : सं० पु० पागलपन । उ० जिसे देखो उसे वही सनक चढ़ी है। (प्र०ग्र०४६८)

सनहाना : सं०पु० वह नाँद या बड़ा बर्तन जिसमें, भरे हुए और खटाई मिले हुए जल में धोने के पूर्व बर्तन फूलने के लिए डाल दिए जाते हैं ।

सन्नाटा : सं० पु० विलायती मेंहदी नामक पौधा जो बागों में बाढ़ के लिए लगाया जाता है। शान्ति, सुनसान। जैसे, उस मकान में बिलकुल सन्नाटा था ।

सप्पन : सं० पु० बक्कम का पेड़ ।

समदना : क्रि० अ० प्रेमपूर्वक मिलना, भेंटना । उ० समदि लोग पुनि चढ़ि बिवाना। जेहि दिन डरी सो आइ तुलाना । (जायसी)

समदना : क्रि०स० १. भेंट करना,उपहार देना। २. विवाह करना। उ० दुहिता समदौ सुख पाय अबै ।

(केशव)

सम्महा : सं० पु० अग्नि, पावक, आग ।

(डिंगल)

सयन : सं०पु०नेत्र का ऊपरी प्रान्त, भौंह । उ० सहनहि रघुपति लषनु निवारे ।

(तुलसी)

सरदाला : सं० स्त्री० उत्तरी भारत की रेतीली भूमि में होने वाली एक प्रकार की बारहमासी घास जो चारे के लिए अच्छी समझी जाती है ।

सरधाँकी : सं० स्त्री० एक प्रकार का पौधा जो प्राय: रेतीली भूमि में होता है। यह वर्षा और शरद् में फूलता है। इसका व्यवहार औषधि के रूप में होता है ।

सरवान : सं० पु० तंबू, खेमा। उ० उठि सरवान गगनि लगि छाए। जानहु राते मेघ दिखाए। (जायसी)

सरवाला : सं०स्त्री०एक लता जिसे घोड़ा-बेल भी कहते हैं। विलाईकंद इसकी जड़ होती है।

सरया : सं० पु० एक प्रकार का मोटा धान जिसका चावल लाल होता है और जो कुँआर में तैयार होता है। सारो।

सरसुल गोरंटी : सं०स्त्री०सफेद कटसरैया, श्वेत झिंटी।

सरहत : सं० पु० खलिहान में फैले अनाज को बुहारने की झाड़ू।

सरहतना : क्रि०स० अनाज को साफ करने के लिए फटकना, पछोड़ना।

सरहना : सं० स्त्री० मछली के ऊपर का छिलका। चूई।

सराय : सं० पु० गुल्ला नामक पहाड़ी पेड़।

सरार : सं० पु० घोड़ावेल नामक लता।

सराव : सं० स्त्री० एक प्रकार की पहाड़ी वकरी।

सरिया : सं० स्त्री० १. ऊँची भूमि। २. पैसा या और कोई छोटा सिक्का।

सरियाना : क्रि० स० १. तरतीव से लगा कर इकट्ठा करना, विखरी हुई चीजें ढंग से समेटना। जैसे, लकड़ी सरियाना, कागज सरियाना। २. मारना, लगाना। (वाजारू)

सरेरा (सरेला) : सं० पु० १. पाल में लगी हुई रस्सी जिसे ढीला करने से, पाल की हवा निकल जाती है। २. मछली की वंशी की डोरी, शिस्त।

सरोई : सं० पु० एक वड़ा पेड़ जिसकी लकड़ी से चारपाई आदि वनाई जाती है तथा छाल से रंग भी निकाला जाता है।

सर्राटा : सं० पु० १. हवा का तेज झोंका। २. तेज चलने से होने वाला शब्द।

सलपन : सं० पु० दो-तीन हाथ ऊँची एक प्रकार की झाड़ी जिसकी टहनियों पर सफेद रोएँ होते है। यह वर्षा में फूलती है। इसका व्यवहार औषधि के लिए होता है।

सलसी : सं० स्त्री० माँजूफल की जाति का एक प्रकार का वड़ा वृक्ष। वूक।

सलार : सं० स्त्री० एक प्रकार की चिड़िया।

सलीखा : सं० पु० तज, त्वकपत्र।

सलीता : सं०पु० एक प्रकार का वहुत मोटा कपड़ा जो मारकीन या गजी की तरह का होता है।

सल्लम : सं० पु० एक प्रकार का मोटा कपड़ा, गजी, गाढ़ा।

सल्लू : वि० मूर्ख, वेवकूफ।

सल्लू : सं० स्त्री० चमड़े की डोरी।

सवागी : सं० पु० सुहागा, टंकणक्षार।

सशवी : सं०पु० काला जीरा, कृष्णजीरक।

सहलाना : क्रि० स० १. किसी पर धीरे-धीरे उँगलियाँ फेरना। २. प्यार से हाथ फेरना। ३. मलना।

सहवन : सं० पु० एक प्रकार का तेलहन जिससे तेल निकाला जाता है।

सहिरिया : सं०स्त्री० वसंत की वह फसल जो विना सींचे होती है।

सहेज : सं० पु० वह दही जो दूध को जमाने के लिए उसमें छोड़ा जाता है। जामन।

सहेरवा : सं०पु० हरसिंगार या पारिजात का वृक्ष।

सहेल : सं० पु० वह सहायता जो असामी या काश्तकार अपने जमींदार को वेगारी या वीज के रूप में देता है।

सहेलवाल : सं०पु० वैश्यों की एक जाति।

सहेला : सं० पु० एक पक्षी जिसके पंखों के सिवाय सव देह लाल होती है। (व्र० श०)

साँची : सं० पु० १. एक प्रकार का पान जो खाने में सुगंधित और ठंडा होता है। २. पुस्तकों की छपाई का वह प्रकार जिस में पंक्तियाँ सीधे वल में न होकर वेड़े वल

कम, न्यून। २. हलका, घटिया, खराब।

सटैया : वि० घटिया, निकम्मा, रद्दी।

सटैला : सं० पु० एक प्रकार का पक्षी।

सट्टा : सं० पु० १. वह इकरारनामा जो काश्तकारों में खेत के साझे आदि के संबंध में होता है। बटाई। २. वह इकरारनामा जो दो पक्षों में कोई निश्चित काम करने या कुछ शर्तें पूरी करने के लिए होता है। इकरारनामा। जैसे, बाजे वालों को पेशगी रुपया दे दिया पर उनसे सट्टा नहीं लिखाया। ३. वह बाजी जो तेजी-मंदी को लेकर होती है।

सठुरी : सं० स्त्री० गेहूँ या जौ आदि के डंठलों का वह गठीला अंश जिसका भूसा नहीं होता और जो ओसाकर अलग कर दिया जाता है। गठुरी, कूँटा, कूँटी।

सड़न : सं० पु० दुर्गन्ध, पुराना होकर खराब होना। उ० क्यों जी, इस सड़न की गर्मी में बैठे-बैठे क्या कर रहे हो।

(टे० मे० रा० २६)

सड़ा : क्रि० वि० जली हुई, गली वस्तु। उ० सिर सड़े (कपाल फूटे) छेड़ते हैं।

(भूता० १।१२)

सड़ाक : सं०पु० १.कोड़े आदि की फटकार की आवाज। २. तेजी या जल्दी।

सतसल : सं० पु० शीशम का पेड़।

सतेरी : सं० स्त्री० एक प्रकार की मधु-मक्खी।

सदर : सं० पु० सज नामक वृक्ष।

सदहा : सं० पु० अनाज लादने की बड़ी बैलगाड़ी।

सनकुरंगी : सं० पु० एक प्रकार का बड़ा पेड़। इसकी लकड़ी से कुर्सियाँ आदि बनती हैं।

सनक : सं० पु० पागलपन। उ० जिसे देखो उसे वही सनक चढ़ी है। (प्र०ग्र०४६८)

सनहाना : सं०पु० वह नाँद या बड़ा बर्तन जिसमें, भरे हुए और खटाई मिले हुए जल में धोने के पूर्व बर्तन फूलने के लिए डाल दिए जाते हैं।

सन्नाटा : सं० पु० विलायती मेंहदी नामक पौधा जो बागों में बाढ़ के लिए लगाया जाता है। शान्ति, सुनसान। जैसे, उस मकान में बिलकुल सन्नाटा था।

सप्पन : सं० पु० बक्कम का पेड़।

समदना : क्रि० अ० प्रेमपूर्वक मिलना, भेंटना। उ० समदि लोग पुनि चढ़ि बिवाना। जेहि दिन डरी सो आइ तुलाना। (जायसी)

समदना : क्रि०स० १. भेंट करना, उपहार देना। २. विवाह करना। उ० दुहिता समदौ सुख पाय अबै।

(केशव)

सम्महा : सं० पु० अग्नि, पावक, आग।

(डिंगल)

सयन : सं०पु०नेत्र का ऊपरी प्रान्त, भौंह। उ० सहनहि रघुपति लषनु निवारे।

(तुलसी)

सरदाला : सं० स्त्री० उत्तरी भारत की रेतीली भूमि में होने वाली एक प्रकार की बारहमासी घास जो चारे के लिए अच्छी समझी जाती है।

सरधाँकी : सं० स्त्री० एक प्रकार का पौधा जो प्रायः रेतीली भूमि में होता है। यह वर्षा और शरद् में फूलता है। इसका व्यवहार औषधि के रूप में होता है।

सरवान : सं० पु० तंबू, खेमा। उ० उठि सरवान गगनि लगि छाए। जानहु राते मेघ दिखाए। (जायसी)

सरवाला : सं०स्त्री०एक लता जिसे घोड़ा-बेल भी कहते हैं। बिलाईकंद इसकी जड़ होती है।

सरया : सं० पु० एक प्रकार का मोटा धान जिसका चावल लाल होता है और जो कुँआर में तैयार होता है। सारो।

सरसुल गोरंटी : सं०स्त्री०सफेद कटसरैया, श्वेत झिंटी।

सरहत : सं० पु० खलिहान में फैले अनाज को बुहारने की झाड़ू।

सरहतना : क्रि०स० अनाज को साफ करने के लिए फटकना, पछोड़ना।

सरहना : सं० स्त्री० मछली के ऊपर का छिलका। चूई।

सराय : सं० पु० गुल्ला नामक पहाड़ी पेड़।

सरार : सं० पु० घोड़ावेल नामक लता।

सराव : सं० स्त्री० एक प्रकार की पहाड़ी वकरी।

सरिया : सं० स्त्री० १. ऊँची भूमि। २. पैसा या और कोई छोटा सिक्का।

सरियाना : क्रि० स० १. तरतीव से लगा कर इकट्ठा करना, विखरी हुई चीज़ें ढंग से समेटना। जैसे, लकड़ी सरियाना, कागज सरियाना। २. मारना, लगाना। (वाजारू)

सरेरा (सरेला) : सं० पु० १. पाल में लगी हुई रस्सी जिसे ढीला करने से, पाल की हवा निकल जाती है। २. मछली की वंशी की डोरी, शिस्त।

सरोई : सं० पु० एक वड़ा पेड़ जिसकी लकड़ी से चारपाई आदि वनाई जाती है तथा छाल से रंग भी निकाला जाता है।

सर्राटा : सं० पु० १. हवा का तेज झोंका। २. तेज चलने से होने वाला शब्द।

सलपन : सं० पु० दो-तीन हाथ ऊँची एक प्रकार की झाड़ी जिसकी टहनियों पर सफेद रोएँ होते हैं। यह वर्षा में फूलती है। इसका व्यवहार औषधि के लिए होता है।

सलसी : सं० स्त्री० माँजूफल की जाति का एक प्रकार का वड़ा वृक्ष। वूक।

सलार : सं० स्त्री० एक प्रकार की चिड़िया।

सलीखा : सं० पु० तज, त्वकपत्र।

सलीता : सं०पु० एक प्रकार का वहुत मोटा कपड़ा जो मारकीन या गजी की तरह का होता है।

सल्लम : सं० पु० एक प्रकार का मोटा कपड़ा, गजी, गाढ़ा।

सल्लू : वि० मूर्ख, वेवकूफ।

सल्लू : सं० स्त्री० चमड़े की डोरी।

सवागी : सं० पु० सुहागा, टंकणक्षार।

सशावी : सं०पु० काला जीरा, कृष्णजीरक।

सहलाना : क्रि० स० १. किसी पर धीरे-धीरे उँगलियाँ फेरना। २. प्यार से हाथ फेरना। ३. मलना।

सहवन : सं० पु० एक प्रकार का तेलहन जिससे तेल निकाला जाता है।

सहिरिया : सं०स्त्री० वसंत की वह फसल जो विना सींचे होती है।

सहेज : सं० पु० वह दही जो दूध को जमाने के लिए उसमें छोड़ा जाता है। जामन।

सहेरवा : सं०पु० हरसिंगार या पारिजात का वृक्ष।

सहेल : सं० पु० वह सहायता जो असामी या काश्तकार अपने जमींदार को वेगारी या वीज के रूप में देता है।

सहेलवाल : सं०पु० वैश्यों की एक जाति।

सहेला : सं० पु० एक पक्षी जिसके पंखों के सिवाय सव देह लाल होती है। (व्र० श०)

साँची : सं० पु० १. एक प्रकार का पान जो खाने में सुगंधित और ठंडा होता है। २. पुस्तकों की छपाई का वह प्रकार जिस में पंक्तियाँ सीधे वल में न होकर वेड़े वल

में होती हैं।

साँझी : सं० स्त्री० मंदिरों में देवताओं के सामने जमीन पर या घरों में दीवार पर गोबर, मिट्टी और फूलपत्तों आदि की सजावट जो प्रायः श्रावण मास में होती है।

साँट : सं० स्त्री० १. लाल गदहपूरना। २. बस में रखना। उ० उन्हें तो मैंने खूब साँट रखा था। ३. साँटा, कम्मच, छड़ी, बेंत।

साँटी : सं० स्त्री० छड़ी, बाँस की पतली लकड़ी। उ० सब की पीठि तोरिहै। (जा० ४०७।५)

साँठ-गाँठ : सं० स्त्री० गूढ़ उद्देश्य के लिए होने वाला आपस में समझौता या निश्चय। (सौ०अजान० ११०)

साँठ : सं०पु० १. पैरों में पहना जाने वाला साँकड़ा नामक गहना। २. ईख। ३. सरकंडा। ४. डंडा।

साँठी : सं० स्त्री० १. पूँजी, धन। २. पुनर्नवा, गदहपूरना।

साँढिया : सं० पु० ऊँट, क्रमलेक। (डिंगल)

साँथड़ा : सं० पु० वादिया का वह हिस्सा जो पेच बनाने के लिए घुमाया जाता है। (लुहार)

साँथा : सं० पु० लोहे का वह औजार जो चमड़ा कूटने के काम आता है।

साँथी : सं० स्त्री० १. वह लकड़ी जो ताने के तारों को ठीक रखने के लिए करघे के ऊपर लगी रहती है। २. ताने के सूतों के ऊपर-नीचे होने की क्रिया।

साँद-साँदा : सं०पु० वह लकड़ी जो पशुओं के गले में इसलिए बाँध दी जाती है जिस से वे भागने न पावें। लंगर, ढेंका।

साँविक : सं० पु० वह ऋण जो हलवाहों को दिया जाता है और जिसके सूद के बदले वे काम करते हैं।

साँवत : सं० पु० एक प्रकार का राग।

साँवती : सं०स्त्री०बैलगाड़ी या घोड़ागाड़ी के नीचे लगी हुई जाली जिसमें वे घास रखते हैं।

साँवन : सं० पु० एक प्रकार का मझोले आकार का वृक्ष जिसका तना प्रायः झुका हुआ होता है। इसकी छाल पतली और भूरे रंग की होती है इसका गोंद औषध के काम आता है और मछलियों के लिए विष होता है।

साँसल : सं० पु० १. एक प्रकार का कंबल, बीज बोने की क्रिया।

साँहुड़ : सं० पु० सेंहुड़, यह वृक्ष ज्यादा बड़ा नहीं होता, तथा इसकी डालों पर काँटे होते हैं। उ० झखेर और साँहुड़ के पेड़ों से भरे हुए जंगल—(मैला० १०७)

साहबड़ी : सं० स्त्री० वह धन जो किसान फसल के समय धार्मिक कार्यों के लिए देता है।

साई : सं० स्त्री० १. वह धन जो गाने-बजाने वाले या इसी प्रकार के और पेशकारों को किसी अवसर के लिए उनकी नियुक्ति पक्की करके पेशगी दिया जाता है। बयाना, पेशगी। २. एक प्रकार का कीड़ा जिसके घाव पर बीट कर देने से घाव में कीड़े पैदा हो जाते हैं। ३. वे छड़ जो गाड़ी के अगले हिस्से में बेड़े बल में एक दूसरे को काटते हुए रखे जाते हैं और जिनके कारण उनकी मजबूती और भी बढ़ जाती है।

साईकाँटा : सं०पु०एक वृक्ष जिसकी लकड़ी सफेद होती है और छाल चमड़ा सिझाने के काम आती है। इसमें एक प्रकार का कत्था भी निकलता है। साई भोगली।

साकवर : सं० पु० बैल, वृषभ।

साजगिरी : सं०स्त्री० संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

साजड़ : सं० पु० गुलू नामक वृक्ष जिससे कतीस गोंद निकलता है।

साटक : सं० पु० १. भूसी, छिलका। २. निरर्थक, तुच्छ। उ० सब फोकट साटक है तुलसी अपनो न कछु सपनो दिन द्वै। (तुलसी) ३. एक प्रकार का छंद।

साटनी : सं० स्त्री० भालू का नाथ। (कलंदर)

साटी : सं० स्त्री० १. पुनर्नवा, गदहपुर्णा। २. सामान, सामग्री। ३. कमची, साँटी।

साटे : अव्य० बदले में, परिवर्तन में।

साठा : सं० पु० १. ईख, गन्ना। २. एक प्रकार का धान जिसे साठी कहते हैं। ३. वह खेत जो बहुत लंबा-चौड़ा हो। ४. एक प्रकार की मधुमक्खी जिसे सहपुरिया भी कहते है।

साड़ा : सं० पु० १. घोड़ों का एक प्राण-घातक रोग। २. बाँस का वह टुकड़ा जो नाव में मल्लाहों के बैठने के स्थान के नीचे लगा रहता है।

साती : सं० स्त्री० साँप काटने की एक प्रकार की चिकित्सा जिसमें साँप काटे हुए स्थान को चीरकर उस पर नमक या बारूद मलते हैं।

सानोक : सं० पु० एक प्रकार की घास।

सापन : सं०पु० एक प्रकार का रोग जिसमें सिर के बाल गिर जाते हैं।

सामसर : सं० पु० एक प्रकार का गन्ना जो डुमराँव में होता है।

सायर : सं० पु० १. वह पटरा जिससे खेत की मिट्टी बराबर करते हैं। हेंगा। २. एक देवता जो चौपायों का रक्षक माना जाता है। ३. एक प्रकार का धान जो सिलहट में होता है।

सारवाला : सं० पु० एक प्रकार की जंगली घास जो तर जगहों में होती है यह प्रायः बारह वर्ष तक सुरक्षित रहती है। मुलायम होने पर यह पशुओं को खिलाई जाती है

सालू : सं० पु० एक प्रकार का लाल कपड़ा जो मांगलिक कार्यों में उपयोग में आता है (पश्चिम)। उ० तेरी कुड़माई हो गई ? हो गई, देखते नहीं मेरा सालू! (गुलेरी) २. साड़ी। (डिंगल)

साहुकार : सं० पु० धनी-मानी व्यक्ति। उ० राजा महाराजा, सेठ साहूकार। (प्र० ग्र० ५४)

सिंगाल : सं० पु० एक प्रकार का पहाड़ी बकरा जो कुमाऊँ से नेपाल तक पाया जाता है।

सिंधारा : सं० पु० श्रावण मास के दोनों पक्षों की तृतीया को लड़की की ससुराल मे भेजा हुआ पकवान आदि।

सिंधू : सं० पु० एक प्रकार का जीरा जो कुल्लू तथा फारस से आता है और काले जीरे के स्थान पर बिकता है।

सिकटा : सं० पु० (स्त्री० सिकटी) खपड़े या मिट्टी के टूटे बरतनों का छोटा टुकड़ा।

सिकरवार : सं० पु० क्षत्रियों की एक शाखा। उ० वीर बढ़ गूजर जसाउत सिकरवार होत असवार जे करत निरवार है। (सूदन०)

सिकसोनी : सं० स्त्री० काक जंघा।

सिकोली : सं०स्त्री० बाँस के फट्टों, काँस, मूँज, बेल आदि की बनी डलिया। उ० प्रसादी जल की मथनी में झारी ठलाय सिकोली में बीड़ा ठलाय, कंसड़ी में चरणामृत ठलाय, पाछे पात्र सब धोय साजि के ठिकाने धरिए। (वल्लभ पुष्टिमार्ग)

सिगोती : सं० स्त्री० एक प्रकार की छोटी चिड़िया।

सिजली : सं० स्त्री० एक प्रकार का पौधा जो दवा के काम आता है।

सिटपिटाना : क्रि० अ० घवड़ाना, सकुचाना। उ० भारी पद देने से सिटपिटाते हैं। (भ० नि० २६८)

सिट्टी : सं० स्त्री० वहुत वढ़-चढ़कर बोलना।

सिट्टी-पिट्टी : सं० स्त्री० होश-हवास उड़ने व घवराने की क्रिया। उ० ताकते देख ऐसा डपटा उसने कि मेरी तो सिट्टी-पिट्टी गुम। (अलग० वैं० २०२)

सिठनी : सं० स्त्री० उँगली दिखाकर चिढ़ाने की क्रिया, मटका कर कहने का भाव, भला-बुरा कहना। उ० गालियों और सिठनियों से उसकी खवर लेने लगीं। (झूठा० १।३२१)

सिठाई : सं० स्त्री० १.फीकापन, नीरसता। २. मंदता।

सिघरी : सं०स्त्री०एक प्रकार की मछली।

सिनीत : सं० स्त्री० सात रस्सियों को बटकर बनाई गई चिपटी रस्सी।

सिनो : सं० पु० खेत की पहली जुताई।

सिप्पा : सं० पु० १. पुराने ढंग की एक छोटी तोप। २. लक्ष्य-भेद। ३.तरकीब। (बाजारू)

सिमरिख : सं० स्त्री० एक प्रकार की चिड़िया।

सियानोव : सं० पु० एक प्रकार का पक्षी।

सियार लाठी : सं० पु० अमलतास। यह औषध के काम में आता है।

सियालापोक : सं० पु० एक वहुत छोटा कीड़ा जो सफेद चिपटे कोश के भीतर रहता है और पुरानी लोने वाली मिट्टी वाली दीवारों पर मिलता है। लोना पोका।

सियाली : सं० स्त्री० एक प्रकार का विदारी कंद।

सियावड़ी : सं० स्त्री० १. अनाज का वह हिस्सा जो खेत कटने पर खलिहान में से साधुओं के निमित्त निकाला जाता है। २. वह काली हाँड़ी जो खेतों में चिड़ियों को डराने और फसल को नजर से वचाने के लिए रखी जाती है।

सिरखिली : सं० स्त्री० एक प्रकार की चिड़िया जिसका सम्पूर्ण शरीर मटमैला पर चोंच और पैर काले होते हैं।

सिरगा : सं० पु० घोड़े की एक जाति। उ० सिरगा समंदा स्याह से लिया सूर सुरंगा। मुसकी पंचकल्यान कुमेता केहरि रंगा। (सूदन)

सिरगोला : सं० पु० दुग्ध पाषाण।

सिरसी : सं०स्त्री० एक प्रकार का तीतर।

सिरांचा : सं० पु० एक प्रकार का वाँस जिससे कुसियाँ और मोढ़े बनते हैं।

सिरोही : सं० स्त्री० १. एक प्रकार की चिड़िया जिसकी चोंच और पैर लाल और शेष शरीर काला होता है। २. एक तलवार जो राजस्थान में सिरोही नामक स्थान की होती है। उ० तरवार सिरोही लाख सिकोही वोहती। जिमि सेना द्रोही जोहती लाज अरोही मोहती। (गोपाल)

सिल : सं० पु० वलूत की जाति का एक पहाड़ी पेड़ जो हिमालय पर होता है। वंज, मारू।

सिलकी : सं०पु० वेल। उ० सुरभी सिलकी सदाफल वेल ताल मालूर। (अनेकार्थ)

सिलवट : सं० स्त्री० सिकुड़ने से पड़ी हुई लकीर, सिकन, सिकुड़न, वली।

सिलहटिया : सं० स्त्री० एक प्रकार की नाव जिसके आगे-पीछे दोनों तरफ के

सिक्के लंबे होते हैं।

सिलही : सं० स्त्री० एक प्रकार का पक्षी।

सिलाई : सं० स्त्री० एक कीड़ा जो ऊख या ज्वार के खेत में लग जाता है। इसका शरीर भूरापन लिए हुए गहरा लाल होता है।

सिलोंध : सं० स्त्री० एक प्रकार की बड़ी मछली जो भारत और बरमा की नदियों में पाई जाती है।

सिलौआ : सं० पु० सन के मोटे रेशे जिनसे टोकरी बनाई जाती है।

सिल्लो : सं०पु० एक प्रकार का जलपक्षी जो हाथ भर के लगभग लंबा और तालों के किनारे दलदलों के पास पाया जाता है। यह मछली पकड़ने के लिए पानी मेंगोता लगाता है। इसके स्वादिष्ट मांस के लिए इसका शिकार किया जाता है।

सिवाई : सं० स्त्री० एक प्रकार की मिट्टी।

सिसकना : क्रि० अ० रोना, धीरे रोने की क्रिया। उ० सिसक रहा था।

(झूठा० १।१३६)

सिहरू : सं० पु० संभालू, संदुवार।

सिहारना : क्रि०स० तलाश करना, ढूँढ़ना। उ० हम कन्यन को व्याह विचारी। इनहि जोग वर तुमहु सिहारी।

(पद्माकर)

सींकपार : सं०स्त्री० एक प्रकार की बत्तख।

सींगरी : सं० स्त्री० १. एक प्रकार का लोबिया जिसकी तरकारी बनती है, मोगरे की फली, मूली की फली। सींगर। उ० सूरन करि तरि सरस तोरई। सेमि सीगरी छमकि झोरई। (जायसी)

सींघन : सं० पु० घोड़ों के माथे पर दो या अधिक भौंरी वाला टीका।

सीकल : सं०पु० डाल का पका हुआ आम।

सीकस : सं० पु० ऊसर। उ० सिंह शार्दूल यकहर जोतिनि सीकस बोइनि धाना।

(कबीर)

सीकाकाई : सं०स्त्री० एक प्रकार का वृक्ष जिसकी फलियाँ रीठे की भाँति सिर के बाल आदि धोने के काम आती हैं। सातला।

सीको : सं० पु० १. छेद, सूराख। २. मुँह।

सीगारा : सं० पु० मोटा कपड़ा।

सीचन : सं०पु० खारी पानी से मिट्टी निकालने का एक तरीका।

सीज : सं० पु० थूहर, सेंहुड़ा।

सीदी : सं० पु० एक जाति।

सीभा : सं० पु० दहेज।

सीरन : सं० पु० बच्चों का पहनावा।

सीरोसा : सं० पु० एक प्रकार की मिठाई।

सीहा : सं० पु० साही नामक जीव जिसके शरीर पर बड़े-बड़े काँटे होते हैं। सेही।

सुंखड़ : सं०पु० साधुओं का एक सम्प्रदाय।

सुंडस : सं० पु० लदुए गधे की पीठ पर रखने की गद्दी। सुंडा।

सुंडी बेंत : सं० पु० एक प्रकार की बेंत जो बंगाल, असम आदि में मिलती है।

सुंबा : सं० पु० १. स्पंज। २. दागी हुई तोप या बंदूक की गरम नली को ठंडा करने के लिए उस पर डाला हुआ गीला कपड़ा। पुचारा (लश०)। ३. तोप की नली साफ करने का गज। ४. लोहे का एक औजार जिससे लुहार लोहे में सूराख करते हैं। सुंबी।

सुंभी : सं० स्त्री० लोहा छेदने का एक औजार जिसमें नोंक नहीं होती।

सुंसारी : सं० स्त्री० एक प्रकार का लंबा काला कीड़ा जो अनाज के लिए हानिकारक होता है।

सुआद : सं० पु० स्मरण, याद। (डिंगल)

सुआन : सं० पु० एक बड़ा वृक्ष जिसके पत्ते

प्रतिवर्ष झड़ जाते हैं और लकड़ी इमारती होती है।

सुई : सं० पु० वान का नवजात पौधा। (व्र० श०)

सुकना : सं० पु० एक प्रकार का धान जो भादों के अन्त और आश्विन के आरंभ में होता है।

सुकल : सं० पु० एक प्रकार का आम जो श्रावण के अन्त में होता है।

सुक्कड़ि : सं० पु० एक प्रकार का सूखा चंदन जो वैद्यक में मूत्रकृच्छ, पित्तरक्त और दाह को दूर करने वाला तथा शीतल और सुगंधिदायक बताया गया है।

सुक्कान : सं० पु० पतवार। (डिंगल)

सुक्कानी : सं० पु० मल्लाह, माँझी। (लश०)

सुखंडरा : सं० पु० वैश्यों की एक जाति।

सुखानी : सं० पु० माँझी, मल्लाह। (लश०)

सुखिर : सं० पु० साँप के रहने का बिल। बाँबी। उ० या की असि साँपति कहत म्यान सुखिर सों, लहलहो श्याम महा चपल निहारी है। (गुमान)

सुखीन : सं० पु० एक प्रकार का पक्षी जिसकी पीठ लाल, छाती और गर्दन सफेद तथा चोंच चिपटी होती है।

सुगन : सं० पु० छकड़े में गाड़ीवान के बैठने की जगह के सामने लगी हुई दो लकड़ियाँ जिनकी सहायता से बैल खोल लेने पर भी गाड़ी खड़ी रहती है।

सुगाना : क्रि० अ० संदेह करना, शक करना। उ० जो पावरु अपनी जड़ताई। तुम्हहिं सुगाई मातु कुटिलाई। (तुलसी)

सुचंग : सं० पु० घोड़ा। (डिंगल)

सुजंगो : सं० पु० भाँग के वे पौधे जिनमें बीज होते हैं। सुजंगो, कुलंगो।

सुजड़ : सं० पु० (स्त्री० सुजड़ी-कटारी), तलवार।

सुजावा : सं० पु० बैलगाड़ी में की वह लकड़ी जो पैंजनी और फड़ में जड़ी रहती है।

सुड्ढा : सं०पु० धोती की वह लपेट जिसमें रुपया-पैसा रखते हैं। अंटी। आँट।

सुड़सुड़ाना : क्रि० स० कार्य करते समय सुड़-सुड़ शब्द करना।

सुत : सं० पु० बीस की संख्या। कोड़ी।

सुतकरी : सं० स्त्री० स्त्रियों के पहनने की जूती।

सुतरी : सं० पु० १. वह बैल जिसका रंग ऊँट जैसा हो। यह मध्यम श्रेणी का मजबूत और तेज समझा जाता है। २. वह लकड़ी जो पाई में साँथी अलग करने के लिए, साँथी के दोनों तरफ लगी रहती है। (जुलाहा)

सुतिया : सं० स्त्री० सोने या चाँदी का एक गहना जो स्त्रियाँ गले में पहनती हैं। हँसली।

सुथनी : सं० स्त्री० १. स्त्रियों के पहनने का एक प्रकार का ढीला पायजामा। सूथन। २. पिंडालू, रतालू।

सुथौनिया : सं० पु० मस्तूल के ऊपरी भाग में वह छेद या घर जिसमें पाल लगाने के समय उसकी रस्सी पहनाई जाती है।

सुदाँत : सं० स्त्री० जनाना। (डिंगल)

सुघर : सं० पु० बया नामक पक्षी। (डिंगल)

सुनका : सं० पु० चौपायों का एक रोग जो उनके कंठ में होता है। गगरा, घुरकवा।

सुनकातर : सं० पु० एक प्रकार का साँप।

सुनखर्चा : सं० पु० एक प्रकार का धान जो आश्विन के अन्त और कातिक के प्रारंभ में होता है।

सुनफा : सं०स्त्री०ज्योतिष का एक योग।

सुनसर : सं० पु० एक प्रकार का गहना।

सुनौची : सं० पु० एक प्रकार का घोड़ा। उ० जरदा और जाग जिरही से जग जाहर जवाहर हुकुम सों जवाहर झलक के। मंगली मुंजनस सुनौची स्यामकर्न स्याह सिरगा सजाये जैन न मंदिर अलक के।(सूदन)

सुपड़ा : सं० पु० लंगर का अँकुड़ा जो जमीन में धंसता जाता है।

सुपतिक : सं० पु० रात को पड़ने वाला डाका। (डिंगल)

सुपह : सं० पु० राजा।

सुपास : सं० पु० सुख, आराम, सुभीता। उ० (क) जाया ताकी सघन निहारी। बैठा सिमिटि सुपास विचारी। (विश्राम),(ख) यात्रियों के लिए सब तरह का सुपास और आराम है। (गदाधर सिंह)

सुपासी : वि० सुखदायक, आनन्द देने वाला। उ० षोडश भक्त अनन्य उपासी। पयहारी के शिष्य सुपासी। (रघुराज)

सुफरा : सं० पु० टेबल पर बिछाने का कपड़ा। टेबलक्लाथ।

सुबकना : क्रि०अ०१. रोना। २. धीरे-धीरे रुदन करना।

सुबड़ा : सं० पु० टलही चाँदी। ताँबा मिली हुई चाँदी।

सुमदुम : वि० मोटा, स्थूल।

सुमेड़ी : सं०स्त्री० खाट बुनने का वाध।

सुम्मा : सं० पु० बकरा। (बाजारू)

सुम्हार : सं० पु० एक धान जो प्रायः उत्तर प्रदेश मे होता है।

सुरखा : सं० पु० एक प्रकार का लंबा पौधा जिसमें पत्ते बहुत कम होते है।

सुरता : सं० पु० बाँस की नली जिसमें से दाना डालकर बोया जाता है।

सुरमई : सं० स्त्री० मछली का एक भेद। उ० इतने गहरे पानी में सुरमई मच्छी तो मिल जाती है,पर 'मूसी' नहीं होती। (सा०ल० म० ३८)

सुरया : सं० स्त्री० एक प्रकार की दराँती जो झाड़ी काटने के काम आती है।

सुरवस : सं० पु० जुलाहों की वह पतली छड़ी, पतला बाँस या सरकंडा जिसका व्यवहार ताना तैयार करने मे होता है।

सुरारी : सं० स्त्री० एक प्रकार की बरसाती घास जो राजपूताने और बुंदेलखंड में होती है। यह चारे के लिए अच्छी समझी जाती है। लप।

सुराल : सं० पु० एक प्रकार की लता जिसकी जड़ बिलाईकंद कहलाती है।

सुरुल : सं० पु० मूंगफली के पौधों का एक रोग जिसमे कुछ कीड़ों के खाने के कारण उसके पत्ते और डंठल टेढ़े हो जाते हैं।

सुरेतना : क्रि०स० खराब अनाज से अच्छे अनाज को अलग करना।

सुरेथ : सं० पु० सूंस, शिशुमार। उ० रथ सुरेथ भुज मीन समाना। शिर कच्छप गज ग्राह प्रमाना। (विश्राम)

सुरै : सं० स्त्री० एक प्रकार की अनिष्टकारी घास जो गर्मी में पैदा होती है।

सुर्रा : सं० पु० १. एक प्रकार की मछली। २. थैली, बटुआ। वि० लंबा। जैसे, विश्वविद्यालय में सुर्रा पेड़ हैं।

सुलव : सं०पु० गंधक। (डिंगल)

सुलझन : सं० स्त्री० सुलझने की क्रिया या भाव।

सुलझना : क्रि० अ० गुत्थी का खुलना, समस्या का समाधान होना। जैसे, पढ़ने की समस्या सुलझ गई है।

सुलझाना : क्रि०स० उलझी हुई वस्तु को

ठीक करना।

सुवरकोन्ना : सं० पु० वह हवा जिसमें पाल नहीं उड़ता।

सुसड़ी : सं० स्त्री० अनाजों में लगने वाला एक प्रकार का लाल कीड़ा।

सुसा : सं० पु० एक प्रकार का पक्षी। उ० जे हनत सुसा वुज्जर उतंग। (सूदन)

सुहंग : वि०कम मूल्य का, सस्ता, महँगा का उलटा।

सुआन : सं० पु० एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसके पत्ते प्रतिवर्ष झड़ जाते हैं। इसकी लकड़ी इमारत और नाव के काम आती है।

सूकी : सं० स्त्री० रिश्वत, घूस।

सूखर : सं० पु० एक शैव सम्प्रदाय।

सूजी : सं० स्त्री० एक प्रकार का सरेस जो माँड़ और चूने के मेल से तैयार होती है और बाजों के पुर्जे जोड़ने के काम आती है।

सूझा : सं० पु० फारसी संगीत में एक मुकाम(राग)के पुत्र का नाम।

सूठरी : सं०स्त्री० भूसा, सठुरी।

सूड़ना : क्रि० स० १. घूँसना। २. बंद करना।

सूड़ा : सं० पु० वह कीड़ा जो धान को अन्दर से पोला कर देता है। (व्र०श०)

सूथन : सं० स्त्री० पायजामा, सुथना। उ० सूथन जघन बाँधि नारावंध तिरनी पर छवि भारी। (सूर)

सूथन : सं० पु० बरमा, स्याम और मणिपुर में होने वाला एक पेड़ जिसकी लड़की बहुत अच्छी समझी जाती है। खेऊ।

सूथनी : सं० स्त्री० १. स्त्रियों के पहनने का पायजामा। २. एक प्रकार का कंद।

सूदा : सं० पु० ठगों के गिरोह का वह आदमी जो यात्रियों को फुसलाकर अपने दल में ले आता है। (ठगों की भाषा)

सूप : सं० पु० १. कपड़े या सन की झाड़ू जिससे जहाज़ के डेक आदि साफ किए जाते हैं। २. एक प्रकार का काला कपड़ा।

सूवड़ी : सं०स्त्री० पैसे का आठवाँ भाग। दमड़ी। (सुनार)

सूबी : सं० स्त्री० चाँदी और ताँबे का मिश्रित रूप। (व्र०श०)

सूम : सं० पु०कंजूस, जैसे, तुम भी बड़े सूम हो जो एक पैसा नहीं निकालते।

सूमलू : सं० पु० चित्रा या चीता नामक पौधा।

सूमाँ : सं०स्त्री०टूटी हुई चारपाई की रस्सी।

सूमी : सं०स्त्री० एक बड़ा पेड़ जिसकी लकड़ी इमारती होती है। रोहन, सोहन।

सूर : सं० पु० पठानों की एक जाति जैसे, शेरशाह सूर। उ० जातिसूर और खाँड़े सूरा। (जायसी)

सूरत : सं० पु० एक प्रकार का जहरीला पौधा जो दक्षिण हिमालय, असम,बरमा, लंका और जावा में होता है। चोरपट्टा।

सूरवार : सं०पु० पायजामा, सूथन।

सूरस : सं० स्त्री० परिया की लकड़ी। (जुलाहा)

सूली : सं०स्त्री० दक्षिण दिशा। (डिंगल)

सूसी : सं० स्त्री० एक प्रकार का धारीदार या चारखानेदार कपड़ा।

सूहा : सं० पु० १. एक प्रकार का लाल रंग। २. संपूर्ण जाति का एक संकर राग।

सूहा कान्हड़ा : सं०पु०संपूर्ण जाति का एक संकर राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

सूहा टोड़ी : सं० स्त्री० संपूर्ण जाति की एक संकर रागिनी जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

सूहा बिलावल : सं०पु० संपूर्ण जाति का एक संकर राग।

सूहा स्याम : सं०पु० संपूर्ण जाति का एक संकर राग।

सेंगरा : सं०पु० वह डंडा जिसमें लटका कर भारी पत्थर या धरन एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं।

सेंजी : सं०स्त्री० एक प्रकार की घास जो पंजाब में चौपायों को खिलाई जाती है। इसे कपास के साथ बोया जाता है।

सेंठा : सं० पु० १. मूंज या सरकंडे के सींके का निचला हिस्सा जो मोढ़े आदि बनाने के काम आता है। २. एक घास जो छप्पर छाने के काम आती है। ३. जुलाहों की वह पोली लकड़ी जिसमें ऊरी फँसाई जाती है। डाँड़। ४. नाक का गहना जो पोंगनी से बड़ा होता है।

सेंढ़ : सं० पु० १. खनिज पदार्थ जिसका व्यवहार सुनार करते हैं। २. थूहर, सिहुंड़।

सेंतमेत : वि० मुफ्त। उ० सेंतमेत में कीर्ति लाभ कर ले। (प्र० ग्र० ३०१)

सेंध : सं० स्त्री० १. गोरख ककड़ी, फूट। २. पेहँटा, कचरी।

सेंधी : सं० स्त्री० १. खजूर। २. खजूर की शराब।

सेंभा : सं० पु० घोड़ों का एक वात रोग।

सेकड़ा : सं० पु० वह चाबुक या छड़ी जिससे हलवाहे बैल हाँकते हैं। पैना।

सेकुवा : सं० पु० काठ के दस्ते का लंबा करछा या डोवा, जिससे हलवाई दूध औटते हैं।

सेकुरी : सं० स्त्री० धान। (सुनार)

सेगोन, सेगौन : सं० पु० मटमैले रंग की लाल मिट्टी जो नालों के पास पाई जाती है।

सेछागुन : सं० पु० एक प्रकार का पक्षी।

सेजा : सं० पु० एक प्रकार का पेड़ जो असम और बंगाल में होता है तथा जिस पर टसर के कीड़े पाले जाते हैं।

सेट : सं० पु० काँख, नाक, उपस्थ आदि के बाल या रोएँ।

सेड़ा : सं० पु० भादों में होने वाला एक प्रकार का धान।

सेतवाल : सं० पु० वैश्यों की एक जाति।

सेमर : सं० पु० दलदली जमीन।

सेर : सं० स्त्री० एक प्रकार की मछली।

सेर : सं० पु० एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है तथा जिसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है।

सेरन : सं० स्त्री० एक घास जो राजपूताने, बुंदेलखंड और मध्यभारत के पहाड़ी हिस्सों में होती है।

सेरवा : सं० पु० वह कपड़ा जिससे हवा करके अन्न बरसाते समय भूसा उड़ाया जाता है। झूली, परती।

सेरुवा : सं० पु० मुजरा सुनने वाला, वेश्यागामी।

सेल : सं० स्त्री० १. बद्धी, माला। उ० साँपों की सेल पहने मुंडमाल गले में डाले कहने लगे— (लल्लू०)। २. साफा, पगड़ी। उ०सनमुख राम सहेउ सो सेला। (तुलसी)

सेल : सं० पु० नाव से पानी उलीचने का काठ का बरतन।

सेलिया : सं० पु० घोड़े की एक जाति। उ० सिरगा समंटा स्याह सोलिया सूर सुरंगा। मुसकी पंच कल्यान कुमेदा केहरि रंगा। (सूदन)

सेली : सं० स्त्री० दक्षिण भारत का एक छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी कड़ी और मजबूत होती है और खेती के औजार बनाने के काम आती है।

सेलो : सं० पु० सायादार जमीन।

सेवं : सं० पु० एक प्रकार का ऊँचा पेड़ जिसकी लकड़ी कुछ पीलापन लिए सफेद रंग की, नरम, चिकनी, चमकीली और मजबूत होती है। इसकी छाल और जड़ औषध के काम आती है और फल खाया जाता है।

सेवंढ़ी : सं०स्त्री० एक प्रकार का धान जो अवध में होता है।

सेवड़ा : सं० पु० १. जैन साधुओं का एक भेद। २. एक ग्राम देवता।

सेवल : सं०पु० ब्याह की एक रस्म। इसमें वर की कोई सधवा आत्मीया पीतल की थाली में दीपक रखकर तथा दुपट्टे के दोनों छोर पकड़कर, थाली से वर का माथा तथा फिर अपना माथा छूती है।

सेसी : स० पु० एक प्रकार का बहुत ऊँचा पेड़। पगूर।

सेहवन : सं० पु० एक प्रकार का रोग जो गेहूँ के छोटे पौधों में होता है।

सेहुआँ : सं० पु० एक प्रकार का चर्मरोग जिसमें शरीर पर भूरी-भूरी महीन चित्तियाँ-सी पड़ जाती हैं।

सेहुआन : सं० पु० एक प्रकार का करमकल्ला जिसके बीज से तेल निकलता है।

सैंढ : सं० पु० गेहूँ की कटी हुई फसल जो दाईं गई हो।

सैन : सं० पु० १. एक प्रकार का बगला। नेत्रों के ऊपर वाला प्रान्त, भौंह, जिससे इशारा किया जाता है।

सैनू : सं० पु० एक प्रकार का बूटेदार कपड़ा। नैनू।

सैम : सं० पु० धीवरों का एक देवता।

सैली : सं० स्त्री० वह टोकरी जिसमें किसान तिन्नी का चावल एकत्र करते हैं।

सोंटा : सं० पु० १. मोटी लकड़ी, सीधी लकड़ी। लाठी। २. भंग घोटने का मोटा डंडा। भंग घोटना। उ० तनकर कूँड़ी मनकर सोंटा प्रेम की भंगिमा सार पियावै। (कबीर) ३. लोबिया का पौधा, रवाँस। ४.मस्तूल बनाने लायक लकड़ी। (लश०)

सोंडकहा : सं० पु० घी। (सुनार)

सोंहट : वि० सीधा, सादा, सरल।

सोक : सं० पु० चारपाई बुनने के समय बुनावट का वह छेद जिसमें से रस्सी या निवार निकालकर कसते हैं।

सोकनी : वि० कालापन लिए सफेद रंग का बैल।

सोखन : सं० पु० १. स्याही लिए हुए सफेद रंग का बैल। २. एक प्रकार का जंगली धान जो नदी की घाटी में बलुई जमीन में बोया जाता है।

सोखा : सं० पु० १. व्यक्ति। २. जादूगर।

सोखाई : सं० स्त्री० जादू-टोना।

सोझोव : सं० पु० जवान बछड़ा।

सोढर : वि० भोंदू, बेवकूफ। उ० (क) गदहों में हम सोढर गधा हैं। (बालकृष्ण भट्ट)। (ख) भगति सुतिय के हाथ सुमिरिनी सोहत टोडर। सोढर खोडर बूढ़ ऊढ़ द्विज खोडर ओर। (सुधाकर)

सोदन : सं० पु० कशीदे के काम में कागज का एक टुकड़ा जिस पर सुई से छेदकर बेलबूटे बनाए जाते हैं।

सोघस : सं० पु० जल का किनारा। (डिंगल)

सोन : सं० पु० एक प्रकार का जलपक्षी। उ० बोलहिं सोन ढेक बग लेदी। रही

अबोल मीन जल भेदी। (जायसी)

सोनहार : सं० पु० एक प्रकार का समुद्री पक्षी। उ० औ सोनहार सोन कै डाँड़ी। सारदूल रूपे कै काँड़ी। (जायसी)

सोनी : सं० पु० १. तुन की जाति का एक वृक्ष। २. एक जाति जो बुंदेलखंड में पाई जाती है।

सोनेइया : सं० पु० वैश्यों की एक जाति।

सोनैया : सं० स्त्री० देवदाली, घघरबेल, बंदाल।

सोप : सं० पु० एक प्रकार की छपी हुई चादर।

सोभर : सं०पु० वह कोठरी जिसमें स्त्रियाँ प्रसव करती हैं। सौरी, जच्चाखाना, सूतिकागार।

सोमरा : सं० पु० १. जुते हुए खेत का दुबारा जोता जाना। २.सम चतुर्भुज खेत का चौड़ाई में जोता जाना।

सोला : सं०पु० एक प्रकार का ऊँचा झाड जो प्रायः सारे भारत की दलदली भूमि में पाया जाता है। इसकी डालियाँ बहुत सीधी और मजबूत होती हैं।

सोलाली : सं० स्त्री० पृथ्वी। (डिंगल)

सोवारी : सं० पु० पंद्रह मात्राओं का एक ताल जिसमें पाँच आघात और तीन खाली होते हैं।

सोहर : सं० स्त्री० १. नाव के भीतर की पाटन या फर्श। २. नाव का पाल खींचने की रस्सी। ३. एक गीत जो बच्चा पैदा होने के समय गाया जाता है।

सोहाग : सं० पु० मझोले आकार का एक सदाबहार वृक्ष जिसके पत्ते बहुत लंबे होते हैं। इसके बीजों का तेल निकलता है जो जलाने के तथा औषध के काम आता है।

सोहार : सं०पु० एक पकवान जो तिकोना होता है, सोहाल।

सोहारी : सं०स्त्री० मैदे का बना एक पकवान। सोहाली।

सोहाली : सं० स्त्री० ऊपर के दाँतों का मसूड़ा। ऊपरी दातों के निकलने की जगह।

सोहींटी : सं० स्त्री० ६ या ७ इंच चौड़ी एक लकड़ी जो अपती के सामने और लेवा के नीचे नाव की लंबाई में लगाई जाती है। (मल्लाह)

सौंघाई : सं० स्त्री० अधिकता, बहुतायत। उ० एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई। सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई। (तुलसी)

सौंधी : वि० १. अच्छा। उ० जो चितवन सौंधी लगे चितइए सवेरे। तुलसीदास अपनाइए कीजै न ढील अब जीवन अवधि नित नेरे। (तुलसी) २. उचित, ठीक।

सौंह : सं० स्त्री० शपथ, कसम।

सौंही : सं०स्त्री०एक प्रकार का हथियार। उ० यह सौंही केहि देशहि केरी कह नृप अहै फिरंग करेरी।

सौगरिया : सं० पु० क्षत्रियों की एक जाति या वंश। उ० सूरतराम प्रसिद्ध कुसल तन अरु पाखरिया। पेमसिंह प्रथिसिंह अमर वाला सौगरिया। (सूदन)

सौदा : सं० पु० काट-छाँटकर साफ किए हुए पान जो डोली में सड़ गए हों। (तंबोली)

सौबिगा : सं० स्त्री० एक प्रकार की बुलबुल जो पश्चिम भारत को छोड़कर प्रायः शेष भारत में पाई जाती और ऋतु के अनुसार, रंग बदलती है। यह एक बार में तीन अंडे देती है।

सौहन : सं० पु० पैसे का चौथाई भाग। छदाम। टुकड़ा। (सुनार)

सौहाग : सं० पु० दो भर का बाट या

वटखरा। (सुनार)
स्तारा : सं० पु० एक प्रकार का पौधा।
स्तावर : सं० स्त्री० एक प्रकार की बेल।
स्यारकाँटा : सं० पु० सत्यानाशी, स्वर्णक्षीरी।
स्याला : सं० पु० बहुतायत, अधिकता, ज्यादती।
स्वाँसा : सं० पु० वह सोना जिसमें ताँबे का खोट मिला हो।
हंगास : सं० पु० मलोत्सर्ग करने की इच्छा।
हंगोरी : सं० पु० एक बहुत बड़ा पेड़ जो दार्जिलिंग के पहाड़ों में होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और मेज, कुर्सी, आलमारी बनाने के काम आती है।
हंडाई : क्रि०वि० प्रयोग में आई हुई, बरती हुई वस्तु। उ०धोतियाँ हंडाई हुई हैं पर घिसी हुई नहीं हैं।
(झूठा० २।१४६)
हंड़िक : सं० पु० तौलने का बाट।
(सुनार)
हँसेरी : सं० पु० दल, समूह, बलवा करने वालों का दल, हिंसक भीड़। उ० गुअर टोली वाले हँसेरी लेकर आ रहे हैं।
(मैला० २१)
हँसेल : सं० स्त्री० नाव के किनारे पर से खींचने की रस्सी। गून।
हकलाना : क्रि०अ० जीभ के ठीक न चलने के कारण बोलते समय अटकना।
हकारना : क्रि०स० १. पाल तानना या खड़ा करना। २. झंडा या निशान उठाना। (लश०)
हक्का : सं० पु० लकड़ी का एक प्रकार का आघात या प्रहार।
हक्का-बक्का : सं० पु० घबड़ा जाने या आश्चर्यान्वित होने का भाव। उ० हम हक्का-बक्का से खड़े ही हो गए।
(बाल कृष्ण भट्ट)
हगनहटी : सं० स्त्री० १. गुदा। २. वह स्थान जहाँ लोग पाखाना करते हैं।
हगना : क्रि०अ० मलोत्सर्ग करना, पाखाना करना। उ० काक अभागे हगि मर्‌यो महिमा महँ कि थोरी। (तुलसी)
हटकना : क्रि०स० रोकना, निषेध करना। उ० तुम्ह हटकहु जो चहहु उबारा।
(तुलसी)
हट्टा : सं० पु० बाजार, हाट। उ०'बजाज हट्टा का भी कुछ भाग जल गया था।
(झूठा० १।२७५)
हठ : सं० पु० टेक, मर्यादा। उ० मेरी हठ राखो हठीले लाल। (भा० २।६१८)
हठरी : सं० स्त्री० लक्ष्मी या गोधन की पूजा में रखी जाने वाली वस्तु।
(वृंद० १४६)
हड्डी : सं०स्त्री० अस्थि।
हड़कंप : सं० पु० हलचल, उथल-पुथल।
हड़काना : क्रि०स० १. आक्रमण करने, घेरने, तंग करने आदि के लिए पीछे लगा देना। लहकारना। पीछे छोड़ना। २. किसी वस्तु के अभाव का दुःख देना, तरसाना। २. कोई वस्तु माँगने वाले को न देकर भगा देना। कहा०—हड़काया भला परकाया नहीं भला।
हड़गीला : सं० पु० एक चिड़िया। बगले की जाति का एक पक्षी जिसकी टाँगें और चोंच बहुत लंबी होती हैं।
हड़पना : क्रि०स० जबरदस्ती लेना, हथियाना, बेईमानी से किसी वस्तु पर कब्जा करना। उ० खेलावन को देखा, यादवों की जमीन हड़प रहा है। (मैला० १८०)
हड़पाई : सं० स्त्री० दुश्मनी। उ० कल

उसी से हड़पाई की ठहर जाएगी।
(प्र० ग्र० २७६)

हड़बड़ाना : क्रि०अ० घबराना, भयभीत होना, चौंकना। उ० श्यामनाथ हड़बड़ा कर उठ खड़े हुए। (टे० मे० रा०१४५)

हड़हड़ाना : क्रि०अ० शीघ्रतासूचक शब्द, चलने की ध्वनि। उ० इसके बाद हड़-हड़ाता हुआ और खड़े वस्त्रे से काला धूआँ—(बाबा० ५८)

हड़हा : सं० पु० जंगली बैल।

हत्याजड़ी : सं० स्त्री० एक छोटा पौधा जिसकी पत्तियाँ सुगंधित होती हैं। इसकी पत्तियों का रस घाव और फोड़े आदि पर रखा जाता है। हस्थिशंडा।

हबड़ा : वि० १. बड़दंता, बड़े दाँत वाला। २. भद्दा, कुरूप।

हबराना : क्रि०स० हड़बड़ाना।

हरजेवड़ी : सं० स्त्री० एक प्रकार की छोटी झाड़ी जिसकी डालियों तथा पत्तियों पर भूरे रंग के रोएँ होते हैं। इसके फलों के रस से बैंगनी रंग की स्याही बनती है।

हरदू : सं० पु० एक बड़ा पेड़ जिसकी छाल अंगुल भर मोटी बहुत मुलायम और खुरदरी होती है। खेती के औजार तथा सजावट के सामान इसकी लकड़ी के अच्छे होते है।

हरपरेवरी : सं० स्त्री० किसानों की औरतों का एक टोटका जो पानी बरसाने के लिए किया जाता है।

हरपा : सं० पु० सुनारों का तराजू रखने का डिब्बा।

हरफा : सं० पु० कटा हुआ चारा या भूसा रखने का घर जो लकड़ी के घेरे से बनाया जाता है।

हरसल : सं०पु० डेढ़-दो हाथ ऊँची एक प्रकार की झाड़ी जिसकी पत्तियाँ औषधि के रूप में प्रयोग होती हैं तथा बीजों से एक प्रकार का लाल रंग निकलता है।

हरमूली : सं० स्त्री० एक प्रकार का धतूरा जिसके बीज फारस से बंबई में आते और बिकते हैं।

हरवाल : सं० पु० एक प्रकार की घास। सुरारी।

हरहा : सं०पु० भेड़िया।

हरहाई : वि० स्त्री० नटखट (गाय), हरहट। उ० जिमि कपि लहि घालै हरहाई। (तुलसी)

हराई : सं० स्त्री० खेत का उतना भाग जितना हल के एक चक्कर में जुत जाता है। बाह। जैसे, हराई हो गई।

हरिन हर्रा : सं० पु० सोहाग नामक सदाबहार पेड़।

हरियाँव : सं० पु० फसल की एक बराई जिसमें ६ भाग आसामी और ७ भाग जमींदार लेता है।

हरेव : सं० पु० १. मंगोलों का देश। २. मंगोल जाति। उ० पछिउँ हरेव दीन्हि जो पीठी। सो पुनि फिरा सौंह के दीठि।
(जायसी)

हलकान : वि० हलाकान, परेशान।

हलीमन : सं० पु० मटर के डंठल जो बंबई की ओर काटकर चौपायों को खिलाते हैं।

हलक : सं० पु० गला।

हलूक : सं० स्त्री० १. उतना पदार्थ जितना एक बार वमन में निकलता है। २. वमन, कै। जैसे दो हलूकों में उसकी जान निकल गई।

हहास : सं० पु० खूब अच्छी तरह से होने वाली फसल। उ० बेमन से भी बीया

हैजम : सं० स्त्री० १. सेना की पंक्ति। २. तलवार। (डिंगल)

हैटा : सं०पु० एक प्रकार का अंगूर।

हैन : सं०पु०एक प्रकार की घास, तकड़ी।

होगला : सं०पु० एक प्रकार का नरसल या नरकट।

होजन : सं० पु० एक प्रकार का हासिया या किनारा जो कपड़ों में बनाया जाता है।

होड़ : सं० स्त्री० बाजी। उ०बदि के होड़-सी लगाई। (भा० २।१२८)

होड़ी : सं० स्त्री० नौका, नाव, तरणी। उ० हमारा जमाना में होड़ी पर जाकर डोल (जाल) डाला नेई के ढेर का ढेर मच्छी आया—(सा० ल० म०६)

होबार : सं० पु० १. सोहन चिड़िया का एक भेद, तिल्लर। २. घोड़ा। (डिंगल)

होरमा : सं० पु० एक प्रकार की घास या चारा। साँवक।

होरसा : सं० पु० पत्थर की गोल छोटी चौकी जिस पर चंदन घिसते या रोटी बेलते हैं। चौका।

होरिल : सं० पु० नवजात बालक।

होरी : सं० स्त्री० एक प्रकार की बड़ी नाव जो जहाजों पर का माल लादने और उतारने के काम में आती है।

होल : सं० पु० पश्चिमी एशिया से आया हुआ एक पौधा जो घोड़ों और चौपायों के लिए लगाया जाता है।

होला : सं० पु० चना, हरा भुना हुआ चना।

होली : सं० स्त्री० १. एक कँटीला झाड़ या पौधा। २. एक प्रसिद्ध त्योहार, होलिका।

होल्दना : क्रि० स० धान के खेत में घास-पात दूर करने के लिए हल चलाना। (पंजाब)

हौवा : सं० पु० एक काल्पनिक जंतु। उ० हाकिम लोग हौवा नहीं हैं। (प्र० ग्र० ३९९)

□□